विशेषज्ञ समिति

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
कुलसचिव
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी उत्तराखण्ड

प्रो0 हरवंश दिक्षित
प्राचार्य
महाराजा हरिशचन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मुरादाबाद (उ0प्र0)

प्रो0 गिारिजा पाण्डे
निदेशक समाज विज्ञान विद्या शाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

प्रो0 पी0सी0 जोशी
विभागध्यक्ष
विधि विभाग एस0एस0जे0 परिसर,अल्मोड़ा
उत्तराखण्ड

नरेन्द्र कुमार जगूड़ी
पाठ्यक्रम समन्वयक
विधि विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

पाठ्यक्रम सम्पादन

डा0 दिनेश शर्मा
सहायक प्राध्यापक विधि
रा0विधि महाविद्यालयय,गोपेश्वर
जनपद– चमोली (उत्तराखण्ड)

इकाई लेखक

श्री नरेन्द्र कुमार जगूड़ी
समन्वयक विधि विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

श्रीमती सपना अग्रवाल
पूर्व अकादमिक परामर्शदाता
विधि विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

Copy Right @UTTRAKHAND OPEN UNIVERSITY

Edition: June 2012

Publisher : Director Study & Publish
mail : studies@uou.ac.in
Uttrakhand Open University, Haldwani (Nainital) –263139

UTTRAKHAND OPEN UNIVERSITY
HALDWANI

The Indian Constitutional Law – The New Challenges

LL.M.-102

भारतीय संवैधानिक विधि . नवीन चुनौतियॉ

खण्ड– 1 संघवाद	पृ0क्रमांक
इकाई–1– नये राज्यों का निर्माण	1–17
इकाइ –2 –संसाधनों पर अन्तर्राज्यिक विवाद	18–36
इकाई–3– केन्द्रीय दायित्व एवं राज्यों में आन्तरिक अशांति	37–60
इकाई–4– कुछ राज्यों के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध	61–79
खण्ड– 2 राज्य उदारीकरण	
इकाई –1–समता का अधिकार	80–118
इकाई–2– अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं प्रसारण का अधिकार	119–1144
इकाई–3 –राज्य के निति निर्देशक तत्व एवं मौलिक कर्तव्य,अधिकार	145–157
इकाई–4– शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन	158–176
खण्ड –3 शक्तियों का पृथक्करण	
इकाई–1– न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक अवरोध	177–188
इकाई–2– लोक हित वादः कार्यान्वयन	189–208
इकाई–3– न्यायपालिका की स्वतन्त्रता	209–230
इकाई– 4– उत्तरदायित्व......	231–254
खण्ड – 4 लोक तान्त्रिक प्रकिया	
इकाई–1– राजनैतिक अपराध	255–266
इकाई–2– निर्वाचन	267–283
इकाई–3– गठबन्धन सरकार	284–303
इकाई–4– मूल स्पर्शी लोक तन्त्र	304–319

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–1. संघवाद

इकाई–1 नये राज्यो का निर्माण

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 नये राज्यों का निर्माण

1.3.1 संवैधानिक प्रावधान

1.3.1.1 अनुच्छेद 3

1.3.1.2 अनुच्छेद 4

1.3.2 भारतीय भू–भाग का किसी विदेशी राज्य को अध्यर्पण

1.3.3 राज्यों के पुर्नगठन की प्रक्रिया

1.3.4 नये राज्य का निर्माण–सादे बहुमत एवं सामान्य विधायी प्रक्रिया द्वारा

1.4 केन्द्र एवं राज्यों के मध्य संसाधनों का वितरण

1.4.1 भारत और राज्यों की संचित निधियाॅ

1.4.2 वित्त आयोग

1.4.2.1 अभी तक गठित विभिन्न वित्त आयोग (सारणी–1)

1.4.3 कर एवं शुल्क में अन्तर

1.5 संघ एवं राज्यों के मध्य राजस्वों का विवरण

1.5.1 संघ द्वारा उदगृहीत किये जाने वाले किन्तु राज्यों द्वारा संगृहीत और विनियोजित किये जाने वाले शुल्क

1.5.2 संघ द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत किन्तु राज्यों को सौपे जाने वाले

कर

1.5.3 संघ द्वारा उद्गृहीत एवं संगृहीत कर एवं उनका संघ तथा राज्यों के मध्य वितरण

1.6 शुल्को या करों में अभिभार द्वारा वृद्धि

1.7 राज्यों को संघ से अनुदान

1.8 राज्यक्षेत्रीय सागर खंड या महाद्वीपीय मग्नतट भूमि में स्थित मूल्यवान चीजों और अनन्य आर्थिक क्षेत्र के संपत्ति स्रोतों का संघ में निहित होना।

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.13 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत देश राज्यों का एक परिसंघ है जिसके अन्तर्गत एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना संविधान द्वारा की गयी है । स्वतंत्रता के समय देश की स्थिति को ध्यान में रखते हुए केन्द्र को सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हुए राज्यों को उसके अन्तर्गत रखा गया है । इसीलिये भारतीय संविधान अर्द्ध–संघीय प्रकृति का कहलाता है। प्रस्तुत ईकाई में भारतीय संविधान द्वारा प्रावधानित परिसंघीय प्रणाली के अन्तर्गत नये राज्यों का निर्माण, वर्तमान राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन एवं केन्द्र एवं राज्यों के मध्य संसाधनों के वितरण को समझाया गया है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात् आप समझ सकेंगे–

1. भारतीय परिसंघीय प्रणाली
2. नये राज्यों का निर्माण

3. वर्तमान राज्यों की भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन
4. भारत एवं राज्यों की संचित निधि
5. वित्त आयोग की स्थापना
6. केन्द्र एवं राज्यों के मध्य राजस्वों का वितरण
7. राज्यों को संघ से अनुदान
8. राज्यक्षेत्रीय सागर खंड या महाद्वीपीय मग्नतट भूमि में स्थित मूल्यवान चीजों और अनन्य आर्थिक क्षेत्र के संपत्ति स्रोतों का संघ में निहित होना।

1.3 नये राज्यों का निर्माण

भारतीय संविधान अर्द्ध–संघीय (प्रोफेसर ह्वियर) प्रकृति का कहलाता है, क्योंकि इसकी कई विशेषताएं इसे एक पारम्परिक परिसंघ प्रणाली से अलग करती है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों को सीमित स्वतंत्रता प्राप्त है, कई निर्णयों में केन्द्र उन पर हावी रहता है, इसलिये भारत के परिसंघ के संदर्भ में 'संघात्मक कम और एकात्मक अधिक' जैसी पदावली का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य एक दृढ़ एवं शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना करने का रहा जो किसी भी बाहरी आक्रमण की दषा में देष की रक्षा के लिये तुरन्त निर्णय लेने में समर्थ हो।

एस0आर0बोम्बई बनाम भारत संघ[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बहुमत न्यायाधीशों का यह अभिमत है कि भारतीय संविधान एक परिसंघात्मक संविधान है और ''परिसंघवाद संविधान का आधारभूत ढॉचा है।'' न्यायमूर्ति श्री सावंत और श्री कुलदीप सिंह ने यह कहा है कि भारतीय संविधान में परिसंघवाद के सिद्धान्त की ही प्रबलता है, और इसका किसी तरह से ह्रास नहीं हुआ है । इस तथ्य के होते हुए भी संविधान में ऐसे उपबन्ध हैं जिनके अधीन केन्द्र को राज्यों पर अभिभावी शक्ति दी गयी है।[2] इसी शक्ति के अंतर्गत संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राज्यों के क्षेत्रों और सीमाओं को बिना उनकी सहमति एवं सम्मति के परिवर्तित कर सकता है।

अमेरिका की स्थिति भारत से भिन्न है। अमेरिकी फेडरेशन विभिन्न स्वतंत्र राज्यों के मध्य हुए करार का परिणाम है, इसलिये राज्यों के विधान मण्डलों की सहमति के बिना उनके क्षेत्र में किसी प्रकार का परिवर्तन अमेरिकी संविधान के अनुसार संभव नहीं है। अनुच्छेद 2 संसद को

उसकी शर्तो एवं दशाओं के अधीन संघ में नये राज्यों का प्रवेष या उनकी स्थापना का अधिकार प्रदान करती है। स्थापित राज्यों की सीमाओं में कोई भी परिवर्तन संसद साधारण बहुमत द्वारा कर सकती है। उपुर्यक्त उददेश्य की पूर्ति के लिये संसद द्वारा निर्मित कोई भी विधि अनुच्छेद 368 के प्रयोजन के लिये संविधान का संषोधन नही समझी जायेगी ।[3]

1.3.1 संवैधानिक प्रावधान –

भारत के संविधान का अनुच्छेद 3 भारतीय संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह नये राज्यों की स्थापना एवं वर्तमान राज्यों के क्षेत्रो, सीमाओं या नामों में परिवर्तन कर सके।

1.3.1.1 अनुच्छेद 3

नये राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन–संसद विधि द्वारा

क. किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नये राज्य का निर्माण कर सकेगी;

ख. किसी राज्य का क्षेत्र बढा सकेगी;

ग. किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;

घ. किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी;

ड. किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

परन्तु इस प्रयोजन के लिये विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिष के बिना और जहॉ विधेयक में अंतर्विश्ट प्रस्थापना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पडता है, वहॉ जब तक उस राज्य के विधान मंडल द्वारा उस पर अपने विचार, ऐसी अवधि के भीतर जो निर्देश में विनिर्दिष्ट की जाये या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर जो राश्ट्रपति द्वारा अनुज्ञात की जाए, प्रकट किए जाने के लिए वह विधेयक राष्ट्रपति द्धारा उसे निर्देशित नहीं कर दिया गया है और इस प्रकार विनिर्दिष्ट या अनुज्ञात अवधि समाप्त नही हो गयी है संसद के किसी सदन में पुरःस्थापित नहीं किया जायेगा ।

स्पष्टिकरण 1–

इस अनुच्छेद के खंड (क) से खण्ड (ड) में ''राज्य'' के अन्तर्गत संघ राज्यक्षेत्र हैं, किन्तु परंतुक में ''राज्य'' के अन्तर्गत संघ राज्यक्षेत्र नहीं है।

स्पष्टिकरण 2–

खंड (क) द्वारा संसद को प्रदत्त शक्ति के अन्तर्गत किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी भाग को किसी अन्य राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के साथ मिलाकर नये राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का निर्माण करना है।

1.3.1.2 अनुच्छेद 4 के अनुसार

1.अनुच्छेद 3 में निर्दिष्ट किसी विधि में पहली अनुसूची और चौथी अनुसूची के संषोधन के लिये ऐसे उपबंध अंतर्विश्ट होगे जो विधि के उपबंधो को प्रभावी करने के लिए आवष्यक हों तथा ऐसे अनुपूरक आनुशांगिक और पारिणामिक उपबंध भी (जिनके अन्तर्गत ऐसी विधि से प्रभावित राज्य या राज्यों के संसद में और विधान मंडल या विधान मंडलों में प्रतिनिधित्व के बारे में उपबंध है) अंतर्विष्ट हो सकेगें जिन्हें संसद आवष्यक समझे ।

2.पूर्वोक्त प्रकार की कोई विधि अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिये इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी ।

1.3.2.भारतीय भू–भाग का किसी विदेशी राज्य को अध्यर्पण

यह प्रश्न अनुच्छेद 143[4] के अन्तगंत राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के सम्मुख विचार हेतु प्रस्तुत किया गया । वाद के तथ्य इस प्रकार थे – भारत एवं पाकिस्तान के मध्य सीमा सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिये 1958 में एक करार हुआ, जिसके अनुसार बेरूबारी संघ को भारत द्वारा पाकिस्तान को एवं कूच बिहार का परिवृत पाकिस्तान द्वारा भारत को दिया जाना था । परन्तु समझौते को कार्यान्वित करते समय पाकिस्तान में प्रबल विरोध होने लगा। राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय से निम्न प्रष्नों पर राय मॉगी गयी–

(1) बेरूबारी संघ से सम्बन्धित करार को पूरा करने के लिये क्या कोई सांविधनिक कार्यवाही आवश्यक है।

(2) यदि ऐसा है तो क्या अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत संसद का कोई ऐसा कानून है जो इसके लिये पर्याप्त होगा अथवा अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संविधान में संशोधन आवश्यक है, अथवा दोनों आवश्यक है?

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत भारत सरकार किसी भारतीय क्षेत्र को विदेशी राज्य को अर्पित नही कर सकती, उक्त करार को अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संविधानिक संषोधन द्वारा ही लागू किया जा सकता है।

मगनभाई बनाम केन्द्र[5] बाद में सीमा विवाद का प्रश्न सीधे से उठाया गया। भारत एवं पकिस्तान के मध्य कच्छ के रन को लेकर गंभीर विवाद उत्पन्न हुआ जिसकी परिणिती बाद में इस मामले को अन्तराष्ट्रीय अधिकरण को सौंपने पर समाप्त हुई ।

1.3.3 राज्यों के पुर्नगठन की प्रक्रिया

अनुच्छेद 3 के परन्तुक के विस्तार एवं प्रयोजन का निर्धारण उच्चतम न्यायालय द्वारा बाबू लाल पराटे बनाम बोम्बे राज्य[6] में किया गया । राज्य पुनर्निर्माण आयोग द्वारा दिये गये प्रतिवेदन के आधार पर लोकसभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार तीन ईकाईयों का निर्माण किया जाना था

1.केन्द्रशासित बोम्बे

2.महाराश्ट्र जिसमें मराठवाड़ा एवं विदर्भ सम्मिलित थे।

3.गुजरात जिसमें सौराश्ट्र एवं कच्छ सम्मिलित थे।

राष्ट्रपति द्वारा उक्त बिल को सम्बन्धित राज्यों की विधानसभाओं को विचार हेतु भेज दिया गया, तत्पष्चात संसद द्वारा कुछ बदलावों के साथ इसे राज्य पुर्नगठन अधिनियम, 1956 के नाम से पारित कर दिया गया। जिसके अनुसार तीन अलग राज्यों के बजाय एक संयोजित बोम्बे राज्य का निर्माण किया गया। अपीलकर्ता के अनुसार इस अधि0 द्वारा अनुच्छेद 3 का उल्लंघन हुआ था क्योकि बोम्बे विधान सभा द्वारा ऐसे किसी संयोजित राज्य का विचार प्रस्तुत नही किया गया था । उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार उक्त अधिनियम को पारित करने में किसी बात का उल्लंघन नही हुआ । हालांकि मूल विधेयक मे तात्विक फेरबदल किये गये परन्तु फिर भी यह प्रस्ताव से असंगत नहीं है क्योंकि यह अधिनियम मूल विधेयक का ही संशोधित रुप है न कि एक नया विधेयक ।

1.3.4 नये राज्य का निर्माण –

सादे बहुमत एवं सामान्य विधायी प्रक्रिया द्वारा–

अनुच्छेद 4 यह कहता है ''अनुच्छेद 2 या अनुच्छेद 3 में निर्दिष्ट किसी विधि में ऐसे अनुपूरक अनुशांगिक और परिमाणिक उपबंध भी होगे जो उस विधि को प्रभावित करने के लिये आवष्यक हो और उस विधि द्वारा संविधान की पहली और चौथी अनुसूची में भी परिवर्तन किया जा सकेगा, इसके लिये अनुच्छेद 368 द्वारा विहित विशिष्ट प्रक्रिया भी अपनानी नही होगी इस प्रकार ये उपबंध दर्शाते है कि भारतीय संविधान कितना लचीला है। सादे बहुमत एवं प्रक्रिया द्वारा किसी भी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन आदि किया जा सकता है।

1.4 केन्द्र एवं राज्यों के मध्य संसाधनों का विवरण

कोई भी परिसंघ प्रणाली तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि संघ और राज्यों दोनो के पास ऐसे पर्याप्त संसाधन न हो जिनसे वे संविधान के अधीन अपने अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सके।[7] भारतीय संविधान में इस उददेश्य की पूर्ति के लिये मुख्यत भारत शासन अधिनियम 1935 के प्रावधानों का ही अनुसरण किया गया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा इस व्यवस्था हेतु इन षब्दों में एक सुन्दर भूमिका दी है[8] –

''संघ को राजस्व के जो स्रोत आवंटित किये गये हैं वे समग्र रुप से संघ के प्रयोजनों के लिये नहीं है किन्तु उपर्युक्त अनुच्छेदों में प्रकल्पित संसदीय विधान में उल्लिखित सिद्धान्तों के अनुसार उनका वितरण किया जाना है। संघ द्वारा उदग्रहीत सभी कर और षुल्क भारत की संचित निधि के भाग नहीं होते । इनमें से बहुत से कर और षुल्क राज्यों में वितरित किये जाते हैं और राज्यों की संचित निधि के भाग होते हैं । उन करो और शुल्कों को भी जो भारत की संचित निधि गठित करते हैं। आवष्यकतानुसार राज्य के राजस्व की अनुपूर्ति करने के प्रयोजन के लिये उपयोग किया जा सकता है। प्रयुक्त करों और शुल्कों का राज्य में वितरण करने का प्रष्न और उनको षासित करने वाले सिद्धान्त तथा सहायता अनुदान को शासित करने वाले तत्व ....ऐसे विशय है जिनका विनिश्चय एक उच्च षक्तिसम्पन्न वित्त आयोग द्वारा किया जाता है । इस निकाय को यह उत्तरदायित्व सौपा गया है कि वह वस्तुनिष्ठ रीति से इन विशयों का अवधारण करें.......। राज्यों के वित्तीय स्रोतों की सीमाओं को देखते हुए और कल्याणकारी राज्य की बढती हुई आवष्यकताओं को ध्यान में रखते हुये संविधान ने ....संसद को यह षक्ति दी है कि वह अपने राजस्व का एक हिस्सा .....राज्यों के फायदे के लिये ही अलग कर दे।..... संघ सरकार के संसाधन अनन्य रुप से संघ के क्रियाकलापों के फायदे के लिये नही हैं...... दूसरे शब्दों में संघ और राज्य मिलकर एक ईकाई बनाते है जो भारत के समस्त राज्यक्षेत्र के संसाधनों का उपयोग करती है।श

विधि के प्राधिकार के बिना करों का अधिरोपण न किया जाना –

अनुच्छेद 265 यह उद्घोषित करता है कि कोई कर विधि के प्राधिकार से ही आरोपित या संगृहीत किया जायेगा, अन्यथा नहीं।

1.4.1 भारत और राज्यों की संचित निधियॉ

अनुच्छेद 266 यह प्रावधान करता है कि केन्द्र एवं राज्यों का क्रमशः भारत की संचित निधि एवं राज्य की संचित निधि नाम से कोश होगा । इसी प्रकार भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा उसकी ओर से प्राप्त सभी अन्य लोक धनराशियॉ यथास्थिति भारत के लोक लेखे में या राज्य के लोक लेखे में जमा की जायेगी ।[9] संचित निधि में कोई भी धनराशि विधि के अनुसार ही विनियोजित की जायेगी अन्यथा नही।[10] इसी प्रकार अनुच्छेद 267 केन्द्र में नये भारत की आकस्मिक निधि की स्थापना का प्रावधान करता है एवं राज्य में 'राज्य की आकस्मिक निधि' की स्थापना का प्रावधान करता है।

1.4.2 वित्त आयोग –

संवैधानिक प्रावधानों के अलावा अनुच्छेद 280 भारत के राश्ट्रपति को संविधान के प्रारम्भ से 2 वर्ष के पष्चात एवं तत्पश्चात प्रत्येक पॉचवे वर्श की समाप्ति या इससे पहले ऐसे समय पर जिसे भारत का राष्ट्रपति उचित समझे एक वित्त आयोग की स्थापना की शक्ति प्रदान करता है। इसमें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अध्यक्ष के अलावा 4 अन्य सदस्य होंगे[11] (वित्त आयोग अधिनियम, 1951)

1. एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीष या ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार नियुक्ति के लिये अर्हित है,
2. एक व्यक्ति जिसे सरकार के वित्त और लेखाओं का विषेश ज्ञान है,
3. एक व्यक्ति जिसे वित्तीय विशयों और प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव है।
4. एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विषेश ज्ञान है।

अनुच्छेद 280 (3) के अनुसार आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह

क. संघ और राज्यों के बीच करो के शुद्ध आगम के जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित किये जाने हैं या किये जाएं वितरण के बारे में और राज्यों के बीच ऐसे आगमों के तत्सम्बन्धी भाग के आवंटन के बारे में,

ख. भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्तों के बारे में,

(ग) राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों के आधार राज्य में पंचायतों के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिये किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिये आवष्यक अध्युपायों के बारे में,

(घ) राज्य के वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों के आधार पर राज्य में नगर पालिकाओं के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिये किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिये आवश्यक अध्युपायों के बारे में।

(ङ) सुदृढ़ वित्त के हित में राश्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्दिश्ट किये गये किसी अन्य विषय के बारे में, राष्ट्रपति को सिफारिश करे ।

1.4.2.1 अभी तक गठित विभिन्न वित्त आयोग –

(सारणी–1)[12]

वित्त आयोग	स्थापना वर्ष	रिपोर्ट प्रस्तुति वर्ष	अध्यक्ष
प्हला	1951	1953	श्री नियोगी
छूसरा	1956	1957	श्री संतानम
तीसरा	1960	1962	श्री ए0के0चंदा
चैथा	1964	–	डा0 राजमन्नार
पंचवा	1968	1969	श्री महावीर त्यागी
छठा	1972	1973	श्री ब्रह्मानंद रेड्डी
सातवॉ	1977	1978	श्री षेलात
आठवॉ	1982	1984	श्री यशवंत राव चव्हाण
नवॉ	1986	1988–89	श्री एन0के0पी0 साल्वे
दसवॉ	1992	26.11.1994	श्री कृश्णचंद्र पंत
ग्यारहवॉ	03.07.1998	07.07.2000	–

बरहवॉ	01.11.2002	17.12.2004	डा0 सी0 रंगराजन
तेरहवॉ	01.11.2007	दिस0 2009	श्री विजय केलकर

1.4.3 कर एवं शुल्क में अन्तर

अनुच्छेद 265 यह प्रावधानित करता है कि विधि के प्राधिकार के बिना किसी भी कर का अधिरोपण नही किया जायेगा । यह प्रतिबंध सिर्फ कर पर ही लागू होता है, शुल्क पर नहीं।

हिन्दू धर्मादा आयुक्त मद्रास बनाम एल0 टी0 स्वामियार[13] वाद में उच्चतम न्ययालय द्वारा कर एवं शुल्क एवं में अन्तर व्यक्त किया गया । कर एक सामान्य भार होता है और करदाता को केवल यह लाभ मिलता है कि वह सभी लोगों के साथ लाभ में भागीदारी करता है । कर लोक प्राधिकारी द्वारा लोक प्रयोजन के लिये अनिवार्य धन–वसूली है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय है। यह किसी विशिष्ट सेवा के बदले लिया गया भुगतान नहीं है। शुल्क किसी विशिष्ट सेवा के लिये भुगतान होता है। शुल्क जिससे लिया जाता है राज्य वह धन उस व्यक्ति या वर्ग के लिये विशिष्ट सेवा प्रदान करने में व्यय करता है।[14]

1.5. संघ एवं राज्यों के बीच राजस्वों का वितरण–

संविधान की सातवीं अनुसूची मे तीन सूचियों के माध्यम से राज्य एवं केन्द्र के मध्य विषयों का बॅटवारा किया गया है। केन्द्र सूची में वर्णित विशयों पर केन्द्र को एवं राज्य सूची में अंकित विशयों पर राज्यों को कर लगाने का आत्यान्तिक अधिकार प्राप्त है। समवर्ती सूची में केवल कुछ ही करों का उल्लेख है।

संविधान में करों के उद्गृहीण, संग्रहीण एवं विनियोजन सम्बन्धित निम्न प्रावधान किये गये है –

1.5.1 संघ द्वारा उदगृहीत और विनियोजित किये जाने वाले षुल्क (अनुच्छेद 268) –

स्टाम्प षुल्क औशधीय और प्रसाधन निर्मितियों पर उत्पाद शुल्क (संघ सूची में वर्णित) भारत सरकार द्वारा उद्ग्रहीत किये जायेंगे परन्तु राज्यों द्वारा संग्रहीत एवं उन्हें ही सौंप दिये जायेगे।

<u>**सेवा कर –**</u>

अनुच्छे 268 क[15] के अनुसार भारत सरकार द्वारा आरोपित किया जायेगा एवं भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा संग्रहीत एवं विनियोजित किया जायेगा। इसके संग्रहण एवं विनियोग के सिद्धान्त संसद द्वारा निष्चित किये जायेगे।

1.5.2 संघ द्वारा उद्गृहीत और संग्रहीत किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर (अनुच्छेद 269) –

संविधान के 80वाॅ संशोधन अधिनियम द्वारा अनु0 269 के खण्ड(1) और (2) के स्थान पर नये खण्ड सम्मिलित किये गये जिसके अनुसार अनुच्छेद 269(1) माल के क्रय–विक्रय पर कर और माल के परेशण पर कर भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत और संग्रहीत किये जायेगें किन्तु खण्ड (2) में उपबन्धित रीति से राज्यों को 1 अप्रैल 1996 को या उसके पष्चात् सौप दिये जायेंगे या सौप दिये गये समझे जायेंगे।

1.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत एवं संग्रहीत कर एव उनका संघ तथा राज्यों के बीच वितरण –

संविधान के 88वाॅ संषोधन द्वारा अनुच्छेद 270 के खण्ड (1) में अनुच्छेद 268, 268 (क) एवं अनु0 269 को प्रतिस्थापित किया गया । इस अनुच्छेद के उपबन्ध के अनुसार उक्त अनुच्छेदों (प्रतिस्थापित) के सिवाय, संघ सूची में निर्दिश्ट सभी में निर्दिश्ट करों और षुल्कों पर अधिभार और संसद द्वारा बनाई गयी किसी विधि के अधीन विनिर्दिश्ट प्रयोजनों के लिये उदगृहीत कोई उपकर भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत किये जायेगें तथा खंड (2) में उपवंधित रीति से संघ और राज्यों के बीच वितरित किये जायेंगे।

खण्ड (2) यह कहता है कि ऐसे कर या षुल्क के षुद्ध आगमों का विहित प्रतिषत भारत की संचित निधि का भाग नही होगा एवं जिन राज्यों के भीतर वह षुल्क उस वर्श में उद्रग्रहणीय है वह उन्हीं राज्यों को सौंप दिया जायेगा। जिसकी रीति एवं समय खण्ड (3) में उपबंधित रीति से विहित की जायेगी ।

खण्ड (3) में 'विहित' का अर्थ स्पश्ट किया गया है जिसके अनुसार –

1. जब तक वित्त आयोग का गठन नहीं किया जाता, तब तक राष्ट्रपति के आदेश द्वारा विहित; और

2. वित्त आयोग के गठन के पष्चात वित्त आयोग की सिफारिषों पर विचार के उपरान्त राष्ट्रपति के आदेश द्वारा विहित[18],

1.6 शुल्कों या करों में अभिभार द्वारा वृद्धि

अनुच्छेद 271 संघ को यह पूर्ण शक्ति प्रदान करता है कि वह अनु0 269 एवं अनु0 270 में वर्णित किसी भी शुल्कों एवं करों पर कभी कभी अपने प्रयोजन हेतु अभिभार द्वारा वृद्धि कर सकेगी एवं ऐसे अभिभार भारत की संचित निधि का भाग होगे, अर्थात उन पर पूर्ण नियंत्रण संघ का होगा ।

1.7 राज्यों को संघ से अनुदान

अनुच्छेद 275 द्वारा कुछ राज्यों को संघ से मिलने वाले अनुदान का प्रावधान किया गया है । यह अनुदान सहायता राषि के रुप में होगा एवं जो भारत की संचित निधि से दिया जायेगा, भिन्न–भिन्न राज्यों के लिये अनुदान राषि भिन्न भिन्न हो सकती है एवं इसका निर्णय संसद द्वारा विधि के द्वारा किया जायेगा

परन्तु ऐसी राषि को उन राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के विकास पर खर्च किया जायेगा या अनुसूचित क्षेत्रों को उसी राज्य के अन्य विकसित क्षेत्रों के समकक्ष उन्नत बनाने पर खर्च किया जायेगा ।

अनुच्छेद 275 द्वारा असम राज्य के अनुदान के लिये विषेश उपबन्ध किये गये हैं।

अनुच्छेद 273 द्वारा जूट उत्पादक राज्यों असम, बिहार, उडीसा और पष्चिम बंगाल को जूट पर और जूट उत्पादों पर निर्यात षुल्क के स्थान पर अनुदान का उपबन्ध किया गया है।

1.8 राज्यक्षेत्रीय सागर खंड या महाद्वीपीय मग्नतट भूमि में स्थित मूल्यवान चीजों और अनन्य आर्थिक क्षेत्र के संपत्ति स्रोतों का संघ में निहित होना।

<u>अनुच्छेद 297 द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि –</u>

1.भारत के राज्यक्षेत्रीय सागर खंड या महाद्वीपीय मग्नतट या अनन्य आर्थिक क्षेत्र में समुद्र के नीचे की सभी भूमि, खनिज और अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होगी और संघ के प्रयोजनों के लिये धारण की जायेगी।

2.भारत में अनन्य आर्थिक क्षेत्र के अन्य सभी संपत्ति स्रोत भी संघ में निहित होंगे और संघ के प्रयोजन के लिये धारण किये जायेगें।

3.भारत के राज्यक्षेत्रीय सागर खंड महाद्वीपीय मग्नतट भूमि, अनन्य आर्थिक क्षेत्र और अन्य सामुद्रिक क्षेत्रों की सीमाएं वे होगी जो संसद द्वारा बनाई गयी विधि द्वारा या उसके अधीन समय समय पर विनिर्दिश्ट की जाये।

<u>निर्देश–</u>

1. (1984) 3 एस0 सी0 सी0 1 पृष्ठ 115
2. डा0 जे0 एन0 पांडे, भारत का संविधान, पृष्ठ 34
3. अनुच्छेद 4
4. इन री बेरूबारी (1960) ए0 आइ0 आर0 एस सी 845
5. 1969 3 एस0 सी0 आर0 254 ('69) ए0 एस सी0, 783
6. 1960 1 एस0 सी0 आर0 605 ('60) ए0 एस सी0, 51
7. डी0 डी0 वसु, भारत का संविधान– एक परिचय, पृश्ठ 335
8. Ibid
9. अनुच्छेद 266 (2)
10. अनुच्छेद 266 (3)
11. डी0 डी0 वसु, भारत का संविधान– एक परिचय, पृश्ठ 339, 340
12. Ibid
13. ए0 आइ0 आर0 1954 एस सी 282
14. डा0 जे0 एन0 पांडे, भारत का संविधान, पृष्ठ 604
15. संविधान के 88वें संषोधन द्वारा जोड़ा गया।
16. स्पश्टीकरण (क), अनुच्छेद 269
17. स्पश्टीकरण (ख), अनुच्छेद 269
18. अनुच्छेद 270 को 80वां संविधान संषोधन अधि0 2000 द्वारा जोड़ा गया।

अभ्यास प्रश्न –

1.अनुच्छेद 3 के अनुसार निम्न में कौन सत्य है संसद विधि द्वारा

क. किसी राज्य का क्षेत्र बढा सकेगी।

ख. किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी।

ग. किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

घ. उपरोक्त सभी

2.किस विद्वान ने भारतीय संविधान को अर्ध–संघीय प्रकृति का कहा है?

क. प्रो0 डायसी

ख. आचार्य दुर्गा दास वसु

ग. प्रो0 ह्वीयर

घ. प्रो0 जेनिंग्स

3.योजना आयोग के बारे में कौन सा कथन सत्य है –

क. यह एक संवैधानिक संस्था है ।

ख. यह एक संवैधनोत्तर संस्था है।

ग. अनुच्छेद 280 में इसके गठन का प्रावधान है।

घ. उपरोक्त में कोई नही ।

4.किस वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 30, 2009 को दी है–

क. ग्यारहवें

ख. बारहवें

ग. तेरहवें

घ. चौदहवें

5.सेवा कर आरोपित किया जाता है–

क. राज्य सरकार द्वारा

ख. केन्द्र सरकार द्वारा

ग. राष्ट्रपति द्वारा

घ. राज्यपाल द्वारा

6.सरकारिया आयोग के प्रतिवेदन में राज्यों की अधिक स्वायत्ता देने की बात कही गयी है। सत्य/असत्य

7.अनुच्छेद 275 में संघ द्वारा राज्यों को अनुदान सम्बन्धी प्रावधान है, सत्य/असत्य

8.केन्द्र सरकार द्वारा किसी राज्य की भौगोलिक सीमा में परिवर्तन संविधान संषोधन के द्वारा ही किया जा सकता है। सत्य / असत्य

9.किसी राज्य के अन्तर्गत मिलने वाले खनिज पर राज्य सरकार का आधिपत्य होताहै । सत्य/असत्य

10.वित्त आयोग का गठन राश्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 280 के तहत किया जाता है। सत्य/असत्य

1.9 सारांश

केन्द्र तथा राज्यों में षक्तियों का वितरण संघात्मक सिद्धान्त की एक प्रमुख विशेषता है। प्रो0 ह्वीयर कें अनुसार संघात्मक सिद्धान्त से तात्पर्य है संघ एवं राज्यों में शक्तियों का वितरण ऐसी रीति से किया जाये कि दोनो अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं किन्तु एक–दूसरे के सहयोगी भी हैं। इसका तात्पर्य यह है कि राज्यों को कुछ सीमा तक स्वायत्ता होनी चाहिये।

भारत की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को मद्देनजर करते हुए एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता महसूस की गयी।

अनुच्छेद 3 एवं 4 के अन्तर्गत किसी भी राज्य की भौगोलिक सीमा में परिवर्तन का पूर्ण अधिकार संसद को दिया गया है परन्तु इससे पूर्व कुछ परिस्थितियों में सम्बन्धित राज्य से पूर्व परामर्ष भी किये जाने का प्रावधान बनाया गया है।

केन्द्र एवं राज्यों के मध्यम राजस्वों के वितरण में भी केन्द्र अभिभावी है संघ के आय के स्रोत राज्यों से अधिक है परन्तु इससे प्राप्त पर्याप्त मात्रा राज्यों कों उसकी कल्याणकारी योजनाओं की पूर्ति हेतु दी जाती है। जिसका निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाता है, किन्तु व्यवहार में वित्त आयोग से अधिक प्रभावषाली योजना आयोग है जो कि एक संविधानोत्तर संस्था है । योजना आयोग का निर्माण संसद द्वारा एक संकल्प द्वारा किया गया जिसका अध्यक्ष स्वयं प्रधानमंत्री होता है जो कि केन्द्र पर आरुढ़ सत्तादल का प्रमुख होता है अतः केन्द्र एवं राज्यों में विभिन्न दलों की सत्ता होने पर उस पर पक्षपात के आरोप लगते रहे हैं।

केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों के पुनर्विलोकन हेतु केन्द्र सरकार द्वारा सरकारिया आयोग की स्थापना की गयी ।

<u>सरकारिया आयोग की सिफारिशें –</u>

1. आयोग ने संघ की षक्ति को कम करने की राज्यों की मॉगों को अस्वीकार कर दिया है । आयोग ने कहा कि देष की एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिये केन्द्र का शक्तिशाली होना अत्यन्त आवश्यक है।
2. आयोग ने कहा कि संविधान में किसी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। उसके अधिकतर उपबन्ध समय की कसौटी पर सफल रहे हैं।
3. राजस्वों के वितरण के क्षेत्र में भी आयोग ने किसी बड़े परिवर्तन किये जाने का सुझाव नही दिया है, किन्तु आयोग ने संविधान में संषोधन करके निगम कर, माल के पारेषण पर कर तथा विज्ञापन और संवाद–प्रसारण पर कर को राज्यों में बॉटे जाने की सिफारिश की ।
4. आयोग ने सुझाव दिया कि अवशिष्ट षक्तियों में से कर को छोड़कर अन्य सभी बातों को समवर्ती सूची में रखा जाना चाहिये। इस सूची में आ जाने से राज्यों को भी उन पर विधि बनाने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी। कुछ विषयों को राज्य सूची में हस्तान्तरित किये जाने की मॉग को आयोग ने अस्वीकार कर दिया है।
5. आयोग ने सुझाव दिया कि समवर्ती सूची पर विधि बनाने से पूर्व केन्द्र को राज्यो से परामर्श करना चाहिये ।

1.10 शब्दावली –

अर्द्धसंघीय – केन्द्र पर राज्यों के मध्य शक्तियों का बॅटवारा असमान होता है अर्थात केन्द्र अधिक शक्तिशाली होता है।

अभिभार – अतिरिक्त भार, कर या शुल्क में अतिरिक्त वृद्धि

अनुच्छेद–143 – अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है, जो ऐसे व्यापक महत्व का है जिस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समाचीन है तो वह उस प्रश्न को विचार करने के लिये उस न्यायालय को निर्देशित कर सकेगा और वह न्यायालय ऐसी सुनवाई के पश्चात् जो वह ठीक समझता है, राष्ट्रपति को उस पर अपनी राय प्रतिवेदित कर सकेगा।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. (घ) 2.(ग) 3. (ख) 4 (ग) 5(ख)

6. असत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. असत्य 10. सत्य

1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2009, लेक्सिस नेक्सिस बटरबर्थ वाधवा नागपुर

2. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी

3. सीरबाई, एच0एम0 कान्स्टीट्यूषनल लॉ ऑफ इंडिया, 4वॉ संस्करण वोल्यूम–1 युनीवर्सल बुक ट्रेडर्स

4. भारत का संविधान, (बेयर एक्ट) द्विभासी संस्करण कानून प्रकाषक, संस्करण 2008

1.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1. दुर्गा दास बसु, षार्टर कंस्टिट्यूषन ऑफ इंडिया

2. डा0 जे0 जे0 आर0 उपाध्याय, भारत का संविधान

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्यों के पुर्नगठन की प्रक्रिया की विवेचना कीजिये ।

2. संघ एवं राज्यों के मध्य वित्तीय शक्तियों के वितरण पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।

3. ''भारतीय संविधान एक ऐसे संघ का निर्माण करता है जिसमें केन्द्रीयकरण की सषक्त प्रवृत्ति है।'' इस कथन से आप कहॉ तक सहमत है। सोदाहरण समझाएं

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–1.संघवाद

इकाई–2.संसाधनों पर अन्तर्राज्यिक विवाद; आन्तरिक विस्थापितों का पुर्नस्थापन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 संवैधानिक उपबंध

2.3.1 उच्चतम न्यायालय द्वारा राज्यों के मध्य विवादों का निपटारा।

2.3.2 जल सम्बन्धी विवादों का निवारण

2.3.3 अन्तरराज्यीय परिषद के सम्बन्ध में उपबंध

2.4 क्षैत्रिक सम्बन्ध का सिद्धान्त

2.5 अन्तराज्यिक जल विवाद

2.5.1 कावेरी जल विवाद

2.5.2 बालीमेला जलाशय – जल विद्युत गृह को लेकर सीमा क्षेत्र विवाद

2.5.3 इचम्पैली परियोजना

2.5.4 होगेनक्कल प्रपात जल विवाद

2.5.5 मांडवी नदी जल विवाद

2.5.6 पलार नदी जल विवाद

2.5.7 श्रीराम सागर परियोजना

2.6 अन्तरराज्यिक सीमा विवाद

2.6.1 बेलगाँव सीमा विवाद

2.6.2 आसाम – मेघालय सीमा विवाद

2.6.3 आसाम – नागालैण्ड सीमा विवाद

2.6.4 आसाम – अरूणाचल प्रदेश विवाद

2.6.5 आसाम – मिजोरम सीमा विवाद

2.7 भारत में आन्तरिक विस्थापन के कारण

2.8 विकास परियोजनाएं एवं पुर्नवास

2.9 प्राकृतिक आपदा – प्रेरित विस्थापन

2.10 विस्थापितों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति का अभाव

2.11 विस्थापितों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता

2.12 एसोसिएशन फॉर इंडियाज डेवेलपमेन्ट (AID)

2.13 सारांश

2.14 महत्वपूर्ण शब्दावली

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.16 संदर्भ ग्रन्थ

2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.18 निबंधात्मक प्रश्न

2.1. प्रस्तावना

परिसंघ प्रणाली में केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया जाता है। प्रत्येक राज्य की अपनी–अपनी सीमाओं के भीतर प्रभुता होती है। इन सीमाओं का निर्धारण मानव मस्तिष्क द्वारा किया जाता है। अतः यथार्थ के धरातल पर अनेक विवादों के उत्पन्न होने की संभावनाएं बनी रहती हैं। परिसंघ प्रणाली की सफलता राज्यों के परस्पर सहयोग एवं समन्वय पर आधारित होती है। भौगोलिक एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों को मानव द्वारा निर्धारित सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। अतः विभिन्न परिसंघीय ईकाईयों अर्थात राज्यों के भीतर मतभेदों का उभरना स्वाभाविक ही है। इन विवादों से उत्पन्न घर्षण को रोकने के लिये संविधान के अन्तर्गत विभिन्न उपबन्ध किये गये हैं। राज्यों के मध्य जल विवादों को हल करने के सम्बन्ध में केन्द्र द्वारा अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया गया है। जिसके अन्तर्गत इस प्रकार के विवादों के निपटारे हेतु अधिकरण के गठन का प्रावधान है। राष्ट्र के विकास हेतु जहाँ बाँध, जलाशय एवं उद्योग का निर्माण अपरिहार्य है वहीं इन परियोजनाओं के चलते लाखों लोगों को अपना सदियों का मूल निवास स्थान छोड़कर देश के दूसरे भागों में विस्थापित होना पड़ता है। जिनके पुनर्वास सम्बन्धी कोई राष्ट्रीय नीति अभी देश के पास नहीं है। टिहरी बांध के निर्माण के फलस्वरूप सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी टिहरी नगर को जलसमाधि लेनी पड़ी एवं कई ऐतिहासिक विरासतें भी जल मग्न हो गयीं। ऐसे में अपनी जड़ों से दूर होने का दर्द एक विस्थापित ही बता सकता है। परन्तु अभी तक नयी टिहरी को योजनाबद्ध तरीके से नहीं बसाया जा सका है। इस तरह की एक नहीं कई परियोजनाएं हैं। आतंकवादी एवं सामुदायिक हिंसा के चलते भी लाखों कश्मीरी पंडितों एवं पूर्वोत्तर राज्यों के लोगों को अपने ही देश में विस्थापित होकर शिविरों में जिंदगी बितानी पड़ रही है। जहाँ

मूल–भूत सुविधाओं का भी अभाव है। इस सम्बन्ध में कोई योजनाबद्ध पुनर्वास कार्यक्रम भी सरकार के पास नहीं है।

2.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–
- राज्यों के विवादों से सम्बन्धित संवैधानिक उपबंध
- राज्यों के विवादों के मुख्य कारण
- संसाधनों पर अन्तर्राज्यिक विवाद
- प्रमुख विवादित योजनाएं
- राज्यों के मध्य सीमा विवाद
- आन्तरिक विस्थापन के कारण
- राष्ट्रीय पुनर्वास नीति का अभाव

2.3 संवैधनिक उपबंध

राज्यों के मध्य होने वाले विवादों के निपटारे के लिये संविधान में अनेक उपबंध किये गये हैं जिनके अन्तर्गत विवादों के न केवल न्यायिक अवधारण हेतु अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत उपबंध किये गये हैं बल्कि न्यायिकेत्तर निपटारे के लिये भी उपबंध है।

2.3.1 उच्चतम न्यायालय द्वारा राज्यों के मध्य विवादों का निपटारा :–

राज्यों के मध्य होने वाले विवादों के न्यायिक निपटारे सम्बन्धी मुख्य रूप से अनुच्छेद 131 में प्रावधान किये गये हैं। उच्चतम न्यायालय को इस विषय में अनन्य अधिकारिता प्रदान की गयी है।

अनुच्छेद 131 के अनुसार – इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए–

क. भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच, या

ख. एक और भारत सरकार और किसी राज्य या राज्यों और दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्यों के बीच, या

ग. दो या अधिक राज्यों के बीच, किसी विवाद में, यदि और जहाँ तक उस विवाद में (विधि का या तथ्य का) ऐसा कोई प्रश्न अंतवर्लित है जिस पर किसी विधिक अधिकार का अस्तित्व या

विस्तार निर्भर है तो और वहाँ तक अन्य न्यायालयों का अपवर्जन करके उच्चतम न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता होगी; परन्तु उक्त अधिकारिता का विस्तार उस विवाद पर नहीं होगा जो किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबंध, सनद या वैसी ही अन्य लिखत से उत्पन्न हुआ है जो इस संविधान के प्रारंभ से पहले की गयी थी या निष्पादित की गयी थी और ऐसे प्रारंभ के पश्चात प्रवर्तन में है या जो यह उपबंध करती है कि उक्त अधिकारिता का विस्तार ऐसे विवादों पर नहीं होगा।

अर्थात राज्यों के मध्य विवादों में विधि का या तथ्य का कोई प्रश्न अन्तर्वलित होने पर उस विवाद को उच्चतम न्यायालय द्वारा सुलझाया जा सकेगा।

2.3.2 जल सम्बन्धी विवादों का निवारण

अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय जल विवादों के न्यायिकेतर अधिकरण द्वारा न्याय निर्णयन की व्यवस्था है। अनुच्छेद 262 के अनुसार–

(1) संसद विधि द्वारा, कि अन्तर्राज्यीय नदी या नदी–दून के या उसमें जल के प्रयोग, वितरण या नियन्त्रण के संबंध में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन के लिए उपबंध कर सकेगी।

(2) इस संविधान में किसी बात के हाते हुए भी, संसद, विधि द्वारा, उपबंध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय खंड (1) में निर्दिष्ट किसी विवाद या परिवाद के सम्बन्ध में अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा।

2.3.3 अन्तर्राज्यीय परिषद के सम्बन्ध में उपबंध

अनुच्छेद 263 प्रशासनिक निकाय द्वारा अन्वेषण और सिफारिश के माध्यम से अन्तर्राज्यिक विवादों के निवारण की व्यवस्था करता है।

अनुच्छेद 263 के अनुसार–

'यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिषद की स्थापना से लोक हित की सिद्धि होगी जिसे–

(क) राज्यों के बीच जो विवाद उत्पन्न हो गए हों उनकी जाँच करने और उन पर सलाह देने,

(ख) कुछ या सभी राज्यों के अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के सामान्य हित से संबंधित विषयों के अन्वेषण और उन पर विचार–विमर्श करने, या

(ग) ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करने और विशिष्टियां उस विषय के सम्बन्ध में नीति और कारवाई के अधिक अच्छे समन्वय के लिए सिफारिश करने,के कर्तव्य का भार सौंपा जाए जो

राष्ट्रपति के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना करे और उस परिषद द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों की प्रकृति को तथा उसके संगठन और प्रक्रिया को परिनिश्चित करे।

2.4 क्षेत्रिक संबंध का सिद्धान्त (Theory of Territorial Nexus)

संविधान का अनुच्छेद 245 राज्यों के विधान मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के विस्तार के बारे में उपबन्ध करता है। अनुच्छेद 245(1) के अनुसार किसी राज्य का विधान मंडल संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा। अर्थात राज्य की विधायी शक्ति का विस्तार राज्यक्षेत्र तक ही सीमित है। किन्तु इस सामान्य नियम का एक अपवाद भी है, अर्थात राज्य द्वारा बनाई गई विधि भी राज्यक्षेत्र से बाहर के क्षेत्र में लागू की जा सकती है यदि राज्य और उस विषय वस्तु से कोई सम्बन्ध हो जिसके ऊपर वह विधि लागू होती है। इसे क्षेत्रिक संबंध का सिद्धान्त कहते हैं।

स्टेट ऑफ बॉम्बे बनाम आर0एम0डी0सी0[1] के मामले में एक अधिनियम के अधीन बम्बई राज्य को लाटरी और इनामी विज्ञापनों पर कर लगाने की शक्ति प्राप्त थी। यह कर उस समाचार–पत्र पर भी लगया गया जो बंगलौर से प्रकाशित होता था एवं बम्बई राज्य में भी उसका प्रसारण था। प्रत्यर्थी इस समाचार पत्र द्वारा इनामी लाटरी चलाता था। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि समाचार पत्र पर कर लगाने के लिए उचित क्षेत्रिक संबंध विद्यमान था।

उपरोक्त मामले में दो बातें आवश्यक हैं–

(1)विषय वस्तु तथा उस राज्य में जो कर लगाना चाहता हो संबंध भ्रामक नहीं वास्तविक होना चाहिए,

(2) जो दायित्व लगाया जाता है वह प्रसंग के अनुकूल होना चाहिए। किसी मामले में पर्याप्त संबंध है या नहीं इस प्रश्न का निर्धारण प्रत्येक वाद में तथ्यों के आधार पर किया जाएगा।

इसी प्रकार श्रीकान्त वी0 कारूनकर बनाम गुजरात राज्य[2] के मामले में गुजरात एग्रीकल्चरल लैण्ड सीलिंग एक्ट, 1960 की धारा 6(3.।) की विधिमान्यता को राज्य क्षेत्रातीत (extrateritorial) के आधार पर चुनौती दी गयी। अपीलार्थी की गुजरात राज्य में खेती योग्य भूमि थी। उसकी कुछ भूमियां राज्य क्षेत्र से बाहर भारत के अन्य भागों में भी थी। उक्त धारा के उपबन्ध के अनुसार भूमि की अधिकतम सीमा के प्रयोजन के लिए राज्य के बाहर स्थित भूमि को भी सम्मिलित किया जाएगा। उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया कि राज्य विधान मण्डल क्षेत्रिक संबंध के आधार पर उक्त विधि बनाने में सक्षम था। उक्त मामले में भूमि का राज्य से अभिन्न संबंध था।

2.5 अन्तर्राज्यिक जल विवाद

भारत का एक बड़ा क्षेत्र अपेक्षाकृत सूखा है। स्वास्थ्य, कृषि एवं उद्योगों में जल की प्रमुख भूमिका है। ऐसे में राज्यों के मध्य नदी–जल पर विवाद होना स्वभाविक है क्योंकि प्रकृति को मानव निर्मित सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। तमिलनाडु एवं आन्ध्रप्रदेश के मध्य कावेरी–जल–विवाद बहुत पुराना है।

संविधान की सांतवी अनुसूची की राज्य सूची में, जल राज्य के विषय के अन्तर्गत आता है।[3] यही विषय संघ सूची की प्रविष्टि 56 के अधीन भी है। अनुच्छेद 262 संघ सूची की प्रविष्टि 56 पर विधि बनाने का अनन्य अधिकार संसद को प्रदान करती है। इस शक्ति के प्रयोग में संसद ने अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया जिसके अन्तर्गत किसी अन्तर्राज्यिक नदी या नदी–दून के जल के बारे में दो या अधिक राज्यों के बीच उद्भूत होने वाले विवाद के न्याय निर्णयन के लिए तदर्थ अधिकरण के गठन का उपबन्ध किया गया है। हालांकि अधिकरण का निर्णय राज्यों को कभी कभी मान्य नहीं होता है अतः इसका निर्णय बाध्यकारी नहीं है। अंत में केन्द्र को ही हस्तक्षेप करना पड़ा है। परन्तु कई मामलों में उदाहरणार्थ हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, राजस्थान एवं पंजाब के मध्य रावी – व्यास जल विवाद निपटारे पर केन्द्र भी असफल ही रहा है।

2.5.1 कावेरी जल विवाद

यह विवाद दो राज्यों कर्नाटक एवं तमिलनाडु के मध्य है। इस उत्पत्ति 1892 एवं 1924 में मद्रास प्रेसीडेन्सी एवं प्रिंसली स्टेट ऑफ मैसूर के मध्य की गयी दो विवादित संधियों से हुई। कर्नाटक राज्य का मानना है कि उपरोक्त दोनों संधिया मद्रास प्रेसीडेंसी के पक्ष में है। उसकी माँग है कि इसका निपटारा जल के बराबर बंटवारे (मुनंजंइसम ींतपदह व्ंिजमत) पर आधारित हो, दूसरी तरफ तमिलनाडू का कहना है कि उसने इन संधियों के आधार पर करीब 30,00,000 एकड़ भूमि विकसित कर ली है जो कावेरी जल के प्रयोग पर निर्भर है अगर वर्तमान पद्धति में कोई बदलाव किया जाता है तो इससे राज्य के लाखों किसानों की जिंदगियाँ प्रभावित हो जायेंगी।

इस मामले के निपटारे के लिये 1990 में केन्द्र सरकार द्वारा अधिकरण का गठन किया गया। इस अधिकरण द्वारा अपना अंतिम फैसला 5 फरवरी 2007 को सुनाया गया जिसके अनुसार तमिलनाडू को 419 करोड़ फुट^3 जल एवं कर्नाटक को 270 करोड़ फुट^3 जल आवंटित किया गया एवं केरल और पांडिचेरी को क्रमशः 30 करोड़ फुट^3 और 7 करोड़ फुट^3 जल आवंटित

किया गया। परन्तु कर्नाटक सरकार ने इस फैसले से असहमति जताते हुए पुर्नमूल्यांकन याचिका दाखिल की है।

2.5.2 जल विद्युत गृह को लेकर सीमा क्षेत्र विवाद

बालीमेला जलाशय उड़ीसा राज्य में सिलेरू नदी जो कि गोदावरी की एक सहायक नदी है पर मलंकागिरी जिले में स्थित है। आन्ध्रप्रदेश एवं उड़ीसा राज्य में हुए अनुबन्ध के अनुसार बालीमेला डाम का निर्माण किया गया एवं सिलेरू नदी के जल के समान बंटवारे पर सहमति हुई। विवाद का कारण आन्ध्र–प्रदेश द्वारा बालीमेला के पाद–क्षेत्र में प्रस्तावित 30 डॅ की जल विद्युत ईकाई है। समझौते के अनुसार आन्ध्र प्रदेश को उसकी सहमति प्राप्त है लेकिन उड़ीसा का कहना है कि विद्युत गृह का प्रस्तावित क्षेत्र उसके राज्य की सीमा में आता है। अतः आन्ध्र प्रदेश उसे नहीं लगा सकता। अतः इस सीमा–क्षेत्र विवाद के कारण पिछले 40 वर्षों से बहुत कम मूल्य पर 30 डॅ विद्युत का उत्पादन रूका हुआ है। समझौते के अनुसार कोलाब नदी का अतिरिक्त जल जो ऊपरी कोलाब जलाशय में है, को उड़ीसा एवं आन्ध्र प्रदेश सरकारों द्वारा सिलेरू/मेककुण्ड बेसिन की तरफ मोड़ना था जिससे विद्युत उत्पादन सामर्थ्य को बढ़ाया जा सके, परन्तु इसे भी अभी यथार्थ पर लागू नहीं कराया गया है। उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश की सरकारों को इस गतिरोध को तोड़कर विकास की राह पर बढ़ना चाहिए एवं तटस्थ विशेषज्ञों की सहायता से मतभेदों को दूर करना चाहिए।

2.5.3 इचम्पैली परियोजना (Icchampally Project)

यह आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़ की संयुक्त बहुउद्देशीय परियोजना है। जिसके अन्तर्गत गोदावरी नदी पर जल विद्युत गृह, बाढ़ नियन्त्रण, सिंचाई आदि के लिये उपक्रम बनाने की योजना है।

2.5.4 होगेनक्कल प्रपात जल विवाद

यह विवाद तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्यों के मध्य है। जिसके अन्तर्गत होगेनक्कल एकीकृत पेयजल परियोजना प्रस्तावित है। इसका शिलान्यास फरवरी 2008 में किया गया है।

1.विवाद के बिन्दु निम्नलिखित हैंः–होगेनक्कल धरमपुरी जिले में तमिलनाडु राज्य में अवस्थित है। इस प्रपात के पास ही एक निर्जन टापू पर कर्नाटक अपना अधिकार जताता है।

2.कर्नाटक इस परियोजना का विरोध दो कारणों से कर रहा है। पहला तो इससे उसका कावेरी नदी के जल का हिस्सा प्रभावित होगा एवं दूसरा उसका कना है कि मद्रास प्रेसीडेंसी के नक्शे के अनुसार यह मनोहर प्रपात उसके अन्तर्गत आता है अतः यह परियोजना विधि विरूद्ध है।

3.जबकि तमिलनाडु का कहना है कि इस परियोजना को सन् 1998 में कर्नाटक राज्य एवं केन्द्र सरकार की मंजूरी मिल चुकी है एवं इससे कावेरी जल के हिस्से (कर्नाटक) पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

2.5.5मांडवी नदी जल विवाद :–

मांडवी नदी गोवा राज्य की जीवन रेखा कही जाती है। इसे महादयी एवं महादी नामों से भी जाना जाता है। इसका उदगम कर्नाटक के बेलगाम जिले में है। यह 29किमी0 की दूरी कर्नाटक एवं 52 किमी की दूरी गोवा में तय करती है। दोनों राज्यों के मध्य विवाद का कारण इसके जल की हिस्सेदारी को लेकर है जिसे कर्नाटक यह कहकर भड़का देता है कि वह इस नदी के कुछ जल के हिस्से को महादयी नदी से मालाप्रभा नदी की ओर मोड़ देगा। कर्नाटक राज्य के ऐसा करने पर गोवा की पूरी अर्थव्यवस्था बहुत प्रभावित हो जायेगी।

2.5.6 पलार नदी जल विवाद

पलार नदी का उदगम कर्नाटक राज्य के कोलार जिले से है। यह राज्य में 93 किमी0 का सफर तय करके 33 किमी0 आन्ध्र प्रदेश एवं फिर 222किमी0 तमिलनाडु में दूरी तय कर अन्त में बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। आन्ध्र प्रदेश इस नदी पर अपने प्रदेश में सिंचाई परियोजना का निर्माण कर रही है। जिसका तमिलनाडु द्वारा कड़ा विरोध किया जा रहा है। तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जयललिता का कहना है कि पलार 1892 के समझौते के अन्तर्गत अनुसूची ए में दर्ज अन्तर्राज्यिक नदी है। जिसके अनुसार नदी के ऊपरी बहाव पर कोई भी उपक्रम नदी के निचले बहाव वाले राज्य की अनुमति के बिना स्थापित नहीं किया जा सकता। इस नदी के ऊपरी बहाव पर कोई जलाशय बनाने की स्थिति में तमिलनाडु के पांच बड़े जिलों– वेलोर, कॉचीपुरम, तिरूवन्नमलाई, थिरूवलूर एवं चेन्नई के लोग प्रभावित होंगे।

2.5.7 श्रीराम सागर परियोजना

श्रीराम सागर गोदावरी नदी पर आन्ध्र प्रदेश की सिंचाई परियोजना है। जिससे करीमनगर, वारंगल, अदिलाबाद, नालगोंडा एवं खम्माम जिलों की सिंचाई जरूरतें पूरी होती हैं एवं यह वारंगल जिले को पेयजल भी उपलब्ध कराती है। एक जल विद्युत ग्रह भी इसी जगह पर अवस्थित है।

इस परियोजना में विवाद के बिन्दु महाराष्ट्र द्वारा इस बॉध के जलग्रहण क्षेत्र में अनेक मध्य एवं लघु सिंचाई योजनाओं का निर्माण है। जिसके कारण इसकी जल उपलब्धता पिछले नौ वर्षों में 33 प्रतिशत तक कम हो गयी है। श्रीराम सागर परियोजना सन् 1957 में प्रारम्भ हुई थी एवं अभी तक पूरी नहीं हो पायी है। केन्द्र सरकार द्वारा अन्तर्राज्यिक जब विवाद अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत इस विवाद के निवारण हेतु अधिकरण की स्थापना की गयी है ताकि इस समस्या का हल निकालकर इस पुरानी सिंचाई परियोजना को बचाया जा सके।

उपरोक्त अन्तर्राज्यिक जल विवादों के अतिरिक्त अनेकों अन्य परियोजनाएं भी कई राज्यों के मध्य विवादित है जिनमें, मुल्लापेरियार बांध, पोलावरम परियोजना, रावी नदी, सतलज– यमुना लिंक केनाल परियोजना, कालसा–बंदूरी–नाला परियोजना, तुंगभद्रा बांध, वामसाधारा नदी आदि है। राज्यों के मध्य विवाद के कारण परियोजना अधर में पड़ जाती हो जिसके कारण जहाँ इनकी लागत बढ़ जाती है वहीं विकास भी रूक जाता है। अतः इस सम्बन्ध में एक सर्वमान्य नीति की आवश्यकता है। केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों का ही कर्तव्य बनता है कि वे क्षेत्रीय सोच से काम न लेकर राष्ट्रीय सोच बनाएं ताकि इन क्षेत्रीय झगड़ों एवं मनमुटावों से बचा जा सके और समग्र राष्ट्र का विकास हो सके।

2.6अन्तर्राज्यिक सीमा विवाद

2.6.1 बेलगांव सीमा विवाद

बेलगाँव सीमा विवाद महाराष्ट्र एवं कर्नाटक राज्यों के मध्य है। बेलगाँव वर्तमान में कर्नाटक राज्य का हिस्सा है जो पहले बाम्बे प्रसीडेंसी के अन्तर्गत आता था एवं इस पर महाराष्ट्र भाषायी आधार पर अपना दावा जताता है। जब भाषयी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया तो ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर बार्डर द्वारा बेलगांव को कर्नाटक में शामिल किया था।

महाराष्ट्र सरकार द्वारा 23 जून 1957 को दिये गये ज्ञापन–पत्र के आधार पर केन्द्र सरकार ने 5 जून 1960 को चार सदस्यीय महाजन समिति की स्थापना की जिसके दो प्रतिनिधि महाराष्ट्र

एवं दो प्रतिनिधि तत्कालीन मैसूर राज्य से थे। परन्तु यह समिति किसी समझौते पर पहुँचने में नाकाम रही।

महाराष्ट्र सरकार के जोर देने पर केन्द्र सरकार ने 25 अक्टूबर 1966 को महाजन कमीशन की स्थापना की। जिसके अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय ने मुख्य न्यायमूर्ति मेहर चन्द महाजन थे। महाजन कमीशन की रिपोर्ट के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैंः–

1.बेलगांव कर्नाटक के पास ही रहेगा।

2.करीब 247 गांव/स्थान, जत्ता, अकालाकोट, शोलापुर कर्नाटक का हिस्सा रहेंगे।

3.करीब 264 गांव/स्थान, नन्दगाड़, निप्पानी खानापुर, महाराष्ट्र का हिस्सा बनेंगे।

4.कसारागोड़ (केरला) कर्नाटक का हिस्सा बनेगा।

महाराष्ट्र एवं केरल की सरकारों ने उपरोक्त सुझावों को मानने से इंकार कर दिया।

15 मार्च 2006 को महाराष्ट्र सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय में बेगगांव शहर पर अपना दावा ठोकते हुए वाद दायर किया गया कि मराठी भाषी लोग कर्नाटक में अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं अतः उसे महाराष्ट्र में शामिल किया जाये। इस मामले को कर्नाटक एवं महाराष्ट्र सरकारों द्वारा राजनीतिक रंग दिया गया। जिससे यह सुलझने के बदले उलझता चला गया। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद की सुनवाई 17 जनवरी 2007 से शुरू की। मामला अब न्यायालय के सुपुर्द है। परन्तु जब तक राज्य सरकारें कोई सर्वमान्य समाधान स्वयं नहीं तलाशेंगी तब तक मामला नहीं सुलझेगा।

2.6.2 आसाम मेघालय सीमा विवाद

यह विवाद कई दशक पुराना है। इसकी शुरूआत तब हुई जब मेघालय द्वारा आसाम पुनर्गठन अधिनियम, 1971 को चुनौती दी गयी। इस अधिनियम के द्वारा मिकिर पहाड़ी के ब्लाक– प्रथम एवं द्वितीय को (वर्तमान में कार्बी, आंगलौग जिला) आसाम के हवाले कर दिया गया था। मेघालय का कहना है कि ये दोनों ब्लाक सन् 1835 में बनाये गये संयुक्त खासी एवं जेन्तिया पहाड़ी का हिस्सा हैं। 33 किमी0 लम्बी आसाम–मेघालय सीमा पर वर्तमान में विवाद के 12 ऐसे बिन्दु हैं।

2.6.3 आसाम – नागालैण्ड सीमा विवाद

इस विवाद का आरंभ सन् 1963 में नागालैण्ड राज्य के सूत्रपात्र से हुआ। नागालैण्ड राज्य अधिनियम, 1962 द्वारा नागालैण्ड की सीमाओं का निर्धारण 1925 के नोटिफिकेशन के अनुसार किया गया जिसे नागाओं द्वारा स्वीकार नहीं किया गया उनके अनुसार नागालैण्ड के अन्तर्गत

समस्त नागा पहाड़ी क्षेत्र एवं अन्य नागा बहुमत वाले इलाके आने चाहिए। इस विवाद की परिणीति 1968, 1979 एवं 1985 में खूनी संघर्ष के रूप में हुई। सबसे ताजा मामला सन् 2007 का है जब सिबसागर जिले के तीन गाँवो– सोनापुर, धेकियाजुरी एवं बोरहोला पर नागाओं द्वारा हमला किया गया जिसमें दो व्यक्तियों को मृत्यु हो गयी।

2.6.4 आसाम – अरूणाचल प्रदेश विवाद

प्रारम्भ में दोनों राज्यों के मध्य कोई विवाद नहीं था। सन् 1992 में अरूणाचल प्रदेश सरकार ने आरोप लगाया कि आसामी लोगों ने अरूणाचल प्रदेश की सीमा में, घर, बाजार यहाँ तक कि पुलिस स्टेशन भी स्थापित कर लिए हैं। सन् 2005 में आसामी पुलिस एवं वन अधिकारियों द्वारा अरूणाचल प्रदेश के कामेंग जिले में लगभग 100 घरों को जलाने का मामला प्रकाश में आया। सन् 2007 में तनाव फिर उभरा जब कुल लोगों द्वारा सीमा पार करके आसाम में एक शांति बैठक पर हमला कर आठ लोगों को जख्मी कर दिया गया।

2.6.5 आवास–मिजोरम सीमा विवाद

सन् 1994 एवं 2007 में सीमा पर तनाव उत्पन्न होने पर केन्द्र सरकार द्वारा तुरन्त कार्यवाही के चलते मामला शान्त हो गया परन्तु इसके बाद मिजोरम सरकार ने कहा कि वह वर्तमान सीमा रेखा को नहीं मानता है।

उपरोक्त सभी सीमा विवादों का केन्द्र आसाम है। उपरोक्त राज्यों को आसाम से अलग कर बनाया गया। कई मामलो में केन्द्र सरकार द्वारा निर्णय लेते समय अदूरदर्शिता का परिचय दिया गया। नये राज्यों की सीमाएं उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान (Ethenic) के अनुरूप नहीं है। उदाहरणार्थ चाचार पहाड़ी पर मिजो एवं नागों की काफी बड़ी संख्या रहती है। अतः दोनों ही इस पर अपना दावा जताते हैं जो कि वर्तमान में आसाम में है। इसी प्रकार आसाम के कई क्षेत्र जो विधितः आसाम से संबंधित है उन्हें नागालैण्ड को दे दिया गया। उदाहरण के तौर पर दीमापुर जो कि रेलवे का अंतिम स्टेशन है उसे नागालैण्ड को दिया गया। जिसके कारण उत्तरी चाचार पहाड़ी के दीमाओं को बहुत तकलीफ पहुँची क्योंकि दीमापुर लम्बे समय तक उनकी राजधानी रही थी। केन्द्र सरकार इससे वाकिफ थी परन्तु फिर भी उसने अदूरदर्शिता दिखाते हुए तनाव पैदा करने वाला निर्णय लिया।

सन् 2005 में उच्च्तम न्यायालय द्वारा केन्द्र सरकार को विभिन्न अन्तर्राज्यिक सीमा विवादों के निपटारे के लिये एक सीमा कमीशन का गठन के निर्देश दिये गये। इससे पहले भी केन्द्र सरकार द्वारा सुन्दरम कमीशन (1971) एवं शास्त्री कमीशन (1985) का गठन किया गया था

परन्तु सीमा विवाद नहीं सुलझ पाया क्योंकि सम्बन्धित राज्यों ने उसके सुझावों को मानने से इन्कार कर दिया।

एक अच्छा कदम उठाते हुए नागालैण्ड, आसाम और मेघालय राज्यों ने एक दूसरे के साथ सहयोग दिखाते हुए स्वयं ही इस समस्या को सुलझाने का बीड़ा उठाया है। वे बिना किसी तीसरे के हस्तक्षेप के आसाम के साथ अपना विवाद सुलझाना चाहते है, जो कि एक स्वागत योग्य कदम है।

उपरोक्त सभी राज्य सीमांत राज्य है एवं चीन के साथ भी भारत देश के सीमा संबंधी विवाद लम्बे समय से है अतः पूर्वोत्तर प्रांतों में अन्दरूनी विवाद राष्ट्रहित में नहीं है। अतः केन्द्र सरकार को निर्भीक कदम उठाते हुए उपरोक्त सीमा विवादों को सुलझाने में निष्पक्ष पहल करनी चाहिए एवं साथ ही इलाके का तीव्र विकास भी सुनिश्चित करना चाहिए। विकास के साथ छोटी–मोटी समस्याएं स्वतः ही गौड़ हो जाती हैं।

2.7 भारत में आन्तरिक विस्थापन के कारण

भारत में आन्तरिक विस्थापितों की संख्या जहाँ वर्ल्ड रिफ्यूजी सर्वे के अनुसार 507,000 है वहीं इंडियन सोशन इंस्टीट्यूट (दिल्ली) एवं ग्लोवल आई0डी0पी0 प्रोजेक्ट (Global I.D.P. Project) के अनुसार यह संख्या 21.3 मिलियन है।

भारत में विस्थापन के कारणों को चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. **<u>राजनीतिक कारण–</u>**

राजनीतिक कारणों में मुख्यतः अलगाववादी आंदोलन है–

(i)स्वतन्त्रता के समय से ही पूर्वोत्तर राज्यों में सशस्त्र संघर्ष होता रहा है। नागा आंदोलन का नेतृत्व नेशनल सोशालिस्ट कांउसिल ऑफ नागालैण्ड (National Socialist Council of Nagaland) एवं आसामी आंदोलन का नेतृत्व पहले ऑल आसाम स्टूडेंट यूनियन (आसू) एवं अब चरमपंथी यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ आसाम (United Liberation Front of Aasam) के हाथों में है।

(ii)कश्मीर में इस्लामिक आतंकवादियों द्वारा कश्मीरी पंडितों की हत्या के बाद उनका विस्थापन जम्मू एवं दिल्ली जैसे शहरों में हुआ करीब 250,000 कश्मीरी पंडितों को अपने देश में विस्थापित होना पड़ा।

2.**<u>सामुदायिक विद्वेष</u>**

इस प्रकार की गतिविधियाँ भी हिंसा और विस्थापन को बढ़ावा देती हैं। पहले पंजाब में एवं अब पश्चिमी आसाम में बोडो आंदोलनकारियों द्वारा दूसरी प्रजातियों को हिंसा आदि के तहत

परेशान करने के कारण बड़ी संख्या में छवद.ठवकवे को विस्थापित होना पड़ा एवं वे शिविरों में रहने को मजबूर हैं।

3.क्षेत्रीय हिंसा

जातीय हिंसा भी विस्थापन का कारा बनती है जैसा कि बिहार एवं उत्तर प्रदेश में हुआ। धार्मिक रूढ़िवादिता (मुम्बई, कोयम्बटूर, भागलपुर एवं अलीगढ़ के दंगे) एवं बाहर से आये लोगों को जबरदस्ती उनके निवास स्थानों से बेदखल करना जैसा कि मेघालय में खासी विद्यार्थियों एवं अरूणाचल प्रदेश में चकमा शरणार्थियों के साथ हुआ।

4.पर्यावरण एवं विकास प्रेरित विस्थापन

आर्थिक प्रगति हेतु उद्योग, बांध, सड़कें, खदानें, पावर उपक्रमों एवं नये शहरों के विकास हेतु सरकार को बड़े पैमाने पर जमीनों को खाली करना पड़ता है जिसके कारण वहाँ के निवासियों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है। इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट के ऑकड़ें इस प्रकार हैं[4]

विस्थापितों की संख्या	विस्थापन के कारण
1. 16.4 मिलियन	बाँध निर्माण
2. 2.55 मिलियन	खदान (अयस्क आदि का निष्कासन)
3. 1.25 मिलियन	उद्योग निर्माण
4. 0.6 मिलियन	अभ्यारण एवं राष्ट्रीय पार्क

2.8 विकास परियोजनाएं एवं पुनर्वास

सेन्ट्रल वाटर कमीशन के अनुसार स्वतंत्रता के बाद लगभग 3,300 बांधों का निर्माण हो चुका एवं लगभग 1,000 निर्माणाधीन अवस्था में है। इंडियन इंस्टीट्यूटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (Indian Institute of Public Administration) के अध्ययन के अनुसार एक बड़े बाँध के निर्माण में विस्थापितों की औसत संख्या 44,182 होती है।

लगभग 21,000 परिवारों को 25 वर्ष पहले पोंग बांध के निर्माण के समय अपने मूल निवास स्थान को छोड़ना पड़ा था जिनका पूर्ण रूप से पुनर्वास अभी तक नहीं हो पाया है।

विकास परियोजनाएँ सामान्यतः उन क्षेत्रों में अवस्थित होती हैं जो सुदूर ग्राम, पहाड़ी एवं जंगल के क्षेत्र होते हैं। यहाँ विस्थापन का अर्थ होता है अपनी जड़ों से उखड़ना अर्थात जो सदियों से वहाँ रहते आये हैं उनको अपना प्राकृतिक आवास छोड़कर जाना पड़ता है। सामान्यतः इन विस्थापनों से गरीब एवं कमजोर तबका ही प्रभावित होता है। अधिकतर मामलों में वे अपनी आजीविका एवं घर पूरी तरह से खो देते हैं।

पुनर्वास या पुर्नस्थापन का अर्थ है आजीविका का पुर्ननिर्माण जिससे संबंधित कोई भी मार्गदर्शक सिद्धान्त 1894 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम (जो आप जी भी प्रयोग में है) में नहीं है। सरकार द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि अगर भूमि का अधिग्रहण जनउद्देश्य हेतु है तो पुनर्वास योजना प्राथमिकता में नहीं होगी।

वैश्वीकरण मूल निवासियों (Indiageneus Communities) के लिये भय का दूसरा कारण बन गया है क्योंकि निजी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियां, ग्रामीण एवं जनजातिय आदि मूल निवासियों को ही अपना निशाना बनाती है क्योंकि ये क्षेत्र सामान्यतः प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर होते हैं। इन अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों का साथ राष्ट्रीय सरकारें भी देती हैं। 1894 के अधिनियम में प्रस्तावित संशोधन अगर हो गया तो इससे विस्थापन और बढ़ेगा क्योंकि यह निजी कम्पनियों के पक्ष में भूमि अधिग्रहण की ओर आसान बना देगा।

2.9 प्राकृतिक आपदा–प्रेरित विस्थापन

बॉढ़, चक्रवात एवं भूस्खलन द्वारा लोगों बड़े पैमाने पर एवं बार–बार विस्थापन झेलना पड़ता है। सेन्टर फार साइंस एण्ड एनवायरमेन्ट की रिपोर्ट (1991) के अनुसार बांग्लादेश के पश्चात् भारत विश्व के दूसरे बाढ़गस्त देश में आता है जिसमें 30 मिलियन लोग प्रत्येक वर्ष विस्थापित होते हैं। सरकार द्वारा बाढ़ नियन्त्रण उपायों में मुख्यतः बांधों एवं तटबन्धों का निर्माण किया जाता है। करीब 400 किमी0 तटबन्ध का प्रत्येक वर्ष निर्माण किया जाता है। सन् 1986 तक 256 बड़े बांध जिनकी ऊँचाई 15 मीटर और अधिक है का निर्माण किया जा चुका है एवं 154 बांध निर्माणाधीन है। फिर भी बाढ़ पर काबू नहीं पाया जा सका है।[5]

2.10 विस्थापितों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति का अभाव

भारत के पास शरणार्थियों एवं आन्तरिक विस्थापितों से सम्बन्धित कोई राष्ट्रीय नीति नहीं है और न ही कोई विधिक संस्थागत संरचना है। शरणार्थियों के सम्बन्ध में कोई स्थायी संस्थागत ढॉचा न होने के कारण शरणार्थियों की स्थिति की जानकारी किसी को नहीं हो पाती है। एवं वे राजनीतिक संस्थाओं के निर्णय पर निर्भर होते हैं। इसी प्रकार आन्तरिक विस्थापितों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति न होने के कारण उन्हें परियोजना के स्तर पर ही राज्य सरकारों से अलग–अलग एवं अनौपचारिक सहायता ही मिल पाती है। यहाँ तक कि नवीनतम राष्ट्रीय नीति का जो प्रारूप ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा विस्थापितों से सम्बन्धित पेश किया गया है उसमें केवल भूमि अधिग्रहण के कारण होने वाले विस्थापितों का ही जिक्र है अन्य किसी प्रकार के विस्थापितों का नहीं, जिनमें मानवाधिकार हरण, शारीरिक हिंसा, एवं जातीय हिंसा आदि के

कारण होने वाला आन्तरिक विस्थापन आता है। दुर्भाग्यवश राज्य द्वारा प्रेरित आन्तरिक विस्थापन से सम्बन्धित सरकारी उत्तरदायित्व का सर्वथा अभाव नजर आता है।

2.11 विस्थापितों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता

सरकार को आन्तरिक विस्थापितों के सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय नीति बनानी चाहिए जो पूरे विस्थापित समुदाय जिसमें भूमिहीन मजदूर, भूमिधर, ग्रहविहीन एवं गृहस्वामी एवं बेरोजगारों सभी सम्मिलित हों, के पुर्नवास का ध्यान रखना होगा। इसके साथ ही विस्थापन में उनके सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों के भी जोड़कर देखना चाहिए। आन्तरिक विस्थापितों के सम्बन्ध में कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था भी नहीं है।

2-12 एसोसियेशन फॉर इंडियाज डेवेलपमेन्ट (AID)(Association for India's Development)

यह एक गैर सरकारी संस्था है। जो आन्तरिक विस्थापितों के लिए कार्य करती है। कृषि एवं सामाजिक विकास संस्था (ेवै) के साथ मिलकर यह छत्तीसगढ़ से नागरिक संघर्ष के दौरान भागकर पड़ोसी राज्य आन्ध्रप्रदेश के जंगलों में शरण लेने वाले कोया जनजाति के परिवारों के पुर्नस्थापन पर कार्य कर रही है। इनके प्रयासों से कुछ पुर्नस्थापित गावों को जॉब काड्र्स, राशनकार्ड एवं आंगनबाड़ी नौकरियां भी मिल गयी हैं। इस संस्था ने सरकार से मांग की है कि वह विस्थापितों के विषय में नीति का निर्माण करे एवं आने वाले बजट में आन्तरिक विस्थापितों के सम्बन्ध में प्रावधान रखें।[6]

निर्देश :–

1.ए0आई0आर0 1957 एस0सी0 799

2.(1994) 5 एस0सी0सी0 460

3.राज्य सूची, प्रविष्टि 17 – सूची । की प्रविष्टि 56 के अधीन रहते हुए जल अर्थात जल प्रदाय, सिंचाई और नहरे, जल निकास और तटबंध, जल भंडारकरण और जल शक्ति।

4.www.fmreview.org/fMRpdfs/FMR08/fmr8.9pdf

5.सेन्टर फॉर साइंस एण्ड एनवायरमेन्ट, स्टेट ऑफ इंडियास एनवायरमेन्ट, ए सिटीजन रिपोर्टः फ्लड, फ्लर प्लेन्स एण्ड एनवायरमेन्ट मिथस, न्यू देलही, 1991

6.publication.aidindia.org/content/view/871/130/

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान

1.अनुच्छेद .... के तहत उच्चतम न्यायालय को दो या अधिक राज्यों के मध्य विधि संबंधी विवादों के लिये आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है।

2.कावेरी जल विवाद .... और .... राज्यों के मध्य है।

3.बेलगांव .... एवं .... रज्यों की सीमा पर स्थित है।

4.अनुच्छेद .... के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय जल विवादों के न्यायिकेत्तर अधिकरण द्वारा न्याय निर्णयन की व्यवस्था है।

5.स्टेट ऑफ बाम्बे बनाम आर0एम0डी0सी0 वाद .... से सम्बन्धित है।

6.बालीमेला जलाशय का निर्माण .... नदी पर किया गया है।

7.आसाम राज्य का निम्न राज्य/राज्यों से सीमा विवाद है।

क.मेघालय

ख.मिजोरम

ग.अरूणाचल प्रदेश

घ.उपरोक्त सभी

8.पलार नदी कर्नाटक राज्य से निकलती है। इसका जल सम्बन्धी विवाद निम्न राज्यों के मध्य है—

क.कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश

ख.कर्नाटक एवं तमिलनाडु

ग.आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु

घ.उपरोक्त में से कोई नहीं

9.निम्न में से कौन सा कथन सबसे उत्तम है—

क.जल राज्य सूची का विषय है।

ख.जल संघ सूची का विषय है।

ग.जल राज्य सूची एवं संघ सूची दोनों के अधीन विषय है।

घ.जल राज्य सूची की प्रविष्टि 17 एवं संघ सूची की प्रविष्टि 56 के अधीन विषय है।

10.जल विवाद में अभिकरण के निर्णय राज्यों पर—

क.बाध्यकारी हैं,

ख.बाध्यकारी नहीं हैं,

ग.राज्य अधिनियम द्वारा उसे बदल सकता है।

घ.ख एवं ग दोनों लागू होते हैं।

2.13 सारांश

परिसंघ प्रणाली की सरकार में केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया जाता है एवं अपने क्षेत्र की सीमा के भीतर राज्यों को प्रभुता प्राप्त होती है। अनुच्छेद 245(1) के अनुसार किसी राज्य का विधानमण्डल सम्पूर्ण अथवा राज्य के किसी भाग के लिए विधि बना सकता है। परन्तु यदि राज्य और उस विषय–वस्तु में कोई संबंध हो जिसके ऊपर वह विधि लागू होती है तो राज्य द्वारा बनाई गई विधि का विस्तार राज्यक्षेत्र से बाहर भी हो सकता है। इसे क्षेत्रिक संबंध का सिद्धान्त कहते हैं, स्टेट ऑफ बॉम्बे बनाम आर0एम0डी0सी0 वाद।

दो राज्यों के मध्य विधि या तथ्य संबंधी विवाद पर उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत आरम्भिक अधिकारिता प्रदान की गयी है। राज्यों के मध्य जल संबंधी विवादों के न्यायिकेतर अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन की व्यवस्था अनुच्छेद– 262 के अन्तर्गत की गयी है। अपने इसी अधिकार का उपयोग करते हुए संसद ने अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1958 पारित किया है। अनुच्छेद 263 प्रशासनिक निकाय द्वारा अन्वेषण और सिफारिश के माध्यम से अन्तर्राज्यिक विवादों के निवारण की व्यवस्था करता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रपति जरूरत पड़ने पर अन्तर्राज्यिक परिषद की स्थापना कर सकता है। एक नदी अपने उद्‌गम के बाद मुहाने तक कई राज्यों का सफर तय करती हैं। अतः जल के हिस्से के प्रयोग को लेकर राज्यों के मध्य विवाद होना स्वभाविक ही है। कावेरी जल विवाद, बालीमेला जलाशय को लेकर गोदावरी नदी पर विवाद, होगेनक्कल प्रपात विवाद, इचम्पैली परियोजना संबंधी विवाद आदि एक लम्बी फेरहिस्त है जो राज्यों के मध्य विभिन्न जल स्रोतों को लेकर है। इनमें से कई विवाद तो दशकों पुराने हैं जिनमें कई निर्णय अधिकरण एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किये गये हैं जिन्हें राज्य सरकारें अक्सर मानने से इन्कार कर देती हैं। राजनीतिक दल अपने फायदे के लिये कई बार विवादों का राजनीतिकरण भी कर देते हैं जिसके कारण विवाद सुलझने के बदले और उलझ जाते हैं। इन विवादों के कारण जहाँ विकास परियोजनाएं लम्बित हो जाती हैं वहीं इनका लागत मूल्य भी समय के साथ बढ़ता जाता है। जिसके कारण राज्यों को एवं समग्र राष्ट्र को नुकसान उठाना पड़ता है। कई राज्यों के मध्य सीमाओं को लेकर भी विवाद है जो कई बार खूनी संघर्ष में तब्दील हो जाते हैं। एक अध्ययन के अनुसार भारत में आन्तरिक विस्थापितों की संख्या 21.3 मिलियन है। भारत में आन्तरिक विस्थापन के कई कारण हैं। कश्मीर घाटी से इस्लामिक आतंकवादियों के कारण वहाँ से लगभग 2,50,000 कश्मीरी पंडितों का जम्मू, दिल्ली आदि जगहों पर विस्थापन हुआ है एवं वे बदहाल जिन्दगी जीने पर विवश हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में वहॉ की एक मूल निवासी जाति (बोडो) द्वारा बाद में बसे लोगों को वहां से बेदखल करने के खूनी संघर्ष के कारण हजारों विस्थापित शिविरों में जीवन काटने पर मजबूर हैं।

बड़े बांधों एवं उद्योगों के निर्माण हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण किया जाता है। जिसके कारण लाखों लोगों को अपना घर, आजीविका आदि सब कुछ छोड़कर विस्थापित होना पड़ता है। ऐसे विस्थापितों के पुर्नवास सम्बन्धी कोई राष्ट्रीय नीति न होने के कारण उनका सही तरीके से पुर्नस्थापन नहीं हो पाता है जिसके कारण लोगों में असंतोष तो पैदा होता ही है गरीबी एवं बेरोजगारी भी बढ़ जाती है जिसका समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अक्सर उद्योग या बांध सुदूर ग्रामीण, पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं। ऐसे में उनकी समस्याएं राष्ट्र के सामने भी नहीं आ पाती है एवं वे दोयम दर्जे के नागरिक की भांति जीवन जीने पर मजबूर हो जाते हैं। AID आदि कई गैर सरकारी संस्थाएं ऐसे विस्थापितों के लिये कार्य करती है एवं उनकी समस्याएं राष्ट्रीय स्तर पर उठाती हैं। सरकार को भी आन्तरिक विस्थापितों के शीघ्र एवं प्रभावी पुर्नस्थापन हेतु राष्ट्रीय नीति बनाती चाहिए क्योंकि सदियों से रहते आये लोगों पर अपनी जड़ों से उखड़ने पर, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक तौर पर कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उनका शीघ्र पुर्नस्थापन न होने के कारण दूसरे क्षेत्रों लोगों पर विकास के प्रति अरूचि पैदा होने लगती है एवं वे अपनी भूमि अधिग्रहण का विरोध करने पर उतारू हो जाते हैं। अतः आन्तरिक विस्थापन को राष्ट्रीय समस्या का दर्जा देते हुए उनके पुर्नस्थापन पर विशेष ध्यान देना केन्द्र एवं राज्य सरकारों की प्राथमिकता होनी चाहिए।

2.14 महत्वपूर्ण शब्दावली

आरंभिक अधिकारिता – इसे प्रारंभिक अधिकारिता भी कहते हैं, इसका अर्थ है कि इस प्रकार के वाद बिना निचली अदालतों के सीधे उसी अदालत में दायर किया जाता है जिसे इसकी आरम्भिक अधिकारिता होती है अर्थात सीधी सुनवाई ऊपरी न्यायालय में संम्भव है।

न्यायिकेतर न्यायनिर्णयनः– किसी विवाद का न्यायालय से बाहर अन्य (अभिकरण आदि) द्वारा निराकरण किया जाना एवं उससे सम्बन्धित निर्णय सुनाना।

विस्थापनः– किसी व्यक्ति को उसके मूल निवास स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाना।

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 131 **2.** कनार्टक, तमिलनाडु, **3.** महाराष्ट्र, कनार्टक, **4.** 262 **5.** क्षेत्रिक संबंध का सिद्धान्त **6.** गोदावरी **7.** (घ) **8.** (ग) **9.** (घ) **10.** (घ)

2.16 संदर्भ ग्रन्थ :–

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी ।

2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.http://www.idsa.in/idsastrategiccomments/InterstateBorderDisputesintheNortheast_PDas_120608

4-http://people.ucsc.edu/~boxjenk/indiawater.pdf

5-http://www.fmreview.org/FMRpdfs/FMR08/fmr8.9.pdf

6.http://lawmin.nic.in/ncrwc/finalreport/v2b2-2.htm

7-http://en.wikipedia.org/wiki/Category:Inter-state_disputes_in_India

8-http://en.wikipedia.org/wiki/Category:Inter-state_disputes_in_India

2.17सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

2.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.18निबंधात्मक प्रश्न

1.क्षेत्रिक संबंध के सिद्धान्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2.राज्यों के मध्य विवादों को सुलझाने के लिये संविधान में कौन से उपबंध किए गए हैं?

3.भारत में आन्तरिक विस्थापन के कारण कौन से हैं? विस्थापितों के पुनर्वास हेतु क्या उपाय किए गये हैं?

4.राज्य सरकारें अपने मध्य होने वाले जल विवादों को सुलझाने में क्यों नाकाम रही है? अपने विचार बताइये।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–1. संघवाद

इकाई–3. केन्द्रीय दायित्व एवं राज्यों में आंतरिक अशांति; अनुच्छेद 356 एवं 365 के अधीन केन्द्र का राज्य सरकारों को निर्देश

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 केन्द्रीय दायित्व एवं राज्यों में आंतरिक अशांति

3.3.1 संवैधानिक उपबंध

3.3.2 पुंछी कमीशन का प्रतिवेदन (2010)

3.4 उत्तर पूर्व राज्यों में आन्तरिक अशांति एवं केन्द्र का दायित्व

3.5 जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं आतंकवाद की आरम्भ

3.6 वाम चरमपंथ

3.7 सरकार का दायित्व एवं कर्तव्य– सुझाव

3.8 राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हों जाने की दशा में उपबंध

3.8.1 अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के अधीन विधायी शक्तियों का प्रयोग

3.8.2 अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा की अवधि

3.8.3 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978

3.9 सहकारी संघवाद की भावना एवं अनुच्छेद 356 – एक उत्कृष्ट संतुलन

3.10 संघ द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव

3.11 अनुच्छेद 356 का न्यायिक निर्वचन

3.12 सरकारिया समिति की सिफारिशें और अनुच्छेद 356

3.13सारांश

3.14महत्वपूर्ण शब्दावली

3.15अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.16 संदर्भ ग्रन्थ

3.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.18 निबंधात्मक प्रश्न

3.1.प्रस्तावना

भारत में परिसंघात्मक प्रणाली की सरकार है जिसके अन्तर्गत राज्यों एवं केन्द्र के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया गया है। स्वतन्त्रता के समय की परिस्थितियों को देखते हुए भारत की एकता व अखण्डता सुनिश्चित करने हेतु संविधान द्वारा एक मजबूत केन्द्र की स्थापना की गयी हैं। आपात के समय बिना किसी दुरूह संवैधानिक प्रक्रिया के भारत का संघात्मक शासन एकात्मक में बदलने का प्रावधान किया गया है।

सुरक्षा केन्द्र एवं राज्यों दोनों की जिम्मेदारी हैं। लोकव्यवस्था को बनाये रखने की जिम्मेदारी जहॉ राज्यों को सौंपी गयी है, वही केन्द्र सरकार को यह अधिकारिता प्रदान की गयी है कि किसी बाहरी खतरे एवं आंतरिक अशांति की स्थिति में सम्पूर्ण सुरक्षा की जिम्मेदारी उसकी है। राज्य में संवैधानिक तन्त्र विफल होने की दशा में अनुच्छेद 356 के तहत केन्द्र सरकार राज्य विधान मण्डल को भंग करने की शक्ति रखती है। अनुच्छेद 356 के प्रावधानों के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल या अन्य माध्यमों से यह समाधान हो जाये कि राज्य का विधानमण्डल संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप कार्य नहीं कर रहा है तो वह राज्य सरकार को भंग करने की उद्घोषणा जारी कर राज्य का प्रशासन अपने हाथों में ले सकता है। अनुच्छेद 365 के उपबन्ध राज्य सरकार द्वारा संघ सरकार के निदेशों को कार्यान्वित करने की असफलता संबंध में है । संघ को संविधान द्वारा निदेश देने का प्राधिकार दिया गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–

- केन्द्र का राज्यों की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा संबंधी दायित्व
- उत्तर पूर्व के राज्यों में विद्रोह एवं अशांति के कारण
- जम्मू–कश्मीर समस्या
- वाम चरमपंथ के कारण राज्यों में आन्तरिक अशांति
- केन्द्र एवं राज्य सरकारों के दायित्व
- अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति की राज्य विधानमंडल को भंग करने की शक्ति
- अनुच्छेद 356 एवं 365 के अधीन राज्य सरकारों को निर्देश

3.3 केन्द्रीय दायित्व एवं राज्यों में आन्तरिक अशांति

राज्यों में आन्तरिक अशांति देश पर किसी बाहरी खतरे की आशंका से अधिक गम्भीर होती है। अतः यह केन्द्र एवं राज्यों दोनों का ही दायित्व है कि वे ऐसी अशांति का मिल जुलकर सामना करें। आज भारत देश का एक बड़ा हिस्सा आन्तरिक अशांति से जूझ रहा है। उत्तर में जम्मू एवं कश्मीर घाटी इस्लामिक आतंकवादियों की गिरफ्त में है। पंजाब में कुछ वर्ष पहले तक खालिस्तान सामर्थकों ने आतंक का माहौल बना रखा था। अभी हाल में ही चंडीगढ़ से हथियारों एवं बम आदि से सम्बन्धित सामग्री मिलने पर उसे खालिस्तान समर्थकों से जोड़ा गया है। पूर्वोत्तर में मणिपुर, आसाम आदि राज्य भी लम्बे समय से अशांत हैं।

छत्तीसगढ़, बंगाल, झारखण्ड, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश नक्सल समस्या से जूझ रहे हैं। ऐसे में जब तक केन्द्र एवं राज्यों के सशस्त्र बलों, खुफिया विभागों एवं प्रशासन के बीच समन्वय नहीं होगा तब तक इन खतरों से निबट पाना संभव नहीं है, क्योंकि न तो अकेले केन्द्र एवं न ही अकेले राज्य इनसे निबट सकते हैं।

3.3.1 संवैधानिक उपबंध

अनुच्छेद 355 के अनुसार– संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की संरक्षा करे और प्रत्येक राज्य की सरकार का इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करें। अनु0 355 में प्रयुक्त बाह्य आक्रमण के वास्तविक अर्थ के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने सरवदानन्द सोनवाल बनाम भारत संघ[1] के वाद में विचार किया। इस मामले में लोकहित वाद द्वारा अवैध प्रवासी (अधिकरण द्वारा निर्धारण) अधिनियम, 1983 की विधिमान्यता को चुनौती दी गई। यह अधिनियम केवल असम राज्य में लागू किया गया था । इसका उद्देश्य असम में लाखों की संख्या में घुस आये बंगलादेशी नागरिकों का पता लगाना और उन्हें निष्कासित करना था । किंतु इसके उपबन्धो के अनुसार बगलादेशी घुसपैठियों का पता लगाना और निष्कासन करना अत्यन्त कठिन हो गया । इसमें इस बात को साबित करने का भार अभियोजन पक्ष (राज्य) या उस व्यक्ति पर है जो इसका दावा करता है कि कोई व्यक्ति विदेशी नागरिक है या नहीं, उस व्यक्ति पर नहीं जो यह दावा करता है कि वह भारत का नागरिक है । इसके विपरीत पूरे भारत में विदेशियों संबंधी अधिनियम, 1946 लागू है जिसके अनुसार इस बात को साबित करने का भार कि वह भारत का नागरिक है उस व्यक्ति पर है जो इसका दावा करता है कि वह भारत का नागरिक है । असम और अवैध प्रवासी निर्धारण अधिनियम के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका उद्देश्य अवैध प्रवासियों, जो बंगलादेश से भारत में घुस आए हैं उन्हें शरण एवं संरक्षा प्रदान करना है । उक्त अधिनियम के लागू होने से केन्द्र सरकार के उनके पता लगाने और निष्कासन की शक्ति भी समाप्त हो गई है । लाखों की संख्या में अवैध प्रवासियों की असम में उपस्थिति

असम राज्य पर 'आक्रमण' है और वहाँ विद्रोह की स्थिति हो गई है और 'आन्तरिक अशान्ति' व्याप्त है । वहाँ के निवासियों का जीवन असुरक्षित है । असम के लोग असम में ही अल्पसंखक हो गए हैं।

अनुच्छेद 355 के अधीन 'आक्रमण' एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है इसका अर्थ केवल युद्ध से नहीं है वरन इसमें अन्य कई कृत्य भी सम्मिलित हैं जो युद्ध की श्रेणी में नहीं आते हैं । आधुनिक काल में युद्ध की अवधारणा में काफी परिवर्तन आ गया है । लाखों की संख्या में असम में अवैध बंगलादेशियो का घुसना और वहाँ बसना, मतदाता बन जाना, नौकरियाँ पा जाना असम पर आक्रमण है जिससे केन्द्र सरकार को इसे संरक्षा प्रदान करना चाहिए । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अवैध प्रवासी अधिनियम असंवैधानिक है और शून्य है और उसके अधीन सभी कार्यवाहियों को रोक दिया और उनका निर्धारण और निष्कासन का कार्य विदेशियों संबंधी अधिनियम, 1946 के उपबन्धों अधीन करने का निदेश दिया[2] ।

<u>सांतवी अनुसूची (अनुच्छेद 246), संघ सूची की प्रविष्टि 2 (क) के अनुसार–</u>

''संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियन्त्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट का किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता में अभिनियोजन; ऐसे अभिनियोजन के समय ऐसे बलों के सदस्यों की शक्तियाँ, अधिकारिता, विशेषाधिकार और दायित्व उपरोक्त के सम्बन्ध में विधि बनाने की संसद को अनन्य शक्ति प्राप्त है।'

लोक व्यवस्था बनाये रखना राज्य का कार्य है किन्तु इसके अन्तर्गत सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायु सेना या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट का प्रयोग नहीं है।[3]

सूची 1 (संघ सूची) की प्रविष्टि 2क के अधीन रहते हुए पुलिस (जिसके अन्तर्गत रेल और ग्राम पुलिस) के विषय में विधि बनाने का अधिकार राज्य सरकार को है।[4]

राज्य सूची की प्रविष्टि 1 एवं 2 एवं अनुच्छेद 355 में एक विरोधाभास नजर आता है। राज्यों की आन्तरिक अशांति के मद्देनजर केन्द्र का उत्तरदायित्व तो बहुत अधिक है एवं दिन पर दिन बढ़ते राष्ट्रीय आन्तरिक खतरों को देख केन्द्र की जिम्मेदारी भी बढ़ती जा रही है, लेकिन इस मामले में उसकी शक्ति (राज्यों में हस्तक्षेप) घट रही है। जिसके कारण आंतरिक सुरक्षा पर विपरीत असर पड़ रहा है।

राजनीतिक कारण भी अक्सर केन्द्रीय तटस्थता का कारण बन जाते हैं, क्योंकि अगर केंद्र सुरक्षा के मद्देनजर राज्यों में सक्रिय हस्तक्षेप करती है तो राज्यों द्वारा इसे परिसंघवाद पर हमला एवं केंद्र की मनमानी करार दे दिया जाता है।

अधिकांश राज्य जैसे कश्मीर घाटी, मणिपुर, आसाम आदि जो आंतरिक अशांति के माहौल में हैं, वे सीमावर्ती राज्य हैं एवं समय – समय पर इस बात के सबूत सामने आते रहे हैं कि राज्यों की आंतरिक अशांति के पीछे विदेशी तत्वों का हाथ है। ऐसे में केंद्र का कर्तव्य और

बढ़ जाता है एवं उसका हस्तक्षेप करना अपरिहार्य भी हो जाता है। आखिर में देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी तो उसकी ही बनती है। कई बार अपराधी कोई बड़ी वारदात करके कहीं विदेश में भागकर छिप जाते हैं जैसा कि 1992 के मुम्बई बम धमाकों के बाद आरोपी डॉन दाऊद ने किया। अतः इस समस्या का हल तभी संभव है जब केन्द्र एवं राज्य मिल जुल कर इस दायित्व का निर्वाह करें।

केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर पुंछी कमीशन की रिपोर्ट में भी इस विषय में संविधान में संशोधन की बात कही गयी है कि आंतरिक अशांति की स्थिति में केन्द्र को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वह जरूरत पड़ने पर राज्य के केवल प्रभावित क्षेत्रों में ही आपात स्थिति लागू करे। ऐसा प्रावधान केन्द्र राज्य के सम्बन्धों में बढ़ते तनाव को कम करेगा।

आन्तरिक अशांति पर केन्द्र की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में संवैधानिक उपबंध तो पर्याप्त हैं परन्तु उनको लागू करने सम्बन्धी संस्थागत ढांचा पर्याप्त नहीं है। केन्द्र एवं राज्य स्तर पर राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी के कारण उपर्युक्त संस्थागत प्रक्रिया का विकास नहीं हो पाया है। इस कारण चुनौती से निबटने में वे अपनी उत्कृष्टता नहीं दे पाती हैं।

3.3.2 पूंछी कमीशन का प्रतिवेदन (2010)

आन्तरिक सुरक्षा के मसले पर केन्द्र एवं राज्यों के मध्य सहयोग बढ़ाने के लिए पुंछी कमीशन (Volume V) के प्रतिवेदन में निम्न सुझाव दिये गये हैं–

1.नेशनल इंटीग्रेशन कांउसिल (NIC) द्वारा साम्प्रदायिक सोहार्द बनाये रखना, NIC एवं साम्प्रदायिक सौहार्द हेतु निर्मित नेशनल फोरम के मध्य तालमेल, क्षेत्रीय प्रसार माध्यमों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ अनुबंध।

2.आतंकवाद सम्बन्धी अपराधों को रोकने, नियन्त्रण, अनुसंधान एवं अभियोग हेतु आंतरिक सुरक्षा पर सेन्ट्रल लॉ एनफोर्समेन्ट एजेन्सी।

3.सहकारी संघवाद एवं परिसंघात्मक मूल्यों को बरकरार रखते हुए अनुच्छेद 355 में इस प्रकार का संशोधन करना जिससे केन्द्रीय बलों द्वारा जरूरत के समय अपने आप संज्ञान लेते हुए तैनाती सुनिश्चित की जा सके। इसको कार्यान्वयन में तभी लागू किया जा सकेगा जब ऐसी प्रक्रिया का विकास किया जाये जिससे इस प्रकार की तैनाती के समय राज्यों को पहले ही पूरी जानकारी मिल जाये एवं पूरे राज्य में आपात स्थिति न लागू करके केवल अशांति वाले क्षेत्र को ही आपात क्षेत्र घोषित किया जाये।

4.नक्सलवाद, उत्तर पूर्व का विद्रोह, कश्मीर समस्या को प्राथमिकता देते हुए सुरक्षा अमले को और बेहतर बनाया जाना चाहिए एवं इन मसलों पर राज्य और केन्द्र द्वारा एक ही उद्देश्य के अन्तर्गत कार्य किया जाना चाहिए।

5.उच्चतम न्यायालय के निर्देशों (2006) के अनुसार पुलिस में सुधार किया जाना चाहिए।

3.4 उत्तर पूर्व राज्यों में आन्तरिक अशांति एवं केन्द्र का दायित्व :–

भारत के उत्तर–पूर्व में स्थित क्षेत्र शेष भारत से एक संकीर्ण गलियारे द्वारा जुड़ा हुआ है जो पूर्व की ओर से 33 किमी0 चौड़ा एवं पश्चिम की ओर से 21 किमी0 चौड़ा है। यह मुश्किल से 1 प्रतिशत सीमा बनाता है शेष 99 प्रतिशत सीमाएँ अन्तर्राष्ट्रीय हैं– उत्तर में चीन–तिब्बत, दक्षिण पश्चिम में बॉग्लादेश, उत्तर पश्चिम में भूटान एवं पूर्व में म्यांमार (बर्मा)। इस क्षेत्र में सात राज्य (आसाम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड एवं त्रिपुरा) है। जिन्हें सात बहनों (Seven Sisters) के नाम से भी जाना जाता है। सन् 2003 से सिक्किम भी क्षेत्रीय 'उत्तर पूर्व कांसिल (North East Council) का सदस्य बन गया है। इसका कुल क्षेत्र भारतीय क्षेत्र का 8.7 प्रतिशत (लगभग 254,645 वर्ग किमी0) एवं जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या की 3.75 प्रतिशत (2001 की गणनानुसार) है।

यहाँ की कुल जनसंख्या का 30 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या का है जिनमें से 60 प्रतिशत, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम एवं नागालैण्ड में निवास करती है। नागालैण्ड, मिजोरम एवं मेघालय में ईसाई मत को मानने वाले बहुतम में है। (क्रमशः 90, 87 व 70 प्रतिशत) अत्यधिक विशिष्ट सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भाषयी विविधता इस क्षेत्र की विशिष्टता है। यहाँ लगभग 160 जनजातियां, लगभग 40 आदिवासी एवं उप आदिवासी समूह निवास करते हैं। एक बड़ी एवं विभिन्नता समेटे हुए गैर आदिवासी जनसंख्या मुख्यतः आसाम, मणिपुर एवं त्रिपुरा में निवास करती है। एक अनुमान के अनुसार 220 भाषाएं जो इण्डो–आर्यन, साइनो–तिब्बतन एवं ऑस्ट्रिक भाषा परिवारों से सम्बद्ध है इस क्षेत्र में बोली जाती हैं। अर्थात इस उपमहाद्वीप में सबसे अधिक भाषायी सघनता इस क्षेत्र में ही पायी जाती है।[5]

उत्तर पूर्व का यह क्षेत्र सबसे पहली एवं लम्बी चलने वाली अशांति का गवाह है। 1952 में नागा पहाड़ी पर स्वतन्त्रता की मांग को लेकर हिंसा हुई। सन् 1966 में मिजो विद्रोह सामने आया। सन् 1970 से लगातार वारदातों में बढ़ोत्तरी हुई है। सिक्किम को छोड़कर प्रत्येक राज्य किसी न किसी प्रकार की अशांति से ग्रस्त रहा है। भारत सरकार द्वारा सन् 1997 एवं 2001 में नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैण्ड (National Socialist Council of Nagaland) के साथ युद्धविराम सम्बन्धी समझौते किये गये। अब सरकार मूल समस्या पर बातचीत द्वारा सर्वमान्य एवं स्थायी हल निकालने की कोशिश में हैं।

सन् 1986 में केन्द्र सरकार एवं मिजो नेशनल फ्रंट के विद्रोही नेता लालढेंगा के मध्य समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित हुआ, जिसके बाद लालढेंगा द्वारा अपना राजनीतिक दल का निर्माण किया एवं बाद में वे राज्य के मुख्यमंत्री बने।

मणिपुर में यूनाइटेड नेशनल लिबरेशन फ्रंट (UNLF) जो कि एक सशस्त्र विरोधी समूह है, के द्वारा मणिपुर के राजा एवं भारत सरकार के मध्य सन् 1949 को हुए विलय समझौते का विरोध इस आधार पर किया गया कि राजा द्वारा दवाब में इस समझौते पर हस्ताक्षर किये गये हैं।

आसाम में भी यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ आसाम (UNLF) द्वारा भारत में आसाम के सम्मिलित होने पर सवाल उठाये गये।

UNLF एवं NULFA को समझौता वार्ता की मेज पर लाने के प्रयास किए गये।

सशस्त्र विद्रोह को दबाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा सशस्त्र बल (विशेष शक्ति) अधिनियम 1958 [Armed Forces (special powers) Act, 1958] पास किया गया एवं इन क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति एवं विद्रोही संगठनों के साथ बातचीत द्वारा शांति से समस्या की हल निकालने की कोशिशें की गयीं।

उपरोक्त अधिनियम (AFSPA) को लागू हुए करीब 50 वर्ष हो चुके हैं, बीच बीच में लगातार अन्तरालों पर इसके विरोध में स्वर उठते रहे हैं। सशस्त्र बलों द्वारा इसके गलत प्रयोग एवं मानवाधिकारों के हनन की बातें भी सामने आती रही हैं। इसके पुर्नमूल्यांकन हेतु गठित रेड्डी समिति के प्रतिवेदन में भी इसमें कई बदलावों की बात कही गयी है, क्योंकि इसके नकारात्मक प्रभाव अधिक सामने आये हैं।

उपरोक्त समस्या को लेकर केन्द्र एवं राज्य सरकारों (क्योंकि इन राज्यों में चुनावों के पश्चात लोकप्रिय सरकारों का गठन होता आया है) का यह कर्तव्य बनता है कि राजनीतिक इच्छा शक्ति द्वारा इसका हल निकाला जाये एवं वहां संवैधानिक उपबन्धों को लागू कर सही मायनों में लोकतन्त्र की स्थापना की जाये।

3.5 जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं आतंकवाद की प्रारम्भ

स्वतन्त्रता के वक्त से ही पाकिस्तान कश्मीर घाटी के प्रति संवेदनशील रहा है। सीधी लड़ाई में हारने के बाद उसने परोक्ष रूप से लड़ाई शुरू कर दी। भारत की केन्द्र सरकार (तत्कालीन) की अदूरदर्शिता एवं ठोस नीति के अभाव में समस्या दिनों दिन बढ़ती गयी। पाकिस्तान ने इस मुद्दे को सदा सुलगाये रखा एवं हवा पानी देता रहा। प्रारम्भ में कश्मीर में हिंसा हुई जिसके कारण लाखों कश्मीरी पंडितों को अपने मूल राज्य से विस्थापित होना पड़ा। युवाओं की

बेरोजगारी का फायदा उठाकर एवं कश्मीरी मुस्लिमों की धार्मिक भावनाओं को भड़काकर पाकिस्तान ने कश्मीरी युवाओं को गुमराह किया एवं भारत के विरूद्ध अपना हथियार बनाया।
राज्य सरकार के विफल होने पर केन्द्र ने राष्ट्रपति शासन के तहत राज्य का प्रशासन अपने हाथों में ले लिया एवं सीमांत प्रदेश होने के कारण मामले की गम्भीरता को भांपते हुए राज्य को सेना के हवाले कर दिया। हालांकि कश्मीर घाटी वर्तमान में अमूमन शांत दिखायी देती है एवं वहाँ चुनाव के पश्चात लोकप्रिय सरकार भी आरूढ़ हो गयी है लेकिन मूल समस्या का स्थायी एवं सर्वमान्य हल अभी तक नहीं निकल पाया है। कश्मीरी पंडित अभी भी विस्थापितों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

3.6 वाम चरमपंथ

पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी स्थान से प्रारम्भ होकर आज यह आंदोलन बिहार, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा राज्यों में फैल गया है। इस मूल कारण धनाढ्य एवं शक्तिशाली वर्ग द्वारा गरीबों एवं निम्न जातियों का शोषण था, परन्तु यह आंदोलन, आंदोलन न रहकर उग्रवाद में तब्दील हो गया है। एक आतंकवादी एवं नक्सली में कोई अन्तर नहीं रह गया है। जिन शोषितों के लिये इन्होंने हथियार उठाये थे, अब उन्हीं शोषित का ये हथियारों के बल पर शोषण कर रहे हैं एवं चरमपंथ प्रभावित इलाकों में समानान्तर सरकारें चला रहे हैं। पिपुल्स वार ग्रुप एवं मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर (PWG & MCC) इनके प्रमुख समूह हैं जो हाल के वर्षों में उभर कर आये हैं।
एक नया खतरा जो हाल में उभर कर आया है वह है उपरोक्त सभी राज्यों में अराजकता फैलाने वाले समूहों का आपस में मिल जाना। जिसके कारण इन सभी उग्रवादियों एवं चरमपंथियों का उद्देश्य राज्यों में लोक व्यवस्था पर हावी होकर केन्द्र सरकार को चुनौती देना है। उपरोक्त मुख्य समस्याओं के अलावा देश के अलग–अलग हिस्सों जैसे आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना आंदोलन, उत्तर प्रदेश में, रूहेलखण्ड, बघेलखण्ड आदि की माँग समय समय में अशांति का माहौल उत्पन्न करती रहती है।

3.7 सरकार का दायित्व एवं कर्तव्य– सुझाव

सरकारों को (राज्य एवं केन्द्र) प्रजातीय (Ethnic) एवं सामाजिक असमानताओं को दूर कर शिक्षा एवं रोजगार सम्बन्धी मौकों में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए एवं लोगों की शिकायतों को दूर करने के लिये प्रभावी प्रक्रिया का निर्माण करना चाहिए। गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी एवं न्याय न मिलने पर ही लोगों के मन में मौजूदा सरकार एवं माहौल के प्रति असंतोष जागृत

होने लगता है एवं वह उग्रवाद, हिंसा आदि के पनपने में सहायक सिद्ध होता है। एक उन्नतिशील अर्थव्यवस्था ही एकमात्र माध्यम है जो लोगों में आशा एवं अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है एवं इसी चतुर्मुखी विकास के माध्यम से ही हर प्रकार के चरमपंथी आंदोलनों एवं विद्रोहों को शिकस्त दी जा सकती है।

सुरक्षा व्यवस्था को चाक चौबंद बनाने हेतु एक अच्छा समन्वयित सुरक्षा तन्त्र के विकास पर जोर देना चाहिए जिसके अन्तर्गत पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों, सेना एवं खुफिया संस्थाओं को सम्मिलित करना चाहिए। नेशनल सिक्योरिटी गार्ड (NSG) की तर्ज पर राज्यों में संयुक्त बलों को संगठित करना चाहिए।

किसी भी समस्या को प्रारम्भिक अवस्था में ही सुलझाने के प्रयास शुरू कर देने चाहिए। किसी भी अशांति को उसके तीनों आयामों– राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक, पर ही सोच–विचार कर समस्या का हल ढूँढना चाहिए। कोई भी राजनीतिक या सामाजिक या आर्थिक समस्या सेना द्वारा नहीं सुलझायी जा सकती। नागरिक समस्याओं का समाधान उपरोक्त तीनों आयामों के विस्तार में ही निहित होता है। बस जरूरत है तो राजनीतिक इच्छा शक्ति की एवं उसे निष्पक्ष ढंग से अमल में लाने की।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान–

1.राज्य में लोक व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी .... की है।

2.अनुच्छेद .... के अन्तर्गत किसी बाहरी खतरे एवं आंतरिक अशांति की स्थिति में सम्पूर्ण सुरक्षा की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की है।

3.भारत के उत्तर पूर्व राज्यों में प्रमुख जनसंख्या .... की है।

सत्य असत्य कथन

4.उत्तर पूर्वी राज्यों में विद्रोह का मूल कारण वहां सदियों से निवास कर रही जनजातियों एवं उप जनजातियों की मूल पहचान से जुड़ा हुआ है। **सत्य/असत्य**

5.नक्सली आंदोलन की उत्पत्ति का मूल कारण धनाढ्य वर्ग द्वारा निचली गरीब जातियों के शोषण से जुड़ा है। **सत्य/असत्य**

3.8राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हों जाने की दशा में उपबंध

अनुच्छेद 356 के अनुसार,

(1) यदि राष्ट्रपति का, किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा, यह समाधान हो जाता है .कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा—

(क) उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य और राज्यपाल में या राज्य के विधान—मंडल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) यह घोषणा कर सकेगा कि राज्य के विधान—मंडल की शक्तियां संसद् द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

(ग) राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी से संबंधित इस संविधान के किन्हीं उपबंधोँ के प्रवर्तन को पूर्णतः या भागतः निलंबित करने के लिए उपबंधों सहित ऐसे आनुषंगिक और पारिणामिक उपबंध कर सकेगा जो उद्घोषणा के उद्देश्यों को प्रभावी करने के लिए राष्ट्रपति को आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हों;

परंतु इस खंड की कोई बात राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य किसी शंक्ति को अपने हाथ में लेने या उच्च न्यायालयों से संबंधित इस संविधान. के किसी उपबंध के प्रवर्तन को पूर्णतः या भागतः निलंबित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगी।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा वापस ली जा सकेगी या उसमें परिवर्तन किया जा सकेगा ।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी और जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को वापस लेने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा उसका अनुमोदन नही कर दिया जाता है;

परंतु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा (जो पूर्ववर्ती उद्घोषणा को वापस लेने वाली उद्घोषणा नहीं है) उस समय की जाती है जब लोक सभा का विघटन हो. गया है या लोक सभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की अवधि के दौरान हो जाता है और यदि उद्घोंषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किंतु ऐसी उद्घोषणा के संबंध में कोई संकल्प लोक सभा द्वारा उस अवधि की समाप्ति से पहले पारित नहीं किया गया है तो, उद्घोषणा उस तारीख से जिसको लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगीं यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नही कर दिया जाता है ।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है तो, ऐसी उद्घोषणा के किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी;

परंतु यदि और जितनी बार ऐसी उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो और उतनी बार वह उद्‌घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है तो, उस तारीख से जिसको वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, छह मास की और अवधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किंतु ऐसी उद्‌घोषणा किसी भी दशा में तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी;

परंतु यह और कि यदि लोक सभा का विघटन छह मास की ऐसी अवधि के दौरान हो जाता है और ऐसी उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किंतु ऐसी उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने के संबंध में कोई संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त अवधि के दौरान पारित नहीं किया गया है तो, उद्‌घोषणा उस तारीख से, जिसको लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नही कर दिया जाता है;

परंतु यह भी कि पंजाब राज्य की बाबत 11मई, 1987 को खंड (1) के अधीन की गई उद्‌घोषणा की दशा में, इस खंड के पहले परंतुक में तीन वर्ष के प्रति निर्देश का इस प्रकार अर्थ लगाया जाएगा मानो वह पांच वर्ष के प्रति निर्देश हो ।

(5) खंड (4) में किसी बात के होते हुए भी, खंड (3) के अधीन अनुमोदित उद्‌घोषणा के किए जाने की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति से आगे किसी अवधि के लिए ऐसी उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने के संबंध में कोई संकल्प संसद् के किसी सदन द्वारा तभी पारित किया जाएगा जब–

(क) ऐसे संकल्प के पारित किए जाने के समय आपात की उद्‌घोषणा, यथास्थिति, संपूर्ण भारत में अथवा संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग में प्रवर्तन में है; और

(ख) निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर देता है कि ऐसे संकल्प में विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान खंड (3) के अधीन अनुमोदित उद्‌घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखना, संबंधित राज्य की विधान सभा के साधारण निर्वाचन कराने में कठिनाइयों के कारण आवश्यक है;

परंतु इस खंड की कोई बात पंजाब राज्य की बाबत 11 मई 1987 को खंड (1) के अधीन की गई उद्‌घोषणा को लागू नहीं होगी ।

अनुच्छेद 356 में प्रयुक्त, किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा, से स्पष्ट है कि राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से कोई रिपोर्ट न मिलने पर भी कार्यवाही कर सकता है एवं यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रपति का 'समाधान' मन्त्रिमण्डल का समाधान होता है उसका अपना समाधान नहीं ।

3.8.1 अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के अधीन विधायी शक्तियों का प्रयोग

<u>अनुच्छेद 357 के अनुसार –</u>

(1) जहां अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन की गई उद्‌घोषणा द्वारा यह घोषणा की गई है कि राज्य के विधान–मंडल की शक्तियां संसद् द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां–

(क) राज्य के विधान–मंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करने की और इस प्रकार प्रदत्त शक्ति का किसी अन्य प्राधिकारी को, जिसे राष्ट्रपति इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, ऐसी शर्तो के अधीन, जिन्हें राष्ट्रपति अधिरोपित करना ठीक समझे, प्रत्यायोजन करने के लिए राष्ट्रपति को प्राधिकृत करने की संसद् को,

(ख) संघ या उसके अधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्तियां प्रदान करने या उन पर कर्तव्य अधिरोपित करने के लिए अथवा शक्तियों का प्रदान किया जाना या कर्तव्यों का अधिरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिए, विधि बनाने की संसद को अथवा राष्ट्रपति को या ऐसे अन्य प्राधिकारी को, जिसमें ऐसी विधि बनाने की शक्ति उपखंड (क) के अधीन निहित है,

(ग) जब लोक सभा सत्र में नहीं है तब राज्य की संचित निधि में से व्यय के लिए, संसद् को मंजूरी लंबित रहने तक ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति को, क्षमता होगी ।

(2) राज्य के विधान–मंडल की शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद् द्वारा, अथवा राष्ट्रपति या खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा बनाई गई ऐसी विधि, जिसे संसद् अथवा राष्ट्रपति या ऐसा ? अन्य प्राधिकारी अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्‌घोषणा के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होता, उद्‌घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् तब तक प्रवृत्त बनी रहेगी जब तक सक्षम विधान–मंडल या अन्य प्राधिकारी द्वारा उसका परिवर्तन या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता है ।

3.8.2 अनुच्छेद 356 के अधीन उद्‌घोषणा की अवधि

अनुच्छेद 356 के अधीन जारी की गयी उद्‌घोषणा की अवधि सामान्यतः दो माह की होगी। किंतु यदि कोई उद्‌घोषणा ऐसे समय की जाती है जब लोक सभा का विघटन हो गया है या दो मास की अवधि के दौरान हो जाता है तो पुनर्गठन के पश्चात लोक सभा की प्रथम बैठक से 30 दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि लोकसभा द्वारा इस अवधि के भीतर अनुमोदन करने वाला संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता है। संसद के दोनो सदनो द्वारा संकल्प पारित करके एक बार में इस अवधि को 6 मास के लिए बढाया जा सकता है । किंतु

कोई भी ऐसी उद्घोषणा किसी भी दशा में 3 वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी । इस प्रकार अनु0 356 के अधीन उद्घोषणा की अधिकतम अवधि 3 वर्ष है । इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् न तो राष्ट्रपति और न ही संसद उद्घोषणा को बनाए रख सकते हैं ।

3.8.3 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978

इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनु0 356 के क्षेत्र को काफी सीमित कर दिया है । संशोधन अधिनियम द्वारा एक नया खण्ड (5) जोडकर यह उपबन्धित किया है कि 1 वर्ष से अधिक अवधि के लिए आपात को जारी रखने वाला संकल्प किसी भी सदन द्वारा तब तक पारित नहीं किया जायेगा जब तक कि–

(क) ऐसे संकल्प के पारित करते समय आपात उद्घोषणा प्रवर्तन में है; और

(ख) चुनाव आयोग इस बात का प्रमाणपत्र न दे दे कि संबंधित विधानसभा के लिए आम चुनाव कराने में कठिनाइयों के कारण आपात स्थिति का जारी रहना आवश्यक है ।

इस संशोधन से पूर्व ऐसी कोई शर्त नहीं थी और सरकार बिना किसी कारण के इस अवधि को बढाकर अधिकतम सीमा (3 वर्ष) तक कर दिया करती थी ।.

42वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा अनु0 356 में एक परन्तुक जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया था कि राष्ट्रपति के समाधान को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती थी। किंतु 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा इस परंतुक को पुनः निकाल दिया गया है । इसके परिणामस्वरूप इस मामले में राष्ट्रपति की उद्घोषणा का न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है अर्थात् यदि उद्घोषणा दुर्भावना से प्रेरित होकर की गई है या उसमें उल्लिखित कारणों का राष्ट्रपति के समाधान से कोई युक्तियुक्त संबंध नहीं है तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकते हैं ।

48वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अनु0 356 के खण्ड (5) में एक नया परंतुक जोड़कर यह स्पष्ट किया गया था कि पंजाब राज्य के मामले में अक्टूबर, 1983 को खण्ड (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा एक वर्ष के स्थान पर दो वर्ष के लिए लागू रहेगी । पंजाब के मामले में खण्ड (5) की विशेष परिस्थिति का उपबन्ध लागू नहीं होगा अर्थात् चुनाव आयोग के प्रमाणपत्र के बिना 2 वर्ष तक लाग रहेगी । यह संशोधन पंजाब में अकाली आन्दोलन के कारण चुनाव कराना सम्भव न होने के कारण पारित किया गया था। संविधान के 64वें, 67वें एवं 68वें संशोधन अधिनियमों, द्वारा अनुच्छेद 356 में एक नया खण्ड जोड़कर पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि को क्रमशः 3 वर्ष 6 माह, 4 वर्ष एवं 5 वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया क्योंकि पंजाब में चुनाव कराना संभंव नहीं था ।

3.9 सहकारी संघवाद की भावना एवं अनुच्छेद 356 – एक उत्कृष्ट संतुलन

सहकारी संघवाद की भावना संघ और राज्यों के बीच संतुलन बनाए रखने और लोगों की भलाई को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। हमारी संवैधानिक प्रणाली के तहत, कोई भी संस्था श्रेष्ठता का दावा नहीं कर सकती। संप्रभुता किसी भी एक संस्था में या सरकार के किसी एक अंग में निहित नहीं है। सरकार की शक्तियां शासन के कई अंगों और संस्थानों में वितरित की जाती है एक अच्छे शासन के लिए यह अनिवार्य शर्त है। केंद्र को राज्यों पर कुछ प्रभुत्व दिया है उसका उपयोग केवल निहित उद्देश्य के लिए सख्ती से किया जाना चाहिए, न कि परोक्ष प्रयोजनों की पूर्ति के लिए। अनुच्छेद 356 में निहित असामान्य और असाधारण शक्ति को एक राजनीतिक पार्टी की संभावनाओं को आगे बढ़ाने या एक विधिवत निर्वाचित सरकार और एक विधिवत रूप से गठित विधान सभा को अस्थिर करने के लिए नियोजित नहीं किया जा सकता है। ऐसे अनुचित प्रयोग का परिणाम तुरंत स्पष्ट नहीं हो सकता है। लेकिन उनके परिणाम लंबे समय में स्पष्ट और अपरिवर्तनीय हो जाता है।

दुर्भाग्य से, पिछले कुछ वर्षों में केंद्र सरकार ने सहकारी संघवाद की भावना और वह उद्देश्य जिसके साथ अनुच्छेद 356 अधिनियमित किया गया था, को ध्यान में नहीं रखा। कई अवसरों पर अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति का दुरूपयोग किया गया। कई अवसरों पर विधानसभा में बहुमत प्राप्त राज्य सरकारों को भी बर्खास्त कर दिया गया एवं कुछ अवसरों पर वे उन्हें सदन के पटल पर अपना बहुमत साबित करने का मौका दिए बिना बर्खास्त कर दिया गया। एस.आर. बोम्मई का उदाहरण, जो कर्नाटक के मुख्यमंत्री थे इस तरह के दुरुपयोग का पक्का सबूत है। उनके द्वारा राज्यपाल से अपना बहुमत साबित करने के लिए, बहुत ही कम अवधि मांगे जाने के बावजूद, राज्यपाल ने उन्हें अवसर प्रदान नहीं किया और राज्य सरकार की बर्खास्तगी की सिफारिश की। राज्यपाल की कार्रवाई की सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्वाभाविक रूप से बहुत निंदा की गई।

संविधान लागू होने के दिन से लेकर आज तक अनु0 356 का प्रयोग 100 से अधिक बार किया चुका है । अधिकतर मामलों में राष्ट्रपति शासन ऐसी स्थिति में लागू किया गया था जब कि किसी न किसी कारण से एक स्थायी सरकार का गठन सम्भव नहीं था । इसके उदाहरण–पंजाब 1951, पेप्सू 1953, आन्ध्र प्रदेश 1954, ट्रावनकोर–कोचीन 1956, उड़ीसा 1961, केरल 1954, राजस्थान 1966 और 1978 में उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार, पंजाब 1969 और गुजरात 1977। 1964 में राष्ट्रपति शासन गुजरात में लागू किया गया जब कि छात्रों के आन्दोलन के फलस्वरूप विधानमण्डल का विघटन किया गया । 1975 में कांग्रेस दल के स्वयं के झगड़ों को निपटाने के लिए उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था । यह अनु0 356 का सरासर दुरुपयोग था । 1976 में अनु0 356 का प्रयोग तमिलनाहु में किया गया

और डी० एम० के० मन्त्रिमण्डल को इस आधार पर अपदस्थ कर दिया गया कि उसने केन्दीय सरकार के निर्देशों की अवहेलना की है तथा आपात–शक्तियों का दुरुपयोग किया है । राज्यपाल महोदय ने राष्ट्रपति को भेजी गई रिपोर्ट में लिखा था कि डी० एम० के० मन्त्रिमण्डल ने कुप्रबन्ध, भ्रष्टाचारपूर्ण कृत्यों तथा विभेदपूर्ण नीतियों का पालन कर न्याय को ताक पर रख दिया है जो जनतान्त्रिक प्रशासन की आधारशिला है । केन्दीय सरकार का यह कृत्य भी जनतांत्रिक परम्परा एवं सिद्धान्तों के विपरीत ही कहा जा सकता है, क्योंकि तमिलनाडु के मन्त्रिमण्डल को विधानमण्डल तथा जनता दोनों का पूर्ण विश्वास प्राप्त था । प्रजातन्त्र के नाम पर प्रजातन्त्र की हत्या करने का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है[6] ।

3.10 संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव

किसी राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की उद्‌घोषणा करने की शक्ति का बाह्म आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से कोई संबंध नहीं है । यह अधिकार संघ की असाधारण शक्ति है जो परिसंघ की इकाइयों में ऐसे राजनीतिक गतिरोध का सामना करने के लिए आवश्यक है जिसका राष्ट्र की शक्ति पर प्रभाव पड़े अथवा संघ के निर्देशों का ऐसी इकाई द्वारा अनुपालन न किए जाने पर (अनुच्छेद 365)।

अनुच्छेद 365 – जहां इस संविधान के किसी उपबंध के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए किन्हीं निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में कोई राज्य असफल रहता है वहां राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधिपूर्ण होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है ।

अनुच्छेद 365 के उपबन्ध राज्य सरकार द्वारा संघ सरकार के निर्देशों को कार्यान्वित करने की असफलता संबंध में है । संघ को संविधान द्वारा निर्देश देने का प्राधिकार दिया गया है।

3.11अनुच्छेद 356 का न्यायिक निर्वचन

अनुच्छेद 356 के अधीन संघ को प्रदत्त शक्ति के प्रयोग के पूर्वगामी इतिहास को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसी असाधारण शक्ति है जिससे संविधान द्वारा विहित सामान्य परिसंघीय राज्य व्यवस्था का जीवंत तत्व समाप्त हो जाता है । अतएव यह याद रखना चाहिए कि संविधान सभा में डा. अम्बेडकर ने इस तीव्र शक्ति वाले उपबंध के पक्ष में यह दलील दी थी कि इस अमोघ शक्ति का प्रयोग तब किया जाएगा जब अन्य सभी रास्ते बन्द हो जाएं।[7]

हम यह आशा करते हैं कि इन अनुच्छेदों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी और ये पुस्तक में ही बनें रहेंगे । यदि इन्हें कभी प्रवृत किया जाता है तो मैं आशा करता हूँ कि राष्ट्रपति किसी प्रांत के प्रशासन को निलम्बित करने के पहले सभी उचित पूर्वावधानी बरतेंगे।

एस० आर० बोम्मई बनाम भारत संघ[8] मामले में उच्चतम न्यायालय के 9 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि अनु0 356 के अधीन राज्याों में समुचित राष्ट्रपति शासन लागू करने और विधानसभा को भंग करने की राष्ट्रपति की शक्ति सशर्त है। यह आत्यन्तिक (bsolute) शक्ति नहीं है । वह न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है । यदि विधान सभा का भंग किया जाना अवैध पाया जाता है तो न्यायालय उसे पुनर्जीवित कर सकता है ।

उपरोक्त वाद में बहुमत का निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति श्री पी० वी० जीवन रेड्डी ने यह कहा कि राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की उद्घोषणा का 'न्यायिक पुनर्विलोकन' किया जा सकता है और यदि यह पाया जाता है कि अनु0 356 का प्रयोग दुर्भावना से प्रेरित होकर किया गया था या उसके लिए पर्याप्त आधार नहीं थे तो भंग विधान सभा को पुनर्जीवित किया जा सकता है । इस मामले में न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ[9] के मामले में दिए निर्णय का अनुसरण किया जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि राष्ट्रपति की शक्ति न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है । न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति शासन लागू होने के साथ विधान सभा को भंग नहीं किया जा सकता है । राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों द्वारा उद्घोषणा के अनुमोदित होने के पश्चात् ही विधान सभा को भंग कर सकता है, उसके पहले नहीं । जब तक संसद द्वारा अनुमोदन नहीं मिलता है, राष्ट्रपति विधान सभा को केवल निलंबित कर सकता है । अनु0 72 (2) के संदर्भ में बहुमत ने निर्णय दिया कि यद्यपि मन्त्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दिया गया परामर्श गोपनीय है किंतु जिस सामग्री के आधार पर मंत्रिगण राष्ट्रपति को सलाह देते हैं वह सलाह का भाग नहीं है । अत उसकी न्यायालय द्वारा जाँच की जा सकती है।न्यायालय द्वारा परीक्षण का क्षेत्र सीमित है । वह केवल इस बात का परीक्षण करेगा कि राष्ट्रपति ने जिस सामग्री के आधार पर कार्य किया है क्या वह सुसंबद्ध (relevent) है।

उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन लागू करने के संबंध में जो विशिष्ट मानदण्ड विहित किया है जिनका पालन करना केन्द्र सरकार के लिए अनिवार्य है, वे इस प्रकार हैं[10]–

(1) अनु0 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने और विधान सभा के भंग करने की शक्ति 'सशर्त ' है, असीमित नहीं और उसे यह दिखाना होगा कि अनु0 356 (1) के अधीन वे परिस्थितियाँ अस्तित्व में थीं जिसके आधार पर राष्ट्रपति ने कार्यवाही की है ।

(2) राष्ट्रपति शासन राज्यपाल की लिखित रिपोर्ट के बिना लागू नहीं किया जा सकता है ।

(3) 'पंथ निरपेक्षता' भारतीय संविधान का 'आधारभूत ढाँचा' है और यदि कोई सरकार उसके आदशों के विरुद्ध कार्य करती है तो वहाँ अनु0 356 का प्रयोग किया जा सकता है ।

(4) विपक्ष द्वारा शासित सभी राज्य सरकारों को एक साथ अपदस्थ नहीं किया जा सकता है।

(5) यदि केवल राजनीतिक आधारों पर दुर्भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है तो न्यायालय विधान सभा को पुनर्जीवित कर सकता है ।

(6) राष्ट्रपति शासन लागू करना और विधानसभा को भंग करना दोनों एक साथ नहीं किया जा सकता है । राष्ट्रपति संसद द्वारा उद्घोषणा के अनुमोदित किए जाने के पश्चात् ही विधानसभा को भंग कर सकता है । जब तक ऐसा अनुमोदन नहीं हो जाता है राष्ट्रपति विधान सभा को केवल निलम्बित कर सकता है ।

(7) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय केन्द्रीय सरकार को अनु0 74 (2) के बावजूद उन आधारों को बताने के लिए बाध्य कर सकता है, जिसके आधार पर किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने का परामर्श केन्द्रीय मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति को देता है । 'आधार' परामर्श का भाग नहीं है अतः न्यायालय उसकी जाँच कर सकता है ।

(8) किसी राजनीतिक दल का भारी बहुमत से केन्द्र में सत्तारूढ़ होना किसी राज्य में विपक्षी दल की सरकार को पदच्युत करने का कारण नहीं हो सकता है ।

उच्चतम न्यायालय का उक्त निर्णय कि यदि अनु0 356 के अधीन किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन दुर्भावना से प्रेरित होकर राजनीतिक आधारों पर लागू किया जाता है तो न्यायालय उसे न केवल अवैध घोषित कर सकता है वरन भंग विधान सभा को पुनर्जीवित भी कर सकता है । अनु0 356 के दुरुपयोग पर रोक लगाने में निश्चित रूप से सहायक होगा । न्यायालय द्वारा अनु0 356 के प्रयोग के लिए विहित किए गए मार्गदर्शक सिद्धांत स्वागत योग्य हैं। नागालैंण्ड, कर्नाटक और मेघालय में लागू किए गए राष्ट्रपति शासन को न्यायालय ने इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया क्योंकि इसके लिए कोई ठोस आधार नहीं था और अनुच्छेद 356 का प्रयोग राजनीति से प्रेरित होकर किया गया था।

3.12 सरकारिया समिति की सिफारिशें और अनुच्छेद 356

अनु0 356 के प्रयोग के लिए सरकारिया समिति ने निम्नलिखित सिफारिश की है–

(1) अनु0 356 का प्रयोग अन्तिम विकल्प होना चाहिए । कार्यवाही करने से पूर्व ऐसे राज्यों को चेतावनी देना चाहिए । यह उन दशाओं में लागू नहीं होगा जहाँ कार्यवाही न करने के विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं ।

(2) राज्य की विधान सभाओं को भंग नहीं किया जाना चाहिए । इसके लिए अनु0 356 में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए ।

(3) सारवान तत्व और आधार उद्घोषणा के अन्तिम भाग बना देना चाहिए ।

(4) अनु0 356 के खण्ड (5) में उपखण्ड (क) और (ख) के बीच प्रयुक्त शब्द 'और' के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखा जाना चाहिए ।

सरकारिया आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित कुछ परिस्थितियां, जिनमें यह नहीं कहा जा सकता कि सांविधानिक तंत्र विफल हो गया है, निम्नलिखित हैं, इन्हें बाम्मेई के मामले[11] में न्यायालय का समर्थन भी मिला है[12] –

(1) कुप्रशासन की स्थिति, जहां समुचित रूप से गठित मंत्रिपरिषद् को विधान सभा का समर्थन प्राप्त है।

(2) जहां कोई मंत्रिपरिषद् बहुमत का समर्थन समाप्त हो जाने पर त्यागपत्र दे देती है या पदच्युत कर दी जाती है और राज्यपाल वैकल्पिक सरकार बनने की संभावना की खोज किए बिना राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करता है ।

(3) जहां मंत्रिपरिषद् की सदन के भीतर हार नहीं हुई है वहां राज्यपाल अपने व्यक्तिगत निर्धारण से अध्यारोहित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश नहीं कर सकता।

(4) जहां लोक सभा के लिए साधारण निर्वाचन में, राज्य में शासक दल की भारी पराजय हुई है ।

(5) जहां आंतरिक अशांति की परिस्थिति है किंतु संघ ने अनुच्छेद 355 के अधीन अपने कर्तव्य के निर्वहन में उस परिस्थिति का शमन के लिए सभी संभव उपाय नहीं किए हैं ।

(6) जिन मामलों में अनुच्छेद 256, 257 आदि के अधीन निदेश दिए गए थे उनमें राज्य सरकार को अपने सुधारने के लिए कोई पूर्व चेतावनी या अवसर नहीं दिया गया ।

(7) जहां शक्ति का उपयोग शासक दल की आंतरिक समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जाता है ।

(8) एकमात्र इस आधार पर शक्ति का प्रयोग वैध नहीं होगा कि राज्य की वित्तीय स्थिति बहुत खराब है ।

(9) एकमात्र इस आधार पर भी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता कि मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप हैं ।

(10) यदि शक्ति का प्रयोग ऐसे प्रयोजन के लिए किया जाता है जो संविधान द्वारा अनुज्ञात प्रयोजनों के बाहर है या उससे सुसंगत नहीं है तो यह विधिक रूप से असद्भावपूर्ण प्रयोग होगा।

<u>निर्देश –</u>

1.ए0 आई0 आर0 2005 एस0 सी0 2920

2.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 680

3.सांतवी अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 1

4.सांतवी अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 2

5-.castwestcenter.org/filadmin/stored/pdfs/ps052.pdf

6.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 683

7.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, पृष्ठ 363

8.(1994) 3 एस0 सी0 सी0 1

9.ए0 आई0 आर0 1977 एस0 सी0 1361

10.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 690

11.(1994) 3 एस0 सी0 सी0 1

12.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, पृष्ठ 364

प्रश्नावली

हां या नहीं में उत्तर दीजिए–

1.क्या संविधान द्वारा यह उपबंधित होना चाहिए कि अनुच्छेद 356(1) के अन्तर्गत जारी घोषणा का अनुमोदन जब तक संसद के दोनों सदनों द्वारा नहीं कर दिया जाता,तब तक राज्य विधानसभा को भंग नहीं करना चाहिए। **हां/नहीं**

2.क्या आप इससे सहमत हैं कि अगर आवश्यक हो तो विधानसभा को केवल निलम्बित स्थिति में रखा जाना चाहिए। **हां/नहीं**

3.क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत उदघोषणा जारी करने से पहले केन्द्र सरकार को इस बात का संकेत राज्य सरकार को देना चाहिए कि वह संविधान के प्रावधानों के तहत कार्य नहीं कर रही हैं, एवं राज्य सरकार को स्थिति के निवारण हेतु एक उचित अवसर प्रदान करना चाहिए। अगर हालात इतने बेकाबू नहीं हुए हैं कि राज्य की सुरक्षा देश की रक्षा के लिए कोई खतरा बन जाए? **हां/नहीं**

4.क्या आप सहमत हैं कि अनुच्छेद 356(1) के तहत जारी घोषणा के साथ एक संलग्नक होना चाहिए जिसमें उन परिस्थितियों एवं आधारों का विवरण होना चाहिए जिनके द्वारा राष्ट्रपति को यह समाधान हुआ है कि राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुरूप कार्य नहीं कर रही है। **हां/नहीं**

5.क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं कि राज्य का मंत्रिमण्डल विधानसभा का विश्वास खो चुकी है इसका निर्णय विधानसभा पटल पर ही किया जा सकता है, अन्यत्र नहीं। **हां/नहीं**

3.13 सारांश

राज्यों में आन्तरिक अशांति देश पर किसी बाहरी खतरे की आशंका से अधिक गम्भीर होती है। आज भारत देश का एक बड़ा हिस्सा आन्तरिक अशांति से जूझ रहा है। उत्तर में जम्मू एवं कश्मीर घाटी, पंजाब, पूर्वोत्तर में मणिपुर, आसाम आदि राज्य एवं छत्तीसगढ़, बंगाल, झारखण्ड, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश किसी न किसी समस्या से जूझ रहे हैं।

अनुच्छेद 355 के अनुसार, संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की संरक्षा करे। अनु0 355 में प्रयुक्त वाह्य आक्रमण के वास्तविक अर्थ के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने सरवदानन्द सोनवाल बनाम भारत संघ के वाद में विचार किया। न्यायालय के अनुसार अनुच्छेद 355 के अधीन 'आक्रमण' एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है इसका अर्थ केवल युद्ध से नहीं है वरन इसमें अन्य कई कृत्य भी सम्मिलित हैं जो युद्ध की श्रेणी में नहीं आते हैं ।

लोक व्यवस्था बनाये रखना राज्य का कार्य है। राज्यों की आन्तरिक अशांति के मद्देनजर केन्द्र का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है एवं दिन पर दिन बढ़ते राष्ट्रीय आन्तरिक खतरों को देख केन्द्र की जिम्मेदारी भी बढ़ती जा रही है। केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर पुंछी कमीशन की रिपोर्ट में भी इस विषय में संविधान में संशोधन की बात कही गयी है कि आंतरिक अशांति की स्थिति में केन्द्र को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि वह जरूरत पड़ने पर राज्य के केवल प्रभावित क्षेत्रों में ही आपात स्थिति लागू करे। ऐसा प्रावधान केन्द्र राज्य के सम्बन्धों में बढ़ते तनाव को कम करेगा। पूंछी कमीशन के प्रतिवेदन (2010) के अनुसार नक्सलवाद, उत्तर पूर्व का विद्रोह, कश्मीर समस्या को प्राथमिकता देते हुए सुरक्षा अमले को और बेहतर बनाया जाना चाहिए एवं इस मसलों पर राज्य और केन्द्र द्वारा एक ही उद्देश्य के अन्तर्गत कार्य किया जाना चाहिए। सरकारों को (राज्य एवं केन्द्र) प्रजातीय (Ethnic) एवं सामाजिक असमानताओं को दूर कर शिक्षा एवं रोजगार सम्बन्धी मौकों में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए एवं लोगों की शिकायतों को दूर करने के लिये प्रभावी प्रक्रिया का निर्माण करना चाहिए।एक उन्नतिशील अर्थव्यवस्था ही एकमात्र माध्यम है जो लोगों में आशा एवं अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है एवं इसी चतुर्मुखी विकास के माध्यम से ही हर प्रकार के चरमपंथी आंदोलनों एवं विद्रोहों को शिकस्त दी जा सकती है।

राज्य में संवैधानिक तन्त्र विफल होने की दशा में अनुच्छेद 356 के तहत केन्द्र सरकार राज्य विधान मण्डल को भंग करने की शक्ति रखती है। अनुच्छेद 356 के प्रावधानों के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल या अन्य माध्यमों से यह समाधान हो जाये कि राज्य का विधानमण्डल संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप कार्य नहीं कर रहा है तो वह राज्य सरकार को भंग करने की उद्घोषणा जारी कर राज्य का प्रशासन अपने हाथों में ले सकता है। अनु0 356 के अधीन उद्घोषणा की अधिकतम अवधि 3 वर्ष है। 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा

अनु0 356 के क्षेत्र को काफी सीमित कर दिया है । संशोधन अधिनियम द्वारा एक नया खण्ड (5) जोडकर यह उपबन्धित किया है कि 1 वर्ष से अधिक अवधि के लिए आपात को जारी रखने वाला संकल्प किसी भी सदन द्वारा तब तक पारित नहीं किया जायेगा जब तक कि – (क) ऐसे संकल्प के पारित करते समय आपात उद्घोषणा प्रवर्तन में है; और (ख) चुनाव आयोग इस बात का प्रमाणपत्र न दे दे कि संबंधित विधानसभा के लिए आम चुनाव कराने में कठिनाइयों के कारण आपात स्थिति का जारी रहना आवश्यक है।

सहकारी संघवाद की भावना संघ और राज्यों के बीच संतुलन बनाए रखने और लोगों की भलाई को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। सरकार की शक्तियां शासन के कई अंगों और संस्थानों में वितरित की जाती है एक अच्छे शासन के लिए यह अनिवार्य शर्त है। केंद्र को राज्यों पर कुछ प्रभुत्व दिया है उसका उपयोग केवल निहित उद्देश्य के लिए सख्ती से किया जाना चाहिए, न कि परोक्ष प्रयोजनों की पूर्ति के लिए। अनुच्छेद 356 में निहित असामान्य और असाधारण शक्ति को एक राजनीतिक पार्टी की संभावनाओं को आगे बढ़ाने या एक विधिवत निर्वाचित सरकार और एक विधिवत रूप से गठित विधान सभा को अस्थिर करने के लिए नियोजित नहीं किया जा सकता है। दुर्भाग्य से, पिछले कुछ वर्षों में केंद्र सरकार ने सहकारी संघवाद की भावना और वह उद्देश्य जिसके साथ अनुच्छेद 356 अधिनियमित किया गया था, को ध्यान में नहीं रखा। कई अवसरों पर अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति का दुरूपयोग किया गया। संविधान लागू होने के दिन से लेकर आज तक अनु0 356 का प्रयोग 100 से अधिक बार किया चुका है ।

किसी राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा करने की शक्ति का बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से कोई संबंध नहीं है । यह अधिकार संघ की असाधारण शक्ति है जो परिसंघ की इकाइयों में ऐसे राजनीतिक गतिरोध का सामना करने के लिए आवश्यक है जिसका राष्ट्र की शक्ति पर प्रभाव पड़े अथवा संघ के निदेशों का ऐसी इकाई द्वारा अनुपालन न किए जाने पर (अनुच्छेद 365)। अनुच्छेद 365 के उपबन्ध राज्य सरकार द्वारा संघ सरकार के निदेशों को कार्यान्यित करने की असफलता संबंध में है । संघ को संविधान द्वारा निदेश देने का प्राधिकार दिया गया है।

एस० आर० बोम्मई बनाम भारत संघ मामले में उच्चतम न्यायालय के 9 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि अनु0 356 के अधीन राज्याों में समुचित राष्ट्रपति शासन लागू करने और विधानसभा को भंग करने की राष्ट्रपति की शक्ति सशर्त है। यह आत्यन्तिक (इेवसनजम) शक्ति नहीं है । वह न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है । यदि विधान सभा का भंग किया जाना अवैध पाया जाता है तो न्यायालय उसे पुनर्जीवित कर सकता है।

अनु0 356 के प्रयोग के लिए सरकारिया समिति ने निम्नलिखित सिफारिश की है–

(1) अनु0 356 का प्रयोग अन्तिम विकल्प होना चाहिए । कार्यवाही करने से पूर्व ऐसे राज्यों को चेतावनी देना चाहिए । यह उन दशाओं में लागू नहीं होगा जहाँ कार्यवाही न करने के विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं ।

(2) राज्य की विधान सभाओं को भंग नहीं किया जाना चाहिए । इसके लिए अनु0 356 में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए ।

(3) सारवान तत्व और आधार उद्घोषणा के अन्तिम भाग बना देना चाहिए ।

(4) अनु0 356 के खण्ड (5) में उपखण्ड (क) और (ख) के बीच प्रयुक्त शब्द 'और' के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखा जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 356 के अधीन संघ को प्रदत्त शक्ति एक ऐसी असाधारण शक्ति है जिससे संविधान द्वारा विहित सामान्य परिसंघीय राज्य व्यवस्था का जीवंत तत्व समाप्त हो जाता है । अतएव यह याद रखना चाहिए कि संविधान सभा में डा. अम्बेडकर ने इस तीव्र शक्ति वाले उपबंध के पक्ष में यह दलील दी थी कि इस अमोघ शक्ति का प्रयोग तब किया जाएगा जब अन्य सभी रास्ते बन्द हो जाएं।

3.14 महत्वपूर्ण शब्दावली

सांतवीं अनुसूची (अनुच्छेद 246) –संविधान की सांतवीं अनुसूची में तीन सूचियों का विवरण है – संघ सूची, राजय सूची एवं समवर्ती सूची। अनुच्छेद 246 के उपबंधों के अधीन संघ सूची (सूची 1) में प्रगणित विधि बनाने की अनन्य शक्ति संसद को है। सूची 2 (राज्य सूची) के किसी भी विषय पर विधि बनाने की शक्ति राज्य के विधान मंडल को एवं सूची 3 (समवर्ती सूची) के विषयों पर विधि बनाने की शक्ति संसद एवं राज्य के विधान मंडल को है।

नक्सलवाद – 'नक्सलवाद' शब्द की उत्पत्ति पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी स्थान से हुईष जहां से इस आंदोलन का शुरूआत हुई थी। नक्सलियों को वाम चरमपंथी कम्युनिस्ट, जो माओवादी विचारधारा के समर्थक हैं, का माना जाता है। प्रारम्भ में यह आंदोलन पश्चिम बंगाल में केंद्रित था परन्तु अब यह भारत के कई राज्यों में फैल गया है। इसमें अधिकतर विस्थापित आदिवासी एवं मूल निवासी है, जो प्रमुख भारतीय निगमों एवं भ्रष्ट अधिकारियों से लड़ रहे हैं।

पुंछी कमीशन (Punchhi Commission) –केंद्र – राज्य संबंधों पर गठित यह दूसरा कमीशन है। न्यायमूर्ति मदन मोहन पुँछी इसके अध्यक्ष थे। इसका गठन 28 अप्रैल 2007 को किया गया था।

AFSPA . सशस्त्र बल (विशेष शक्ति) अधिनियम सितम्बर 11, 1958 को संसद द्वारा अधिनियमित किया गया। इसके द्वारा अशांत क्षेत्रों में तैनात सेना को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं। जिसके अंर्तगत लोक व्यवस्था को नष्ट करने की कोशिश करने वाले व्यक्तिः

व्यक्तियों पर फायरिंग की छूट, बिना वारंट गिरफ्तारी, किसी भी परिसर में खोजबीन या गिरफ्तारी हेतु प्रवेश की छूट, सशस्त्र बलों को उनके कार्यों से विधिक उन्मुक्तियां आदि शक्तियां आती हैं।

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.राज्य 2. 355 3. अनुसूचित 4. सत्य 5.सत्य

प्रश्नावली के उत्तर–

1. – 5. हॉ

3.16 संदर्भ ग्रन्थ

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी ।

2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

4.http://www.idsa.in/event/InternalSecurityandCentreStateRelations

5-http://www.eastwestcenter.org/fileadmin/stored/pdfs/ps052.pdf

6-http://legalservicesindia.com/article/article/center%E2%80%99s-obligation-towards-state-261-1.html

7http://www.idsa.in/strategicanalysis/IndiasInternalSecurityChallenges_vmarwah_1003

8-http://lawmin.nic.in/ncrwc/finalreport/v2b2-5.htm

3.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

3.18 निबंधात्मक प्रश्न

1.राज्यों की आंतरिक अशांति के मद्देनजर केंद्र के अधिकार एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालिए।

2.नक्सलवाद आंदोलन के मूल कारण क्या हैं? क्या यह आंदोलन अपने लक्ष्य से भटक गया है? अपने विचार लिखिए।

3.अनुच्छेद 356 के अधीन केंद्र की शक्ति आत्यान्तिक नहीं है'। संबंधित वादों का हवाला दें।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–1. संघवाद

इकाई–4. कुछ राज्यों के संबंध में विषेश उपबंध; अनुसूचित एवं जनजाति क्षेत्र

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उददेश्य

4.3 विशेष दर्जा प्राप्त राज्य

4.4 अनुच्छेद 370– जम्मू एवं कष्मीर राज्य को विषेश दर्जा

4.4.1 अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की शक्ति

4.5 महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.6 नागालैण्ड राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.7 असम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.8 मणिपुर राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.9 आन्ध्र प्रदेष राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.9.1 आन्ध्र प्रदेश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना

4.10 सिक्किम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.11 मिजोरम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.12 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के बारे में उपबंध

4.13 अरुणाचल प्रदेश राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.14 गोवा राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

4.15अनुसूचित एवं जनजाति क्षेत्र

4.15.1 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम से भिन्न राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन एवं नियंत्रण

4.15.2 जनजाति सलाहकार परिषदों का गठन

4.15.3संविधान द्वारा बनाये गये अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातियों के प्रशासन से सम्बन्धित उपबंधों का परिवर्तन

4.15.4 अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने हेतु आयोग की स्थापना

4.15.5 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध

4.16 सारांश

4.17 शब्दावली

4.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.19 संदर्भ ग्रन्थ

4.20 सहायक/उपयोगी पाठय सामग्री

4.21 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत देश विविधताओं को समेटे हुये है। यहॉ जहॉ एक ओर प्रचंड गर्मी को झेलता हुआ रेगिस्तान है वही विश्व का तीसरा ध्रुव कहलाने वाला हिमालय भी है । जहॉं हर समय बर्फ से ढकी गगन चुम्बी चोटियां हैं । भौगोलिक विविधताओं एवं विषमताओं को समेटे हुए इस देश में विभिन्न संस्कृतियों का भी अनूठा संगम देखने को मिलता है । यहॉ विभिन्न प्रकार की जनजातियॉ देश के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती हैं जो सदियों से अपने ही ढंग से जीती आयीं हैं। उनके अपने कानून एवं प्रशासन के तरीके हैं। भारत देश में कुछ वर्ग ऐसे हैं जो आर्थिक–सामाजिक रुप से बहुत पिछडे हुए हैं। इन्ही विविधताओं एवं पिछडे वर्गो को ध्यान में रखते हुये संविधान में उन राज्यों अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातियों के लिये विशेष उपबंध किये गये है जिससे उनकी सांस्कृतिक पहचान कायम रहे एवं उनका विकास कर उन्हें मुख्य धारा से जोडा जा सके। इस इकाई में संविधान के इन्ही विशेष उपबंधों को समझाया गया है ।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेगें।

- अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू एवं कश्मीर राज्य को प्रदान किया गया विशेष दर्जा – कारण एवं स्थिति ।
- महाराष्ट्र, गुजरात, नागालैण्ड एवं मणिपुर राज्यों के सम्बन्ध में संविधान में किये गये विशेष उपबंध।
- आन्ध्र प्रदेश, सिक्किम एवं मिजोरम राज्यो के सम्बन्ध में संविधान में किये गये विशेष उपबंध

- अरुणाचल प्रदेश एंव गोवा राज्यों के सबंध में संविधान के अन्तर्गत किये गये विशेष उपबंध
- असम मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम से भिन्न राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन के सम्बन्ध में उपबंध (पॉचवी अनुसूची)
- छठी अनुसूची के अन्तर्गत असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों मे अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन के सम्बन्ध में किये गये उपबंध।

4.3 विशेष दर्जा प्राप्त राज्य –

भारत के संविधान के अन्तर्गत कुछ राज्यों को विशेष दर्जा प्रदान किया गया है ।

- अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू कश्मीर राज्य को एक विशेष स्थिति प्रदान की गयी है ।
- अनुच्छेद 371(2) भारत के राष्ट्रपति को महाराष्ट्र एवं गुजरात के कुछ भागों के विकास हेतु विशेष उत्तरदायित्व प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 371–ए नागालैण्ड राज्य के विषय में विशेष प्रावधानों की स्थापना करता है।
- अनुच्छेद 371–बी आसाम राज्य के विषय में विशेष प्रावधानों बनाता है।
- अनुच्छेद 371–सी मणिपुर राज्य के विषय में राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्व सौपता है।
- अनुच्छेद 371–डी एवं अनुच्छेद 371–ई आन्ध्र प्रदेश राज्य के पिछडे क्षेत्रों के विकास हेतु विशेष स्थिति प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 371–एफ सिक्किम राज्य के विषय में प्रावधानों का निर्माण करता है
- अनुच्छेद 371–जी मिजोरम राज्य के विषय में विशेष प्रावधानों का निर्माण करता है।
- अनुच्छेद 371–एच अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल को राज्य से सम्बन्धित विशेष उत्तरदायित्व प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 371–आई गोवा राज्य के विषय में विशेष प्रावधानों का निर्माण करता है।

4.4 अनुच्छेद 370 जम्मू एवं कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा

जम्मू एवं कश्मीर राज्य का अपना अलग संविधान है जो कि अपने आप में ही एक विशिष्ट विषय है। स्वतंत्रता के समय से ही जम्मू एवं कश्मीर राज्य की स्थापना, इसका राज्य पद एवं इसका स्वयं का संविधान (भारत देश के संविधान के अन्तर्गत) सम्पूर्ण विश्व का ध्यान अपनी

ओर आकर्षित करता रहा है। जम्मू एवं कश्मीर अधिनियम 1939 द्वारा प्रथम बार राज्य को लोकतंत्र (तथाकथित) घोषित किया गया था । कश्मीर के महाराज द्वारा इस अधिनियम द्वारा प्रशासनिक कार्यपालिकीय एवं न्यायिक शक्तियॉ राजा में समाहित करते हुये उन्हें पूर्ण राजा घोषित किया गया था। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य को विशेष सांविधानिक दर्जा प्रदान करते हुये भारत देश से उसका संबंध स्थापित किया गया । भारत के संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 370 के तहत जो विशेष दर्जा जम्मू एवं कश्मीर राज्य को प्राप्त है उसे अन्य राज्यों के लिये एक उदाहरण नही माना गया है। यह उन राजनीतिक स्थितियों के कारण हुआ जिन्होंने उस समय के भारतीय राजनेताओं को यह निर्णय लेने पर मजबूर कर दिया था। इसका अपना एक अलग इतिहास है।

भारत देश पर अंग्रेजी राज्य का अधिकार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के साथ ही समाप्त हो गया था एवं सभी देसी रियासतों को यह स्वविवेकाधिकार दिया गया कि वे पाकिस्तान या भारत किसके साथ जाना चाहती है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद पाकिस्तानी सेना द्वारा जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर सशस्त्र आक्रमण हुआ इससे बचने के लिये उस स्थिति में कश्मीर के महाराजा हरीसिंह को भारत सरकार के साथ संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसके तहत उन्होने भारत में जम्मू एवं कश्मीर राज्य के विलय को स्वीकार किया। महाराजा हरिसिंह ने इस अधिनियम पत्र पर 26 अक्टूबर 1947 को हस्ताक्षर किये, यद्यपि उसी समय जम्मू–कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न भाग बन गया, किन्तु इस समझौते की वहां की जनता ने अपनी संविधान सभा के माध्यम से 1957 में पुष्टि की । भारत का अभिन्न भाग होने के नाते जम्मू–कश्मीर राज्य संविधान की प्रथम अनुसूची में विर्निदिष्ट राज्यों की सूची में सम्मिलित है। भारतीय संविधान के प्रवर्तन के समय इस राज्य की स्थिति अन्य राज्यों से भिन्न थी, इसी कारण अनुच्छेद 370 को संविधान में समाविष्ट किया गया । निम्नलिखित मामलों में जम्मू कश्मीर राज्य की स्थिति अन्य राज्यों से भिन्न है[1] –

1.जम्मू कश्मीर राज्य का अपना संविधान है और उसके उपबन्धों के अनुसार इसका प्रशासन चलता है। अन्य राज्यों के प्रशासन सम्बन्धी उपबन्ध इस राज्य पर लागू नही होते हैं।

2.इस राज्य के लिये विधि बनाने की संसद की शक्ति संघ सूची और समवर्ती सूची के उन विषयों तक सीमित होगी जिनकी राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार से परामर्श करके यह घोषित करे कि वे अधिमिलन पत्र में विनिर्दिष्ट विषयों के अनुरुप हैं ।

3.संसद की विधि बनाने की शक्ति संघ सूची और समवर्ती सूची के उन विषयों तक सीमित होगी जो राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार की सहमति से आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें, अर्थात् अन्य विषयों पर विधि राज्य सरकार की 'सहमति' से ही बनाई जा सकती है।

4.अनु0 370(1) (घ) यह उपबन्धित करता है कि ऐसे अन्य उपबन्ध, उपर्युक्त के अतिरिक्त ऐसे अपवादों और उपान्तरणों के अधीन उस राज्य में लागू होगें जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें । ऐसे आदेश जो (1) उपखण्ड (ख) के पैरा (1) में विनिर्दिष्ट राज्य के अधिमिलन पत्र में विनिर्दिष्ट विषयों से सम्बन्धित है। उस राज्य की सरकार के परामर्श के बिना तथा (2) जो अधिमिलन पत्र में विनिर्दिष्ट विषयों से भिन्न विषयों से सम्बन्धित है राज्य सरकार की सहमति के बिना जारी नही किये जा सकते है। राष्ट्रपति संविधान के उपबंधो को उन उपान्तरणों के साथ उस राज्य में लागू कर सकता है जिसे वह उचित समझे[2] । राष्ट्रपति ऐसे उपबन्धों में बाद में भी संशोधन या उपान्तरण कर सकते है।[3]

5.अनुच्छेद 370 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने समय–समय पर आदेश जारी करके संविधान के अनेक उपबन्धों को उस राज्य में लागू किया है । सर्वप्रथम राष्ट्रपति ने संविधान (जम्मू कश्मीर को लागू होना) आदेश 1950 जारी किया इस आदेश को अधिक्रान्त ;नचमतेमकमद्ध करते हुये संविधान (जम्मू–कश्मीर को लागू होना) संशोधन आदेश 1954 जारी किया गया। इस आदेश में समय–2 पर संशोधन किया जाता रहा हैं। यही आदेश उस राज्य की सांविधानिक स्थिति को विनियमित करता है। इसके द्वारा संघ सूची और समवर्ती सूची के अधिकांश विषयों पर विधि बनाने की संसद की शक्ति को जम्मू कश्मीर राज्य पर भी लागू कर दिया गया है। 1954 के आदेश को समय समय पर संशोधित करने संविधान के अनेक उपबंधों को उस राज्य में लागू किया गया है। 1954 के आदेश के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है –

1.राज्य का अपना संविधान लागू रहेगा जो 26 जनवरी, 1957 को लागू किया गया।

2.जम्मू कश्मीर के उच्च न्यायालय को वे सभी शक्तियॉं होगी जो अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों को प्राप्त है। सिवाय इसके कि वह अन्य प्रयोजन के लिये रिट जारी नही कर सकता है।

3.उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता (केवल अनु0 135 और 139 को छोड़कर) उस राज्य पर होगी ।

4.संसद संघ सूची के सभी विषयों पर प्रविष्टि (8, 9, 34, 60, 79 और 97 को छोडकर) तथा समवर्ती सूची के कतिपय विषयों पर विधि बना सकती है।

5.अनु0 352 के अधीन आपात उपबंध उस राज्य की सहमति से ही लागू किये जा सकते है। अनु0 356 के उपबंध उस राज्य पर भी लागू होते हैं, किन्तु अनु0 360 वहॉं लागू नहीं होता है।

6.संघ की कार्यपालिका शक्ति जम्मू कश्मीर राज्य पर भी लागू होती है। राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय विधियों के अनुपालन करने में केन्द्र के निर्देशानुसार करेगें।

7.व्यापार, वाणिज्य एवं समागम की स्वतंत्रता, लोक सेवाओं और नागरिकता सम्बन्धी सभी उपबन्ध उस राज्य पर लागू होंग। राज्य में चुनाव का उत्तरदायित्व चुनाव आयोग पर हैं।

8.अनु0 368 के अधीन संविधान संशोधन वहाॅ तब तक लागू नही होगा जब तक कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा उसे लागू न कर दें।

4.4.1 अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की शक्ति

अनुच्छेद 370 के खण्ड–3 में यह उपबंधित है –

'' इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधो में किसी बात को होते हुये भी, राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नही रहेगा या ऐसे अपवादों और उपांतरणों सहित और ऐसी तारीख से प्रवर्तन में रहेगा जो वह विनिर्दिष्ट करें।

परन्तु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना निकाले जाने से पहले खंड (2) में निर्दिष्ट उस राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।''

4.5 महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य के संबंध में विशेष उपबंध

अनु0 371(2) राश्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्यों के राज्यपालों को उन राज्यों के कुछ क्षेत्रों के विकास के विषय में विशेष दायित्व प्रदान कर सकेगें। उन विशेष दायित्वों का निर्वाह करते समय राज्यपाल उन निर्देशों का पालन करेगें जिन्हें राष्ट्रपति समय–समय पर इस विषय पर देगें –

क.यथास्थिति, विदर्भ, मराठावाड़ा और शेष महाराष्ट्र या सौराष्ट्र, कच्छ और शेष गुजरात के लिये पृथक विकास बोर्डो की स्थापना के लिये इस उपबंध सहित कि इन बोर्डो में से प्रत्येक के कार्यकरण पर एक प्रतिवेदन राज्य विधान सभा के समकक्ष प्रतिवर्ष रखा जायेगा ।

ख.समस्त राज्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उक्त क्षेत्रों के विकास व्यय के लिये निधियों के साम्यापूर्ण आवंटन के लिये, और

ग.समस्त राज्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए, उक्त सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में तकनीकी शिक्षा और व्यवसायिक प्रशिक्षण के लिये पर्याप्त सुविधाओं की और राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन सेवाओं में नियोजन के लिए पर्याप्त अवसरों की व्यवस्था करने वाली साम्यापूर्ण व्यवस्था करने के लिये,

राष्ट्रपति राज्यपाल के किसी विशेष उत्तरदायित्व के लिये उपबंध कर सकेगा।[4]

4.6 नागालैड राज्य के संबध में विशेष उपबंध

अनुच्छेद 371क उपबन्धित करता है –

1.इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

क.निम्नलिखित के सम्बन्ध में संसद का कोई अधिनियम नागालैड राज्य को तब तक लागू नही होगा जब तक नागालैंड की विधानसभा संकल्प द्वारा ऐसा विनिश्चय नहीं करती है, अर्थात–

1. नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथाएं;

2. नागा रुढिजन्य विधि और प्रक्रिया;

3. सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन, जहॉ विनिश्चय नागा रुढिजन्य विधि के अनुसार होने है;

4. भूमि और उसके संपति स्रोतों का स्वामित्व और अंतरण

ख.नागालैंड के राज्यपाल का नागालैंड राज्य में विधि और व्यवस्था के संबंध में तब तक विशेष उत्तरदायित्व रहेगा जब तक उस राज्य के निर्माण के ठीक पहले नागा पहाड़ी त्यूएनसांग क्षेत्र में विद्यमान आंतरिक अशांति, उसकी राय में उसमें या उसके किसी भाग में बनी रहती है और राज्यपाल उस संबंध में अपने कृत्यों का निर्वहन करने में की जाने वाली कार्यवाही के बारे में अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग, मंत्री परिषद से परामर्श करने के पश्चात करेगा;

उपरोक्त उपखंड के परंतुक में यह स्पष्ट किया गया है कि उपरोक्त उपखंड के संबंध राज्यपाल के स्वविवेकाधीन निर्णय पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जायेगा एवं उनका विनिश्चय अंतिम एवं विधिमान्य होगा।

उपरोक्त उपखंड के दूसरे परंतुक में यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति कभी भी राज्यपाल से प्रतिवेदन पाने के प्श्चात या स्वयं समाधान होने पर नागालैंड राज्य में विधि और व्यवस्था के सम्बन्ध में राज्य को प्रदान विशेष उत्तरदायित्व की समाप्ति का आदेश जारी कर सकता है।

ग.अनुदान की किसी मॉग के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश करने में नागालैंड का राज्यपाल यह सुनिश्चित करेगा कि किसी विनिर्दिष्ट सेवा या प्रयोजन के लिये भारत की संचित निधि में से भारत सरकार द्वारा दिया गया कोई धन इस सेवा या प्रयोजन से सम्बन्धित अनुदान की मांग में, न कि किसी अन्य मांग में सम्मिलित किया जाये।

अनुच्छेद 371 घ में उपबंधित किया गया है कि राज्यपाल त्यूएनसांग जिले के लिये पैतीस (35) सदस्यीय एक प्रादेशिक परिषद की स्थापना करेगा एवं अपने विवेक से निम्नलिखित बातों का उपबंध करने के लिये नियम बनायेगा –

1.प्रादेशिक परिषद की संरचना और वह रीति जिसमें प्रादेशिक परिषद के सदस्य चुने जायेगें, परन्तु त्यूएनसांग जिले का उपायुक्त प्रादेशिक परिषद का पदेन अध्यक्ष होगा और प्रादेशिक परिषद का उपाध्यक्ष उसके सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित किया जायेगा;

2.प्रादेशिक परिषद के सदस्य चुने जाने के लिये और सदस्य होने के लिये अर्हताएं;

3.प्रादेशिक परिषद के सदस्यों की पदावधि और उनको दिये जाने वाले वेतन और भत्ते यदि कोई हो;

4.प्रादेशिक परिषद की प्रक्रिया और कार्य संचालन;

5.प्रादेशिक परिषद के अधिकारियों और कर्मचारीवृंद की नियुक्ति और उनकी सेवा की शर्तें; और

6.कोई अन्य विषय जिसके सम्बन्ध में प्रादेशिक परिषद के गठन और उसके उचित कार्यकरण के लिये नियम बनाने आवश्यक है।

अनुच्छेद 371 क का उपखंड (2) के अनुसार संविधान के प्रवृत होने के 10 वर्षों की अवधि तक एवं उसके बाद प्रादेशिक परिषद की सिफारिश पर राज्यपाल अतिरिक्त अवधि तक त्युएनसांग जिले का प्रशासन चलायेगा एवं केन्द्र द्वारा राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मिलने वाले धन में से त्यूएनसांग जिले एवं शेष राज्य के मध्य बंटवारा साम्यापूर्ण ढंग से राज्यपाल करेगा। नागालैंड विधान मंडल बिना प्रादेशिक परिषद एवं तत्पश्चात उसकी सिफारिश के अनुसरण में राज्यपाल द्वारा सारी सूचना के अभाव में कोई अधिनियम त्युएनसांग जिले में नहीं लागू किया जा सकता, परन्तु इस उपखण्ड के अधीन दिया गया कोई निर्देश भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जा सकता है[5]।

अनुच्छेद 371क(2)(घ) राज्यपाल को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह त्युएनसांग जिले की शांति उन्नति और सुशासन के लिये विनियम बना सकेगा एवं इस प्रकार बनाये गये विनियम उस जिले को तत्समय लागू संसद के किसी अधिनियम या किसी अन्य विधि को यदि आवश्यक हो तो भूतलक्षी प्रभाव से निरसन या संशोधन कर सकेगें।

अनुच्छेद 371क(2)(ड़) यह उपबंधित करता है कि त्युएनसांग जिले से सम्बन्धित सभी विषयों के बाबत कार्य करने हेतु, राज्यपाल त्यूएनसांग जिले का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों में से एक सदस्य को मुख्यमंत्री की सलाह पर त्यूएनसांग जिले का कार्य मंत्री नियुक्त करेगा जिसकी पहुँच सीधी राज्यपाल के पास होगी किन्तु वह उनके सम्बन्ध में मुख्यमंत्री को जानकारी देता रहेगा। त्युएनसांग जिले से सम्बन्धित विषयों पर अंतिम विनिश्चय राज्यपाल अपने विवेक से करेगा।

अनुच्देद 371क(2)(छ)– अनुच्छेद 54[6] और अनुच्छेद 55[7] में तथा अनुच्छेद 80[8] के खंड (4) में राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों के या ऐसे प्रत्येक सदस्य के प्रति निर्देशों के

अन्तर्गत इस अनुच्छेद के अधीन स्थापित प्रादेशिक परिषद द्वारा निर्वाचित नागालैंड विधान सभा या सदस्य के प्रति निर्देश होगें;

ज.अनुच्देद 170[9] में –

1.खंड (1) नागालैंड विधान सभा के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रभावी होगा मानो ''साठ'' शब्द के स्थान पर ''छियालीस'' शब्द रख दिया हो;

2.उक्त खण्ड में उस राज्य में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रति निर्देश के अन्तर्गत इस अनुच्छेद के अधीन स्थापित प्रादेशिक परिषद के सदस्यों द्वारा निर्वाचन होगा;

3.खंड (2) और खंड (3) में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रति निर्देश से कोहिमा और मोकोकंचुग जिलों में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रति निर्देश अभिप्रेत होंगे।

3.यदि इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों में से किसी उपबंध को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो राष्ट्रपति आदेश द्वारा कोई ऐसी बात (जिसके अन्तर्गत किसी उच्च अनुच्छेद का कोई अनुकूलन या उपांतरण है) कर सकेगा जो उस कठिनाई को दूर करने के प्रयोजन के लिये उसे आवश्यक प्रतीत होती है ।

परन्तु ऐसा कोई आदेश नागालैंड राज्य के निर्माण की तारीख से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात नही किया जायेगा।

स्पष्टीकरण – इस अनुच्छेद में कोहिमा, मोकोकचुंग और त्युएनसांग जिलों का वही अर्थ है जो नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 में है।

4.7 असम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

अनुच्छेद 371 ख – इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी, राष्ट्रपति असम राज्य के सम्बन्ध में किये गये आदेश द्वारा उस राज्य की विधान सभा की एक समिति के गठन और कृत्यों के लिये, जो समिति छठी अनुसूची[10] के पैरा 20[11] से संलग्न सारणी के भाग 1[12] में विनिर्दिष्ट जनजाति क्षेत्रों से निर्वाचित उस विधान सभा के सदस्यों से और उस विधान सभा के उतने अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगी जितने आदेश में विनिर्दिष्टि किये जायें तथा ऐसी समिति के गठन और उसके उचित कार्यकरण के लिये उस विधान सभा की प्रक्रिया के नियमों में किये जाने वाले उपांतरणों के लिये उपबंध कर सकेगा।

4.8 मणिपुर राज्य के सम्बन्ध में विषेश उपबंध

इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी, राष्ट्रपति मणिपुर राज्य के संबंध में किये गये आदेश द्वारा, उस राज्य की विधान सभा की एक समिति के गठन और कृत्यों के लिये, जो

समिति उस राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों से निर्वाचित उस विधान सभा के सदस्यों से मिलकर बनेगी, राज्य की सरकार के कामकाज के नियमों में और राज्य की विधान सभा की प्रक्रिया के नियमों में किये जाने वाले उपांतरणों के लिये और ऐसी समिति का उचित कार्यकरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से राज्यपाल के किसी विशेष उत्तरदायित्व के लिये उपबंध कर सकेगा।[13]

राज्यपाल स्वयं विवेक द्वारा प्रतिवर्ष या राष्ट्रपति की अपेक्षा पर मणिपुर राज्य के पहाडी क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार केवल उक्त क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में राज्य को निर्देश देने तक ही होगा।[14]

पहाडी क्षेत्रों से ऐसे क्षेत्र ही अभिप्रेत होगे जिन्हें राष्ट्रपति आदेश द्वारा पहाडी क्षेत्र घोषित करेगें न कि किसी और नियम के आधार पर या भौगोलिक स्थिति के आधार पर पहाडी क्षेत्र घोषित किये जायेगे।

4.9 आन्ध्र प्रदेश के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

संविधान के अनुच्छेद 371घ में आन्ध्र प्रदेश राज्य के लिये विषेश उपबंध किये गये है जिनका मूल उददेश्य राज्य के पिछले इलाकों के लिये विशेष उपबंध बनाकर उनका विकास करना है। ताकि राज्य के सभी क्षेत्र समान रुप से विकास कर सके एवं जो स्थान विकास की दृष्टि से पिछडे हों उन्हें उन विकसित इलाकों के समकक्ष लाया जा सके । इस संबंध में राष्ट्रपति लोक नियोजन के विषय में एवं शिक्षा के विषय में उपबंध कर सकेगा इस आशय की पूर्ति हेतु राष्ट्रपति द्वारा आन्ध्र प्रदेश लोक नियोजन (स्थानीय काडर एवं सीधी भर्ती विनियमन) आदेश, 1975 जारी किया गया। जिसके तहत प्रदेश को 6 जोन में बॉटा गया एवं राज्य के अधीन सिविल पदों के किसी वर्ग या वर्गो का राज्य के भिन्न भागों के लिये भिन्न स्थानीय काडरों का गठन किया गया[15] ।

4.9.1 आन्ध्र प्रदेश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना

आन्ध प्रदेश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु अनुच्छेद 371–ड़ में यह उपबंध किया गया है कि संसद विधि द्वारा आन्ध्र प्रदेश राज्य में एक विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये उपबंध कर सकेगी।

संविधान (बत्तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1973 द्वारा अनुच्छेद 371(1) का संशोधन किया गया और अनुच्छेद 371 छ से 371ड अंतःस्थापित किये गये सातवी अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 63[16] का संशोधन किया गया इसका उद्देश्य आंध्र प्रदेश से सम्बन्धित छः बातों को लागू करना था ।

4.10 सिक्किम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

संविधान (छत्तीसवां संषोधन) अधिनियम 1975 द्वारा अनुच्छेद 371च अंतःस्थापित किया गया। सिक्किम को पूर्ण राज्य बनाया गया। सिक्किम 26 अप्रैल 1975 को भारत का 22वॉ राज्य बना। सिक्किम राज्य की विधान सभा कम से कम तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी[17] ।

सिक्किम के राज्यपाल को शांति के लिये और सिक्किम की जनता के विभिन्न अनुभागों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति सुनिश्चित करने के लिये साम्यापूर्ण व्यवस्था करने लिये विशेष उत्तरदायित्व संविधान द्वारा प्रदत्त किया गया है। इस विशेष उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में सिक्किम का राज्यपाल ऐसे निर्देशों के अधीन रहते हुये जो राष्ट्रपति समय समय पर देना ठीक समझे अपने विवेक से कार्य करेगा।[18]

4.11मिजोरम राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

संविधान (तिरपनवां संशोधन) अधिनियम, 1986 द्वारा अनुच्छेद 371 छ जोड़कर मिजोरम को राज्य बनाया गया ।

अनुच्छेद 371 छ – इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी –

क.निम्नलिखित के सम्बन्ध में संसद का कोई अधिनियम मिजोरम राज्य को तब तक लागू नही होगा जब तक मिजोरम राज्य की विधान सभा संकल्प द्वारा ऐसा विनिश्चय नहीं करती है। अर्थात–

1. मिजो लोगों की धार्मिक या सामाजिक प्रथाए;
2. मिजो रुढिजन्य विधि और प्रक्रिया;
3. सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन जहॉ विनिश्चय मिजो रुढिजन्य विधि के अनुसार होने है;
4. भूमि का स्वामित्व और अंतरण;

परन्तु इस खंड की कोई बात संविधान (तिरपनवां संषोधन) अधिनियम, 1986 के प्रारम्भ से ठीक पहले मिजोरम संघ राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त किसी केन्द्रीय अधिनियम को लागू नही होगी;

ख. मिजोरम राज्य की विधान सभा कम से कम चालीस सदस्यों से मिलकर बनेगी ।

मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के बारे में उपबंध संविधान की छठी अनुसूची में किये गये है।

4.12 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के बारे में उपबंध[19]

ये जनजाति क्षेत्र स्वशासी जिले के रुप में प्रशासित किये जायेगे। ये स्वशासी जिले राज्य सरकार के कार्यपालक प्राधिकार के बाहर नही हैं किन्तु कुछ विधायी और न्यायिक कृत्यों के

प्रयोग के लिये जिला परिषद और प्रादेशिक परिषदों के सृजन का उपबन्ध किया गया है। ये परिषदें प्राथमिक रुप से पृथक निकाय हैं और उन्हें कुछ विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में विधान बनाने की शक्ति है।[20] जैसे आरक्षित वन से भिन्न वन का प्रबन्ध, सम्पत्ति की विरासत, विवाह और सामाजिक रीति रिवाज। इन परिषदों को भू–राजस्व के निर्धारण और संग्रहण की तथा कुछ विनिर्दिष्ट कर अधिरोपित करने की शक्ति भी है। इन परिषदों द्वारा बनाई गयी विधि तब तक निष्प्रभावी होगी जब तक राज्यपाल उसे अनुमति प्रदान न करें। राज्यपाल इन परिषदों को कुछ वादों या अपराधों के विचारण की शक्ति भी प्रदान कर सकता है।[21–22]

इन परिषदों को न्यायिक, सिविल और दाण्डिक शक्तियां होगी और वे उच्च न्यायालय की अधिकारिता के इस प्रकार अधीन होंगे जो राज्यपाल समय–समय पर विनिर्दिष्ट करे।[23]

4.13 अरुणाचल प्रदेश राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

अनुच्छेद 371ज उपबंधित करता है, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

क.अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल का अरुणाचल प्रदेश राज्य में विधि और व्यवस्था के संम्बन्ध में विशेष उत्तरदायित्व रहेगा और राज्यपाल उस सम्बन्ध में अपने कृत्यों का निर्वहन करने में की जाने वाली कार्यवाही के बारे में अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग मंत्री परिषद से परामर्श करने के पश्चात करेगा;

परन्तु यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई मामला ऐसा मामला है या नहीं जिसके सम्बन्ध में राज्यपाल से इस खंड के अधीन अपेक्षा की गयी है कि वह अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करके कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेक से किया गया विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गयी किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जायेगी कि उसे अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करके कार्य करना चाहिये था या नहीं।

परन्तु यह और कि यदि राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति को यह समाधान हो आता है कि अब यह आवश्यक नही है कि अरुणाचल प्रदेश राज्य में विधि और व्यवस्था के सम्बन्ध में राज्यपाल का विशेष उत्तरदायित्व रहे तो वह, आदेश द्वारा, निर्देश दे सकेगा कि राज्यपाल का ऐसा उत्तरदायित्व उस तारीख से नहीं रहेगा जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाये;

ख.अरूणाचल प्रदेश की विधानसभा कम से कम तीस सदस्यों से कमलकर बनेगी।[24]

4.14गोवा राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबंध

इस संविधान (छप्पनवां संशोधन) अधिनियम, 1987 द्वारा अनुच्छेद 371 झ अंतस्थापित किया गया। गोवा दमन और दीव संघ राज्यक्षेत्र का विभाजन करके गोवा को पूर्ण राज्य बनाकर वहॉ विधान सभा की व्यवस्था की गयी । दमण और दीव को संघ राज्यक्षेत्र बनाया गया।

अनुच्छेद 371झ के अनुसार इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी गोवा राज्य की विधान सभा कम से कम तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी।

4.15 अनुसूचित एवं जनजाति क्षेत्र

संसद द्वारा बनाये गये विधान के अधीन राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गयी है कि वह किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दे। (पांचवी अनुसूची पैरा 6, 7)। इस शक्ति के अनुकरण में राष्ट्रपति ने अनुसूचित क्षेत्र आदेश 1950 निकाला है। ये क्षेत्र असम, मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम से भिन्न राज्यों में 'अनुसूचित जनजाति' के रुप में विनिर्दिष्ट जनजातियों के निवास क्षेत्र है। जो वर्तमान में आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, झारखण्ड, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उडीसा, उत्तराखंड और राजस्थान में स्थित हैं। इन क्षेत्रों के पिछड़ेपन के आधार पर इनके प्रशासन हेतु विशेष उपबंध किये गये है। जो कि संविधान की पांचवी अनुसूची में उपबंधित है। असम, मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों के बारे में पृथक व्यवस्था की गयी है।[25] इनके प्रशासन के बारे में संविधान की छठी अनुसूची में उपबंध किये गये हैं।

4.15.1 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के भिन्न राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन एवं नियंत्रण

संविधान की पॉचवी अनुसूची के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य के उक्त क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में निर्देश देने तक होगा।[26]

4.15.2 जनजाति सलाहकार परिषदों का गठन

ऐसे प्रत्येक राज्य में जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं एक जनजाति सलाहकार परिषद[27] होगी जो 20 सदस्यों से मिल कर बनेगी जिनमें 3/4 उस राज्य की विधान सभा में अनुसूचित जनजातियों में प्रतिनिधि होगें। जनजाति सलाहकार परिषद का यह कर्तव्य होगा कि यह उस राज्य की अनुसूचित जनजाति के कल्याण और उन्नति से सम्बन्धित ऐसे विषयों पर सलाह दे जो राज्यपाल द्वारा उन्हें निर्दिष्ट किये जायें।

ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बन्धित राज्यपाल को विशेष प्राधिकार प्रदान किये गये हैं जिनमें संसद या उस राज्य की विधानमण्डल द्वारा बनाये गये अधिनियम उस क्षेत्र में लागू करने या नही करने या उन्हें विशिष्ट अपवादों एवं उपांतरणों के साथ लागू करने का अधिकार भी प्राप्त है। भूमि के आवंटन या अंतरण सम्बन्धी विनियमन का अधिकार भी राज्यपाल को दिया गया है। राज्यपाल द्वारा बनाये गये इन सभी विनियमों को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करनी होगी।[28]

4.15.3 संविधान द्वारा बनाये गये अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातियों के प्रशासन से सम्बन्धित उपबंधो का परिवर्तन

ऐसा कोई भी परिवर्तन संसद सामान्य विधान द्वारा कर सकेगी इसके लिये संविधान संशोधन से सम्बन्धित औपचारिकताओं को पूरा करना आवश्यक नहीं है।[29]

4.15.4 अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने हेतु आयोग की स्थापना

राष्ट्रपति ऐसे आयोग को कभी भी नियुक्त कर सकता है, परन्तु संविधान प्रारम्भ होने से दस वर्ष की समाप्ति पर ऐसे आयोग की नियुक्ति आबद्धकर है।[30] 1960 में तदानुसार एक आयोग की नियुक्ति श्रीयू0एन0ढेबर की अध्यक्षता में की गयी थी। जिसने अपना प्रतिवेदन 1961 के अंत में प्रस्तुत किया।[31]

4.15.5 असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के शासन के बारे में उपबंध

असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्र स्वाशासी जिले के रुप में प्रशासित किये जायेगे। प्रत्येक स्वशासी जिले के लिये एक जिला परिषद और एक प्रादेशिक परिषद होगी। इन परिषदों को राज्यपाल की अनुमति के पश्चात विनिर्दिष्ट क्षेत्रों के लिये विधान बनाने एवं लागू करने की शक्ति प्राप्त है। राज्यपाल इन परिषदों को कुछ वादों या अपराधों के विचारण की भी शक्ति प्रदान कर सकते है। प्रादेशिक परिषद अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के बीच वादों के विचारण के लिये ग्राम परिषदों या न्यायालयों की स्थापना कर सकती हैं। उच्च न्यायालय की इन वादों और मामलों में ऐसी अधिकारिता होगी जो राज्यपाल समय–समय पर आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें।

जिला परिषद और प्रादेशिक परिषदों द्वारा प्राप्त सभी सभी धनराशियों की जमा के लिये जिला विधि एवं प्रादेशिक विधि गठित की जायेगी जिनके प्रबन्ध हेतु राज्यपाल नियम निर्धारित करेगें। यदि राज्यपाल को किसी समय यह समाधान हो जाता है कि जिला परिषद या प्रादेशिक परिषद के किसी कार्य या संकल्प से भारत की सुरक्षा को खतरा आसन्न है या वह लोक व्यवस्था के प्रतिकूल है तो वह ऐसे कार्य का संकल्प एवं परिषद का भी निलम्बन करने की शक्ति रखता है। जिसे ऐसे कार्य या संकल्प के निवारण हेतु आवश्यक समझे ।

निर्देश –

1.पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 36वां संस्करण 2003, पृष्ठ 602

2.पूरनलाल लखनपाल बनाम भारत के राष्ट्रपति, ए0 आइ0 आर0 1961, एस0 सी0 1519

3.सम्पत प्रकाश बनाम जम्मू कश्मीर राज्य, ए0 आइ0 आर0 1970, एस0 सी0 1118

4.अनुच्छेद 371

5.अनुच्छेद 371 क (2) (ग)

6.राष्ट्रपति का निर्वाचन

7.राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति

8.राज्यसभा की संरचना

9.विधानसभाओं की संरचना

10.असम, मेघालय और मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध

11.जनजाति क्षेत्र

12.उत्तरी कछार पहाड़ी जिला, कार्बी आंगलांग जिला, बोडोलैण्ड टेरिटोरियल एरिया जिला

13.अनुच्छेद 371 ग (1)

14.अनुच्छेद 371 ग (2)

15.अनुच्छेद 371 घ (क) में उपबंध के अनुसार

16.सूची 1 की प्रविष्टि 63–इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दु वि0 वि0, अलीगढ़ मुस्लिम वि0 वि0 ओर दिल्ली वि0 वि0 नामों से ज्ञात संस्थाएं; अनुच्छेद 371 ड़ के अनुसरण में स्थापित वि0 वि0; संसद द्वारा विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था

17.अनुच्छेद 371 च

18.अनुच्छेद 371 च (छ)

19.छठी अनुसूची

20.पैरा 3, छठी अनुसूची

21.पैरा 4, छठी अनुसूची

22.वसु आचार्य डा0 दुर्गा दास, भारत का संविधान– एक परिचय, पृष्ठ 294

23. Ibid

24.संविधान (55वां संशोधन) अधिनियम, 1986 द्वारा अनुच्छेद 371 ज अंतःस्थापित किया गया एवं अरूणाचल प्रदेरूा को राज्य बनाया गया।

25.अनुच्छेद 244 (2)

26.अनुसूची 5 पैरा 3

27.अनुसूची 5 पैरा 4

28.अनुसूची 5 पैरा 5

29.अनुसूची 5 पैरा 7 (2)

30.अनुच्छेद 339 (1)

31.वसु आचार्य डा0 दुर्गा दास, भारत का संविधान– एक परिचय, पृष्ठ 294

<u>अभ्यास प्रश्न–</u>

1.निम्न में से कौन सा अनुच्छेद जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर लागू नही होता है।

क–अनुच्छेद 370

ख–अनुच्छेद 360

ग–अनुच्देद 356

घ–अनुच्छेद 352

2.निम्न में किस राज्य के सबंध में संविधान के तहत विशेष उपबंध किया गया है –

क–मणिपुर राज्य

ख–गोवा राज्य

ग–महाराष्ट्र राज्य

घ– उपरोक्त सभी

3.संविधान की छठी अनुसूची के अन्तर्गत निम्न में से किस राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन से सम्बन्धित उपबंध किये गये है –

क–सिक्किम

ख–नागालैण्ड

ग–असम

घ–अरुणाचल

4संविधान के किस संशोधन अधिनियम द्वारा मिजोरम को राज्य का दर्जा प्रदान किया गया

क–इक्यावनवॉ संविधान संशोधन अधिनियम

ख–बावनवॉ संविधान संशोधन अधिनियम

ग–तिरपनवा संविधान संशोधन अधिनियम

घ–चौवनवां संविधान संशोधन अधिनियम

रिक्त स्थान

5.ऐसे प्रत्येक राज्य जिसमें अनुसूचित क्षेत्र है में एक...............का गठन किया जायेगा।

6.जम्मू एवं कश्मीर राज्य को अनुच्छेद................ के तहत विशेष दर्जा प्रदान किया गया है।

सत्य एवं असत्य कथन–

7.असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्र स्वशासी जिले के रुप में प्रशासित किये जायेगें, **सत्य/असत्य ।**

8.संविधान द्वारा विशेष उपबंधित किये गये राज्यों के राज्यपाल को विशेष दायित्व एवं अधिकार प्रदान किये गये है। **सत्य/असत्य।**

9.असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम से भिन्न राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन के बारे में संविधान की पॉचवी अनुसूची के अन्तर्गत प्रावधान किये गये है। **सत्य/असत्य।**

10.संविधान के उपबंधो के अनुसार अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। **सत्य/असत्य।**

4.16 सांराश

भारत देश की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं को ध्यान में रखते हुये संविधान निर्माताओं ने संविधान के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातियों के उत्थान एवं उनकी संस्कृति को बचाये रखने के उद्देश्य से, विशेष प्रावधान किये है। जिन राज्यों के सम्बन्ध में विशेष उपबंध किये गये है। वे है–

1.अनुच्छेद 371(2), के अन्तर्गत महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य के कुछ क्षेत्र।

2.अनुच्छेद 371–ए के अन्तर्गत नागालैण्ड राज्य के विषय में

3.अनुच्छेद 371–बी के अन्तर्गत आसाम राज्य के जनजातिय क्षेत्रों के विषय में

4.अनुच्छेद 371–सी के अन्तर्गत मणिपुर राज्य के विषय में

5.अनुच्देद 371–डी एवं अनुच्छेद 371–ई के अन्तर्गत आन्ध्रप्रदेश राज्य के पिछडे क्षेत्रों के विषय में।

6.अनुच्छेद 371–एफ के अन्तर्गत सिक्किम राज्य के विषय में

7अनुच्छेद 371–जी के अन्तर्गत मिजोरम राज्य के विषय में।

8.अनुच्छेद 371–एच के अन्तर्गत अरुणाचल प्रदेश के विषय में।

9.अनुच्छेद 371–आई के अन्तर्गत गोवा राज्य के विषय में।

उपरोक्त राज्यों के राज्यपालों को विशेष उपबंधो को क्रियान्वयन हेतु विशेष दायित्व एवं अधिकार उपरोक्त अनुच्छेदों के माध्यम से प्रदान किये गये। इसके अतिरिक्त अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातियों के प्रशासन हेतु संविधान की पांचवी एवं छठी अनुसूची में प्रावधान किये गये हैं।

असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातियों के प्रशासन के विषय में संविधान की छठी अनुसूची के अन्तर्गत प्रावधान किये गये हैं।

संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू एवं कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संविधान संशोधनों के माध्यम से समय–समय पर आवश्यकतानुसार उक्त क्षेत्रों के प्रशासन एवं विकास हेतु प्रावधान किये जाते रहे हैं।

संविधान (बत्तीसवां संशोधन) अधिनियम 1973 द्वारा अनुच्छेद 371(1) में संशोधन कर आन्ध्र प्रदेश से सम्बन्धित कुछ प्रावधान किये गये।

संविधान (तिरपनवां संषोधन) अधिनियम 1986 द्वारा अनुच्देद 371–ई जोडकर मिजोरम राज्य के संबध में प्रावधान बनाये गये। संविधान (पचपनवां संषोधन) अधिनियम 1986 द्वारा अनुच्छेद 371–ज अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश के विषय में प्रावधान किये गये है।

4.17 शब्दावली –

अनुंसूचित क्षेत्र – वे क्षेत्र जिन्हें भारत का राष्ट्रपति आदेश द्वारा अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दें।

अनुसूचित जनजाति –अनुच्छेद 366(25) के अनुसार अनुसूचित जनजाति उन समुदायों को कहते है जिन्हें अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत अनुसूचित किया गया है। अनुच्देद 342 के अनुसार अनुसूचित समुदाय है या उनका हिस्सा या वर्ग है जिन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा जन अधिसूचना द्वारा ऐसा घोषित किया गया है ।

4.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. (ख) 2. (ड) 3(ग) 4(ग) 5. जनजाति सलाहकार परिषद 6. 370

7. सत्य 8. सत्य 9. सत्य 10 सत्य

4.19 संदर्भ ग्रन्थ

1.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

2.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी ।

3.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

4.20 सहायक / उपयोगी सामग्री

1.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

2.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

4.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अनुच्छेद 370 के अन्तर्गत जम्मू कश्मीर राज्य को दिये गये विशेष दर्जे का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये ।

2.संविधान की पॉचवी एवं छठी अनुसूची के तहत किन राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातियों के प्रशासन सम्बन्धित प्रावधान किये गये है।

3.भारतीय संविधान के अन्तर्गत नागालैण्ड राज्य के सम्बन्ध में कौन कौन से विशेष उपबंध किये गये है? विवरण दीजिये।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–2. ”राज्य” उदारीकरण

इकाई–1. समता का अधिकारः निजीकरण एवं सकारात्मक कार्यों पर इसका प्रभाव

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 समता का अधिकार

1.4 विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण का अधिकार

1.5 युक्तियुक्त वर्गीकरण की कसौटियॉः वर्ग विधान का प्रतिषेध

1.6 समता के सिद्धान्त का उपयोजन

1.6.1 वर्ग के रूप में, निकाय, और एकल व्यक्ति

1.6.2 भौगोलिक और ऐतिहासिक बातें

1.6.3 समता का अधिकार और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1946

1.6.4 कर विधियों के अधीन वर्गीकरण

1.6.5 भेद के बिना वर्गीकरण

1.6.6 विशेष न्यायालयों की स्थापना

1.6.7 भोपाल गैस विभषिका का मामला

1.6.8 प्रशासनिक विवेक

1.6.9 अधीनस्थ विधायन

1.6.10 प्रतिव्यक्ति फीस

1.6.11 आरक्षण

1.6.12 निर्वाचन संबंधी मामले

1.6.13 प्रशासनिक विभेद

1.7 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध

1.7.1 सुख सुविधाओं के लिए पहुँच– अनुच्छेद 15(2)

1.7.2 स्त्रियों और बालकों के पक्ष में विशेष उपबंध

1.7.3 संरक्षात्मक विभेद (अनुच्छेद 15(4))

1.7.4 उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण

1.8 लोक नियोजन में अवसर की समता–अनुच्छेद 16

1.8.1 समान कार्य के लिए समान वेतन
1.8.2 इन्द्रा साहनी (मण्डल आयोग का मामला) वाद
1.8.2.1 अनु0 16 (4) अनु0 (1) का अपवाद नहीं है
1.8.2.2 अनु0 16 (4) एवं अनु0 15 (4) के अधीन पिछड़े वर्ग समान नहीं
1.8.2.3 अनु0 16 (4) में पिछड़ेपन का आधार जाति है, आर्थिक कसौटी नहीं
1.8.2.4 पिछड़े वर्गों में से 'सम्पन्न' लोगों आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाय
1.8.2.5 आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत से अधिक नहीं
1.8.2.6 आरक्षण हेतु विधि बनाना आवश्यक नहीं
1.8.2.7 प्रोन्नति में आरक्षण की अनुमति नहीं
1.8.3 77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1995
1.8.4 अनुच्छेद 16 (2) – वंशक्रम और निवास स्थान के आधार पर विभेद वर्जित
1.8.5 अनुच्छेद16(3)अनुच्छेद 16(2)का एक अपवाद –निवास के आधार पर विभेद वर्जित नहीं
1.8.6 अनुच्छेद 16 (4) – पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का उपबंध
1.8.7 81वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000
1.8.8 85वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2001
1.8.9 अनुच्छेद 16 (5) – धार्मिक पदों के लिए धर्मसम्बंधी योग्यता
1.9 निजी क्षेत्र में आरक्षण
1.10 अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17)
1.11 उपाधियों का अन्त (अनुच्छेद 18)
1.12 सारांश
1.13 महत्वपूर्ण शब्दावली
1.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.15 संदर्भ ग्रन्थ
1.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14, 15, 16, 17 एवं 18 के अंतर्गत समता के अधिकार प्रदान किए गए हैं –

1.विधि के समक्ष समानता

2.धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध

3.लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता

4.अस्पृश्यता का अंत

5.उपाधियों का अंत

समता न्याय का आधार तत्व है । 'विधि के समक्ष समता' और 'विधियों का समान संरक्षण'–ये दोनों पद राज्य द्वारा समान व्यवहार का संकल्पना की संरचना करते हैं और विभेद का प्रतिषेध करते हैं। प्रधान विचार जो दोना पदों में अन्तर्निहित है वह है समान न्याय का । विश्व के किसी अन्य संवैधानिक दस्तावेज ने समता के अधिकार का उतने प्रकार से निरूपण नहीं किया है जितना कि भारतीय संविधान ने किया है एक विश्व में जहाँ कि सामाजिक, आथिंक और राजनैतिक असमानताएँ भरी पड़ी हैं, समानता के मूल अधिकार का सहारा कभी विभेद को रोकने के लिए किया जाता है, तो कभी विभेद को मान्य ठहराने के लिए । स्वतंत्रता की अमरीकी घोषणा में अन्तर्विष्ट 'समता खण्ड' का विवेचन करते हुए अब्राहम लिंकन ने कहा है–

'उस महत्वपूर्ण लिखित के निर्माताओं का आशय सभी व्यक्तियों को सम्मिलित करने का था परंतु उनका आशय सभी वयक्तियों को सभी अंशों में समान घोषित करने का नहीं था ।'

न्यायमूर्ति के के. मैथ्यू के शब्दों मे श्यह विचार कि मानव अधिकारों के लिए और विशेषकर असमानताओं को समाप्त करने के लिए सरकार के सकारात्मक उत्तरदायित्व हैं, आधुनिक संवैधानिक विकासों के प्रधान बलों में से एक है, यद्यपि कि हम संवैधानिक परिसीमाओं को, सरकार क्या का सकती के ऊपर निर्बन्धन के रूप में नित्य सोचते हैं ।श इस नए दृष्टिकोण में विवक्षित है कि राज्यसमानता के पक्ष में विभेद कर सकती है, उन लोगों को जो असमान हैं समान बनाने के लिए सकारात्मक राज्य कार्यवाही अपेक्षित है । जोर सैद्धान्तिक समानता पर न होकर तथ्य में समानता पर है।

1.2उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–

- विधि के समक्ष समानता

- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध
- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता
- समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार
- अस्पृश्यता का अंत
- उपाधियों का अंत

1.3 समता का अधिकार

समानता का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है, जो संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद14, 15, 16, 17 और 18 द्वारा प्रदान किया गया है। यह अन्य सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का प्रमुख आधार है और निम्नलिखित की गारंटी देता हैः

कानून के समक्ष समानताः

संविधान के अनुच्छेद 14 गारंटी देता है कि सभी नागरिकों को समान रूप से देश के कानून द्वारा संरक्षित किया जाएगा। इसका मतलब यह है कि राज्य जाति, पंथ, रंग, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान के आधार पर भारतीय नागरिकों से कोई भेदभाव नहीं कर सकते हैं।

सामाजिक समानता और सार्वजनिक क्षेत्रों के बराबर का उपयोग का अधिकार

संविधान का अनुच्छेद 15 प्रदान करता है। किसी भी व्यक्ति से जाति, रंग, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। हर व्यक्ति को सार्वजनिक पार्कों, संग्रहालयों, कुओं जैसे सार्वजनिक स्थानों के बराबर का उपयोग का अधिकार है। हालांकि, राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान बना सकता है। किसी भी सामाजिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों की प्रगति के लिएविशेष उपबंध किये जा सकते है।

सार्वजनिक रोजगार के मामलों में समता संविधान के अनुच्छेद 16 देता है कि राज्य रोजगार के मामले में भेदभाव नहीं कर सकते। सभी नागरिक सरकारी नौकरियों के लिए आवेदन कर सकते हैं। वहाँ कुछ अपवाद हैं, कुछ प्रकार की नौकरियों में केवलजो क्षेत्र में निवास कर रहे हैं, उन आवेदकों द्वारा भरा जा सकता है।राज्य पिछड़े वर्ग के सदस्यों, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति, जो राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं एवं समाज के कमजोर वर्गों को आगे लाने के लिए पद आरक्षित कर सकता है। इसके अलावा, किसी भी धार्मिक संस्था के एक कार्यालय के धारक भी विशेष धर्म से हो सकता है। नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2003 के अनुसार, यह अधिकार भारत के प्रवासी नागरिकों को प्राप्त नहीं होगा।

<u>अस्पृश्यता का उन्मूलनः</u>

संविधान के अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता की प्रथा समाप्त करता है। अस्पृश्यता का अभ्यास एक अपराध है और विधि द्वारा दंडनीय है। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 (नागरिक अधिकार अधिनियम 1976 नाम से पुनःस्थापित) में, पूजा की जगह में प्रवेश करने या एक कुऑं, तालाब आदि से पानी लेने से एक व्यक्ति को रोकने के पर दंड का प्रावधान किया गया है।

उपाधियों का उन्मूलनः संविधान का अनुच्छेद 18 किसी भी खिताब प्रदान करने से राज्य को प्रतिबंधित करता है। भारत के नागरिक एक विदेशी राज्य से उपाधि स्वीकार नहीं कर सकते। ब्रिटिश सरकार ने राय बहादुर और खान बहादुर के रूप में एक अभिजात्य वर्ग बनाया था। अनुच्छेद 18 के तहत इन्हें समाप्त कर दिया गया हालांकि, सैन्य और शैक्षिक उपाधियां नागरिकों को प्रदत्त की जा सकती है। भारत रत्न और पद्म विभूषण पुरस्कार एक उपाधि के रूप में प्राप्तकर्ता द्वारा उपयोग नहीं किया जा सकता हैं ।

अनुच्छेद 14 केअधिकार भारत के नागरिकों व गैर नागरिकों दोनों को प्राप्त है। इस प्रकार भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह भारत का नागरिक हो या नहीं समान विधि के अधीन होगा और उसे विधि का समान संरक्षण प्रदान किया जायेगा। इसके विपरीत अनु0 15, 16, 17 एवं 18 के उपबंधों का लाभ केवल नागरिकों को प्राप्त है। साथ ही इसके अंतर्गत विधिक व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। चिरंजीत लाल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनु0 14 में प्रयुक्त 'व्यक्ति' शब्द के अंतर्गत विधिक व्यक्ति भी सम्मिलित है। अतः एक निगम जो कि 'विधिक व्यक्ति' है को भी विधि के समक्ष समता का अधिकार उपलब्ध है।

1.4 विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण का अधिकार :–

अनु0 14 कहता है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा। ये अनुच्छेद दो वाक्यांश समेटे है जिनमे एक है– 'विधि के समक्ष समता' और दूसरा है 'विधियों का समान संरक्षण'।

'विधि के समक्ष समता' का तात्पर्य व्यक्तियों के बीच पूर्ण समानता से नहीं है क्योंकि ऐसा संभव भी नहीं है । इसका तात्पर्य केवल इतना है कि जन्म ,मूलवंश ,आदि के आधार पर व्यक्तियों के बीच विशेषाधिकारों को प्रदान करने और कर्तव्यों को अधिरोपण करने में कोई विभेद नहीं किया जायेगा, तथा प्रत्येक व्यक्ति देश की साधारण विधि के अधीन होगा।

'विधियों का समान संरक्षण' का अर्थ है कि समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों को समान विधियों के अधीन रखना तथा समान रूप से लागू करना चाहे वे विशेषाधिकार हो या दायित्व हों । इस पदावली का निर्देश है कि समान परिस्थति वाले व्यक्तियों में कोई विभेद नहीं करना चाहिए

और उन पर एक ही विधि लागू करनी चाहिए अर्थात यदि विधान की विषय वस्तु समान है तो विधि भी एक ही तरह की होनी चाहिए। इस प्रकार नियम यह है कि सामानों के साथ समान विधि लागू करना चाहिए न कि असमानों के साथ समान विधि लागू करना चाहिए।

विधि के समक्ष समता की गारंटी उसी के समान है जिसे इंग्लैंड में विधि का शासन कहते हैं। जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसकी अवस्था या पद जो कुछ भी हो देश की सामान्य विधियों के अधीन है और साधारण न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर है। राष्ट्रपति से लेकर देश का निर्धन से निर्धन व्यक्ति समान विधि के अधीन है और बिना औचित्य के किसी कृत्य के लिए समान रूप से उत्तरदायी है । इस सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों और साधारण नागरिकों में विभेद नहीं किया जाता है।

रघुवीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य[2]में कहा गया है कि विधि शासन राज्य से यह अपेक्षा करता है कि वह पुलिस द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध किये गए अमानवीय व्यवहार से संरक्षण प्रदान करने के लिए हर संभव उपायों को अपनाये तथा ऐसे लोगों को दंड भी दे। यदि राज्य ऐसा नहीं करता है तो विधि शासन पर से लोगो का विश्वास समाप्त हो जायेगा।

अनु0 14 में जिस विधि शासन की संकल्पना की गयी है वह संविधान का आधारभूत ढांचा है और इसे अनु0 368 के अधीन संशोधन करके नष्ट नहीं किया जा सकता है।

संविधान में इसके कुछ अपवाद भी प्रस्तुत किये गए हैं। जैसे कि विदेशी कूटनीतिज्ञों को न्यायालयों की अधिकारिता से विमुक्ति प्राप्त है। इसी प्रकार अनु0 361 के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति ,राज्यों के राज्यपालों ,लोक अधिकारियों, न्यायाधीशों आदि विशिष्ट व्यक्तियों कोऐसी विमुक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। ऐसा उनकी विशेष स्थिति विशेष पद और उन पर देश की विशेष जिम्मेदारियों को देखते हुए किया गया है ताकि देश के प्रति वे अपनी जिम्मेदारियों का भली भांति निर्वहन कर सकें।

इन उंमुक्तियों से (1) राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाहिंयां (2) भारत सरकार या राज्य सरकार के विरुद्ध वाद या समुचित कार्यवाहियाँ वजित नहीं होंगी।

श्री श्रीनिवास थिएटर बनाम तमिलनाडु राज्य के माामले में न्यायमूर्ति रेड्डी ने कहा है–शविधि के समक्ष समता एक सक्रिय संकल्पना है। जिसके कई पहलू हैं । एक पहलू अधिकतम सामान्यतः स्वीकृत है कि विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति का कोई वर्ग नहीं होगाऔर कोई विधि के ऊपर नहीं होगा । एक पहलू जो यहाँ तुरंत सुसंगत है उददेशिका और संविधान के भाग प्ट में परिकल्पित अधिक समान समाज की स्थापना विधि तंत्र के माध्यम से करना राज्य पर बाध्यता है। विधि के समक्ष समता के बारे में विशेष रूप से समान समाज में ही कहा जा सकता है अर्थात ऐसे समाज में जिसे संविधान के अनुच्छेद 38 में अनुध्यात किया गया है। प्राकृतिक विधि का यह सिद्धांत कि 'सभी मनुष्य समान सृजित किए गए हैं' संभवतः केवल प्रकृति में ही सत्य है । अब यह माना जाने लगा है क्योंकि सामाजिकपरिस्थितियाँ एवं तथ्य

सार्वभौम रूप से एक समान नहीं है । कोयला की खान में कार्य करने वाला कर्मकार उन्हीं दशाओं में कार्य नहीं करता है ....और कोयले की खान का मालिक वातानुकूलित कमरे में कार्य करता है । इस प्रकार यदि समानता को वास्तविक बनाना है तो असमानोंको समान बनाना है । समाज में ऐसी समानता विधान मंडल द्वारा विधि बनाने के माध्यम से लाई जा सकती है। राज्य से सकारात्मक कार्यवाई की अपेक्षा करती है । राज्य द्वारा ऐसी सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative action) युक्तियुक्त वर्गीकरण के आधार पर संरक्षात्मक विंभेद (protective discrimination) सुनिश्चित करेगी । अतः 'विधियों का समान संरक्षण' का सिद्धान्त विधि सम्मत प्रयोजनो के लिए व्यक्तियों का वर्गीकरण करने की शक्ति से वंचिँत नहीं करता है।

1.5 युक्तियुक्त वर्गीकरण की कसौटियॉः वर्ग विधान का प्रतिषेध

कोई विधि सभी व्यक्तियों पर लागू नहीं की जा सकती है जो कि परिस्थतियों से भिन्न स्थिति में हैं। ऐसे व्यक्तियों के बारे में विधि वनाने के लिए युक्तियुक्त वर्गीकरणकरना नितान्त आवश्यक होता है । अतएव यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 14 वर्ग विधान का प्रतिषेध करता है, विधान के प्रयोजन के लिए युक्तियुक्त वर्गीकरणका नहीं । युक्तियुक्त वर्गीकरण किसी वास्तविक और तात्विक विभेद पर आधारित होता है जिसका विधि द्वारा अभिवृद्धि किए जाने वाले उद्देश्य से युक्तियुक्त संबंध रहता है। किंतु इसे भी मनमाना. कृत्रिम और कुटिल नहीं होना चाहिए। कोई वर्गीकरण वैधता की परख में ठीक उतरे इसके लिए दो शर्तें पूरी होनीचाहिए–

(1) वर्गीकरण ऐसे बोधगम्य अन्तरक पर आधारित होना चाहिए जिससे वर्ग में सम्मिलित किए जाने वाला को दूसरे से जो कि छोड़दिए गए हैं, पहचाना जा सके; और

(2) विभेद के आधार का प्रश्नगत अधिनियम के उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध होना चाहिए।

विधान मंडल द्वारा पारित अधिनियम के अधीन कार्य करते हुए प्राशासनिक निकाय भी वर्गीकरण करने की शक्ति का प्रयाग कर सकते हैं । चरनजीत लाल चौधरी बनाम भारत संघ[3], बम्बई राज्य बनाम एफ. एन. बलसारा[4] और डालमिया के मामले में उच्चतम न्यायात्नय ने अनुच्छेद 14 के अर्थ और विस्तार पर पूर्णरूप से विचार किया है। इस बारे में उच्चतम न्यायालय ने विशेष न्यायालय विधेयक, निर्देश के मामले में निम्नलिखित सिद्धान्तों को फिर से प्रतिपादित किया है

(1) विधियों को सभी व्यक्तियों पर जो कि समान परिस्थितियों में हैं, एक समान प्रवर्तित होना चाहिए ।

(2) राज्य को व्यक्तियों के विभिन्न समूहों या वर्गो पर अपनी नीतियों के विशिष्ट उद्दैश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रवर्तित होने वाली विधियों को बनाने की शक्ति होनी चाहिए ।

(3) अनुच्छेद 14 में अन्तर्निहित सिद्धान्त से आभिप्रेत है कि सभी व्यक्ति जो एक सी स्थिति में हैं उनके साथ, प्रदान किए गए विशेषाधिकारों और अधिरोपित किए गए दायित्वों में एक सा व्यवहार किया जाएगा ।

(4) वर्गीकरण से अभिप्रेत है, वर्गो में प्रथक्करण। जिनमें प्रायिक रूप से सामान्यगुण और विशिष्टताएं सम्मिलित होती हैं और क्रमबद्ध संबंध होता है । यह युक्तिसंगत आधार की अभिधारणा करता है और इसका अर्थ कतिपय व्यक्तियों और वर्गों कामनमानेढंग से समूहीकरण करना नहीं है।

(5) वर्गीकरण को युक्तिसंगत होना चाहिए। अर्थात् (क) वर्गीकरण को बोधगम्य अन्तरक पर आधारित होना चाहिए जिससे वर्ग में सम्मिलित किए जाने वालो को दूसरों से पहचाना जा सके (ख) विभेद का अधिनियम से प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध होना चाहिए ।

(6) यदि कानून सपष्ट और निश्चित नीति अन्तर्विष्ट करता है और इसके कार्यान्वित करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित करता है, तो कार्यपालिका का कर्तव्य है कि विषय–वस्तु को नीति के आधार पर वर्गीकृत करे । लेकिन यदि कार्यपालिका व्यक्तियों का या वस्तुओं का ऐसा वर्गीकरण करती है जिसका कि विधायिका के उद्देश्य से कोई संबंध नहीं है तो कार्यपालिका के कार्य को इस रूप में रद्द कर दिया जाएगा कि वह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है । फिर भी यदि कानून कोई स्पष्ट नीति या उद्देश्य नहीं प्रकट करता है और अन्य को स्वेच्छापूर्वक चयन करने की शक्ति प्रदान करता है तो कानून को प्रत्यक्षतः मनमाना अभिनिर्धारित किया जाएगा ।

(7) सामान्यतः वर्गीकरण का विचार ही असमानता का विचार है । अतएव केवल असमानता की बात ही किसी प्रकार से संवैधानिकता के विषय का अवधारण नहीं करतीं है ।

(8) प्रक्रिया के नियम जिसे विधि द्वारा अधिकथित किया गया है उतने ही अनुच्छेद 14 की परिधि के अंदर हैं जितने कि किसी अधिष्टायी विधि के नियम ।

न्यायाधीश भवगती ने उपयुक्त सिद्धांत को वियरर बांड के मामले में स्वीकार किया है। इस परिप्रेक्ष्य में यहबात महत्वपूर्णहै कि यहअवधारित करने में कि क्या वर्गीकरण युक्तियुक्त है या नहीं, न्यायालय विधायी विवेकबुद्धि पर न्यायिक विवेकबुद्धि प्रतिस्थापित करता है। अतःइस विषय में वह बहुत सतर्कता बरतते हुएवह इस उपधारणा से कार्यवाही प्रारंभ करता है कि वर्गीकरण युक्तियुक्त है। मेनका गॉधी बनाम भाारत संघ[5] के मामले में न्यायमूर्ति भगवती के अनुसार–'समता बहुत पहलुओं और बहु आयामों वाली एक गतिशील संकल्पना है और इसे पारंपरिक तथा सैद्धान्तिक सीमाओं में बन्द नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 14राज्य कार्यवाही में मनमानापन का विखण्डन करता है और व्यवहार में समता एवं औचित्यको

सुनिश्चित करता है । युक्तियुक्तता का सिद्वान्त जो विधिक रूप और दार्शनिक रूप से समता या अमनमानापन का मर्मभूत तत्व है, व्याप्त है ।'

मिठ्ठू बनाम पंजाब राज्य[6] का मामला नए दृष्टिकोण के दृष्टांत के रूप में लिया जा सकता है भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303 में उपबन्ध किया गया है कि यदिआजन्म कारावास का कैदी हत्या करता है तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाएगा । उच्चतम न्यायालय ने धारा 303 को असंवैधानिक घोषित कर दिया क्योंकि यह आजन्म सिद्धदोष द्वारा की गई हत्या के लिए आज्ञापक दण्ड का निर्धारण करता है। विधि के ऐसे उपबंध को जो न्यायालय को प्राण और दण्ड के मामले में अपना बुद्धिपूर्ण और हितकारी विवेक का प्रयोग, उन परिस्थितियों की छानबीन किए बिना जिनमें अपराध किया गया था, करने से वंचित करता है, सख्त अन्यायपूर्ण ओर अनुचित होने के सिवाय और कुछ नहीं समझा जा सकता है। इस प्रकार ऐसे उपबंध को जो मृत्यु दण्ड न्यायिक मस्तिष्क के प्रयोग के बिना विहित करता है ऋजु, न्यायसंगत और युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है ।

इण्डियन काउंसिल आफ लीगल एड एण्ड एडवाइस बनाम बार काउंसिल आफइण्डिया[7] के महत्वपूर्ण मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मनमानापन अनुच्छेद 14के युक्तियुक्तता के सिद्धान्त का अतिक्रमण है । इसमें तथ्य इस प्रकार थे कि भारत की बार काउंसिल ने चार काउंसिल के नियमों में नया नियम 9जोड़करबार काउंसिल में उन व्यक्तियों के प्रवेश का वर्जित कर दिया जो 45 वर्ष की आयु एडवाकेट के रूप में नामांकन के आवेदन की तारीख पर पूरा कर चुके थे। इसकी वैधता पर आक्षेंप किए जाने पर उच्चतम न्यायालय ने इसको विभेदकारी, अयुक्तियुक्त और संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिकामक घोषित कर दिया ।एल. कालरा बनाम प्रोजेक्ट एण्ड इक्विमेंण्ट कारपोरेशन[8]में न्यायालय के अनुसार मनमानापन या अयुक्तियुक्त कार्य स्वयमेव विभेदकारीहै । समता के नए विकास में सकारात्मक समता या सकारात्मक कार्यवाई पर बड़ा जोर है ।

अनेक निर्णयों में न्यायालय ने जोर देकर कहा है कि समता सकारात्मक अधिकार है और विद्यमान असमानताओं को कम करने के लिए राज्य सेअपेक्षा करती है। जैसा कि संविधान में परिकल्पित किया गया है ।

1.6 समता के सिद्धान्त का उपयोजन

1.6.1 वर्ग के रूप में, निकाय, और एकल व्यक्ति

यह सर्वमान्य तथ्य है कि आधुनिक राज्य कल्याणकारी राज्य हो गए हैं । अतएवयदि कोई विधि राज्य को शक्ति प्रदान करते हुए विशेष वर्ग में रखती है ताकि वहकल्याणकारी राज्य के विशेष कृत्यों का सम्पादन कर सके तो यह माना जाएगा कि ऐसीविधि अनुच्छेद 14 के उपबंधों का उल्लंघन नहीं करती है । अतः राज्य के पक्ष में एकाधिकार का सृजन अनुच्छेद 14 के अधीन अमान्य नहीं है । राज्य की अनुरूपता के आधार पर स्थानीय निकाय जेसे कि नगरपालिकाओं को वर्ग माना गया है । राज्य निगम के पक्ष में एकाधिकार का सृजन अनुच्छेद 14 का अतिलंघन नहीं है। इसी तरह एक विशेष विधि एकल मन्दिर, वक्फ, विन्यास एवं संस्था के निमित्त पारित की जा सकती है । परन्तु किसी व्यक्ति को शेष व्यक्तियों से अलग करने वाली परिस्थितियों का विद्‌यमान होना आवश्यक है। अमीरून्निसा बेगम बनाम मेहबूब बेगम[9] के मामले में हैदराबाद विधानमंडल ने मृतक जागीरदार के संबंधियों में दीर्घ काल से चल रही मुकदमेबाजी को समाप्त करने के लिए विधि पारित किया जिसमें कुछ का दावा स्वीकार कर लिया गया था और शेष के दावों को खारिज कर दिया गया था । अधिनियम को अवैध अभिनिर्धरित किया गया क्याकि इसके द्वारा कुछ को न्यायालय में अपना दावा प्रवर्तित करने से रोक दिया था ।

1.6.2 भौगोलिक और ऐतिहासिक बातें

भौगोलिक बातें विधान के प्रयोजन के लिए विधिमान्य आधार हो सकती हैं । यह आवश्यक नहीं कि विधि सम्पूर्ण राज्य में समान रूप से लागू हो । कृष्ण सिहं बनाम राजस्थान राज्य[10] के मामले में मारवार भू–राजस्व अधिनियम की वैधता पर आक्षेप इस आधार पर किया गया था कि यह मारवार क्षेत्र में लागू हाता है लेकिन राजस्थान के ही अन्य क्षेत्रों में लागू नही होता है उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम को वैध करार दिया क्योंकि मारवार क्षेत्र में विशिष्ट परिस्थितियां व्याप्त थीं। जिसके कारण अधिनियम को केवल उसी क्षेत्र में लागू करने के लिए पारित किया था ।

वर्गीकरण के लिए आधार एतिहासिक भी हो सकता है । राज्य पुर्नगठन अधिनियम, 1956 के पारित हो जाने के पश्चात् एक ही राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न अधिनियमों को कायम रखा गया क्योंकि इस प्रकार का विभेद भौगोलिक वर्गीकरण के आधार पर उत्पन्न हुआ जो एतिहासिक बातों पर आधारित था ।

1.6.3 समता का अधिकार और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1946–

एशियाड वर्कर्स[11] के मामले में यह बात सिद्ध हो गई थी समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1946 भंग किया गया था । न्यायमूर्ति भगवती ने अधिनिर्धारित किया कि समान पारिश्रमिक आधिनियम का भंग किया जाना वास्तव में अनुच्छेद 14 के अधीन विधि के समक्ष समता के अधिकार का भंग किए जाने की शिकायत थी, और इसलिए याचिका ग्राह्म थी ।

1.6.4 कर विधियों के अधीन वर्गीकरण

कर विधियां भी अनुच्छेद 14 की परिधि में आती हैं। इण्डियन एक्सप्रेस न्यूज पेपर बनाम भारत संघ[12] के मामले में समाचार–पत्रों को छोटे, मध्यम और बड़े समाचार पत्रोंकी श्रेणी में वगीकृत किया गया था । यही वर्गीकरण न्यूज प्रिण्ट पर सीमा–शुल्क उद्गृहीतकरने के लिए किया गया था । छोटे समाचार पत्रों को सीमा –शुल्क से मुक्त रखा गया था किंतु बड़े समाचार– पत्रों पर पूरी तरहसे सीमा–शुल्क लगाया था। न्यायालय द्वारा इस वर्गीकरण को अनुच्छेद 14 के प्रतिकूल नहीं माना गया ।

1.6.5 भेद के बिना वर्गीकरण

अनेक विधियों को अवैध अभिनिर्धारित कर दिया गया है क्योंकि उनमें वर्गीकरण बिना किसी भेद के किया गया था । के. कुन्हिकोमन बनाम केरल राज्य[13] के मामले मेंआक्षेपित अधिनियम ने रबड, चाय और कॉफी की रोपस्थली के स्वामियों को कुछ फायदे प्रदान किए लेकिन मिर्चों और सुपारी के रोपस्थली के स्वामियों को छोड़दिया। चूंकि दानों वर्गों की रोपस्थली के स्वामियो मेंकोई युक्तियुक्त भेद नही था इसलिए उच्चतम न्यायालय ने उक्त अधिनियम को अवैध अभिनिर्धारित कर दिया ।

1.6.6 विशेष न्यायालयों की स्थापना

विशेष अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए जाते हैं और उनके लिए विशेष प्रक्रिया भी विहित की जाती है जबकि साधारण अपराधों के लिएसाधारण न्यायालय और साधारण प्रक्रिया की व्यवस्था कार्यरूप में रहती है । विशेषन्यायालय की स्थापना और विशेष प्रक्रिया की वैधता को उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण के रूप में चुनौती दी गई। इस परिप्रेक्ष्य में उच्चतम न्यायालय के निर्णय अलग – अलग हैं ।

पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम अनवर अली[14] के मामले मेंपश्चिम बंगाल विशेष न्यायालय अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से उच्चतम न्यायालय मे अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत अधिनियम की धारा 9(1) पूर्णतः शून्य थी क्योंकि इसने सरकार को अपराधों या मामलों का वर्गीकरण करनेके लिए असीमित और मनमानी शक्ति प्रदान की थी अधिनियम द्वारा मामलों या अपराधों का वर्गीकरण करने के लिए कोई नीति नहीं अधिकथित की थी जो उक्त कार्य करने मेंसरकार के विवेक का मार्गदर्शन करती । अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया था कि शीघ्रतर विचारण' उद्देश्य था परनु न्यायालय के अनुसार उद्देश्य ही स्वयंयुक्तियुक्त वर्गीकरण की कसौटी नहीं होसकता । परन्तु काठी रानिंग रावत बनाम सौराष्ट्र राज्य[15] में उपर्युक्त सम्प्रेक्षण स्वीकार कर लिए गए।

विशेष न्यायालय विधेयक, 1978, निर्देश के मामले[16] में जिसमे लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत किए गए'विशेष न्यायालय विधेयक, 1978' की संवैधानिकता का प्रश्न उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति द्वारा निर्देशित किया गया था । उच्चतम न्यायालय नेअभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 352 एवं 359 के अधीन आपात काल में लोकपदाधिकारियों द्वारा किए गए अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों का गठनअनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करता । आपात काल में किए गए अपराध एक विशेष वर्ग में आते हैं जिनके विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना की जा सकती है ।

1.6.7 भोपाल गैस विभषिका का मामला

भोपाल गैस विभीषका (दावा कार्यवाही) अथिनियम, 1985 के अधीन राज्य नेगैस पीड़ितों के प्रतिकर के बारे में दावा के प्रतिनिधित्व करने का अधिकार अनन्य रूप से ले लिया था । चरन लाल साहू बनाम भारत संघ[17] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने आधिनियम को वैध अभिनिर्धारित करते हुए कहा कि राज्य बहुराष्ट्रीय निगमों के विरुद्व अधिक प्रभावी ढंग से पीड़ितों का प्रतिनिधित्व कर सकता है ।

1.6.8 प्रशासनिक विवेक

कल्याणकारी राज्य को सामाजिक– आर्थिक विधान पारित करने होते हैं । इस क्षेत्र में विभिन्न और असंख्य परिस्थितियां अन्तर्ग्रस्त रहती हैं जिनका पूर्वानुमान कोई विधानमंडल नहीं लगा सकता है । अत अधिनियमों द्वारा प्रशासनिक प्राधिकारियों को व्यापक रूप में विवेकप्रदान किया जाता है। न्यायालयों ने इसबात पर जोर दिया है कि प्रशासनिक विवेक के प्रयोग हेतु विधि द्वारा कतिपय मानक या सिद्धांत अथवा मार्गदर्शन निर्धारित करना चाहिए। क्योंकि अनिर्बंधित

विवेक में मनमानापन के खतरा अंतर्निहित रहता है । उच्चतम न्यायालय ने एयर इडिया बनाम नरगिस मिर्जा[18] के मामले मे इस विवेकाधिकार को अनियमित और मानदण्डों के अभावके कारण अविधिमान्य करार दिया है ।

1.6.9 अधीनस्थ विधायन

अधीनस्थ विधायन समता के सिद्धांत के अनुरूप होना चाहिए। पंजाब नगर पालिका अधिनियम केअधीन निमित्त नियमों ने निवासी भवन को, वकीलों द्वारा वृत्तिक प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भवन को, शैक्षिक संस्थाओं, चिकित्सालय, होटल आदि के समकक्ष कर दिया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि वर्गीकरण पूर्णतः अविवेकी था ।

1.6.10 प्रतिव्यक्ति फीस

उच्चतम न्यायालय ने मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक[19] राज्य के मामले में प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं द्वारा प्रवेश के लिए प्रतिफल के रूप में लिए जाने वाली प्रतिव्यक्ति फीस को मनमाना और अनुच्छेद 14का अतिक्रामक बताया ।

1.6.11 आरक्षण

यदि वर्गीकरण विवेकपूर्ण और बोधगम्य अन्तरक पर आधारित है तो विभिन्नवर्गों के विद्यार्थियों के लिए स्थानों का आरक्षण असंवैधानिक नही माना जाएगा। लेकिन किसी राज्य मेंकेवल अधिवास या निवासस्थान के आधार पर योग्यता का विचार किए बिना प्रवेश के लिए सभी स्थानों में आरक्षण अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण माना जाएगा।

1.6.12 निर्वाचन संबंधी मामले

मतदान करने का अधिकार मूल अधिकार नहीं है । अतः असंशोधित निर्वाचक नामावली के आधार पर हुए निर्वाचन को शून्य करार नहीं दिया जा सकता क्योंकि व्यक्ति का नाम मतदाता नामावली में सम्मिलित नहीं किया गया था । राजनीतिक पार्टी द्वारानिर्वाचन में किया गया व्यय लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत प्रत्याशी का व्यय नहीं है, यह युक्तियुक्त वर्गीकरण है ।

1.6.13 प्रशासनिक विभेद

अनुच्छेद 14 विभेद अथवा वैवेकिक शक्ति के वास्तविक प्रयोग में मनमाने कार्य को अवैधनिर्धारित करता है । जहॉं कोई कानून इस आधार पर विभेदकारी है कि यह युक्तियुक्त वर्गीकरण नहीं करता है, या कि यह कार्यपालिका को अनियंत्रित विवेकाधिकार देता है, तो ऐसा अधिनियम अनुच्छेद 14 के अधीन शून्य होगा । प्रशासन द्वारा दिए जाने वाले लाभ अर्थात् संविदा, कोटा, परमिट अथवा अनुज्ञप्तिसंबंधी लाभ मनमाने ढंग से नही दिए जा सकते हैं । इस क्षेत्र में अनुच्छेद 14 और ऋजुता के नियम लागू किए गए हैं । न्यायमूर्ति भगवती ने सिद्धान्त का प्रतिपादन इस प्रकार किया है–श्जहॉं सरकार जनता से व्यवहार कर रही है, चाहे काम देने से या संविदा करने से अथवा कोटा या अनुज्ञप्तियां देने से या अन्य प्रकार का लाभ प्रदान करने से, सरकार प्राइवेट व्यक्ति की तरह मनमाने ढंग से स्वेच्छानुसार कार्य नहीं कर सकती है, किसी व्यक्ति के साथ व्यवहार मानक या प्रमाण के अनुरूप होना चाहिए जो कि मनमाना, अयुक्तियुक्त या असंगत नहीं होना चाहिए।श

साधारणतया सरकारी मेडिकल या इंजीनियरिग कालेजों में प्रवेश के लिए प्रत्याशियों का चयन मौखिक परीक्षण के आधार पर किया जाता है । इस विषय में अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि मौखिक साक्षात्कार व्यक्तिनिष्ठ होता है और यह मनमानी करने की ओर जा सकता है ।

लीलाधर बनाम राजस्थान राज्य के मामले में अभिनिर्धारित किया गया कि कालेजों में प्रवेश के लिए साक्षात्कार हेतु निर्धारित अंक कुल अंको के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए और सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के लिए साक्षात्तकार हेतु निर्धारित अंक कुल अंकों के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं हाना चाहिए । लेकिन तदुपरान्त महमूद आलम तारिक बनाम राजस्थान राज्य के मामले में न्यायालय ने यह कहा है कि प्रशासनिक एवं पुलिस सेवा में अधिकारियों की नियुक्ति के बारे में मौखिक परीक्षा के लिए न्यूनतम अर्हक अंक 33 प्रतिशत निर्धारित किया जा सकता है । आरती बनाम जम्मू कश्मीर राज्य[20] के मामले में मेडिकल कालेज में प्रवेश के लिए कुल अंकों का 30 प्रतिशत अंक साक्षात्कार के लिए निर्धारित किया गया था । प्रत्येक अभ्यर्थी को साक्षात्कार के लिए दिया गया समय 4 मिनट था । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसा साक्षात्कार अनुच्छेद 14 से असंगत था ।

1.7 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध

सविधान के अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोइ विभेद नहीं करेगा । अनुच्छेद 15(3), (4) और (5)अपवाद के लिए उपबंध करते हैं ताकि शैक्षिक दृष्टिसे पिछड़े वर्गों

के लिए विशेष उपबन्ध किए जा सकें । काठी रानिंग बनाम सौराष्ट्र राज्य[21] के वाद में न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 15 के बीच का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा कि–

शविभेद में इस प्रकार अनुकूल पक्षपात का तत्व अन्तर्वलित होता है और इससंदर्भ में इस अभिव्यक्ति को उस अर्थ में समझा जाना है । यदि ऐसा पक्षपात प्रकट होता है और वह अनुच्छेद 15 और 16 में वर्णित किन्हीं आधारों पर आधारित है तो यह कानून विनिर्दिष्ट संवैधानिक प्रतिषेध का अतिक्रमण करने के कारण दूषित होगा, जब तक किउस अनुच्छेद के एक या अन्य परन्तुको से क्षति नहीं है । लेकिन अनुच्छेद 14 के अधीनस्थिति भिन्न है । उस अनुच्छेद के अधीन समान संरक्षण दावों का परीक्षण इस उपधारणा से किया जाता है कि राज्य कार्य युक्तियुक्त और उचित है । श

राजस्थान राज्य बनाम प्रताप सिंह[22] के मामले में पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 15 (5) के अधीन एक अधिसूचना द्वारा एक क्षेत्र में अतिरिक्त पुलिस बल रखने काखर्चा उद्गृहीत किया गया क्योंकि उस स्थान के लोग डाकुओं को प्रश्रय देते थे एवं दंगे करते थे । इसके अंतर्गत उस क्षेत्र के हरिजनों और मुसलमानों को छूट दी गई थी । उच्चतम न्यायालय ने उसे असंवैधानिक करार दिया क्योंकि यह अधिसूचना स्पष्टतः धर्म या जाति के आधार पर विभेद करती थी।

इसी तरह एक मुम्बई विधि ने पुलिस को मुम्बई के बाहर जन्म लेने वालों को मुम्बई से बाहर निकालने के लिए सशक्त किया लेकिन मुम्बई में जन्म लेने वालों को नहीं।यह वर्गीकरण केवल जन्म के स्थान पर आधारित था अतः उच्चतम न्यायालय ने इस विधि को विभेदात्मक घोषित किया। हिन्दु विधि में सुधार करने वाले कानून को वैध अभिनिर्धारित किया गया हालांकि वैसे ही सुधार अन्य धार्मिक समुदाय के लिएनहीं बनाए गए थे परन्तु वर्गीकरण का आधार धर्म नहीं बल्कि स्वयं विधि में सुधार था । निवास के आधार पर वर्गीकरण अनुच्छेद 15 (1) के अंतर्गत नहीं आता है क्योंकि प्रयुक्त शब्द 'जन्म का स्थान' है न कि निवास । अनुच्छेद 15 में निहित अधिकार केवल नागरिकों की उपलब्ध हैं, गैर–नागरिकों को नहीं।

1.7.1 सुख सुविधाऔं के लिए पहुँच– अनुच्छेद 15(2)

अनुच्छेद 15 (2)का विस्तार अधिक है क्योंकि यह केवल राज्य के विरुद्ध ही नही बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध भी उपलब्ध हैं । इस अनुच्छेद में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसीके आधार पर किसी नागरिक को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिकमनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने के अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य निधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिए समर्पित कुआँ, तालाब, स्नानघाटों,

सड़कोंतथा सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग करने से अपवर्जित न किए जाने का मूल अधिकार दिया गया है । संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में सार्वजनिक स्थानों में मूलवंश के आधार पर विभेद के विरुद्ध कोई प्रत्याभूति नहीं दी गई है, जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(2) में दी गई है । इस प्रकार पाश्चात्य समाज में मूलवंश पर आधारितविभेद अभी भी पाया जाता है । भारत में यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि मूलवंश के आधार पर विभेद – ग्रस्त व्यक्ति देश के उच्चतम न्यायालय से अनुतोष प्राप्त कर सकताहै ।

अनुच्छेद 15 (2) के अधीन 'दुकान' शब्द का अर्थ बहुतव्यापक है। इससे केवल वही स्थान अभिप्रेत नहीं है जहां माल बेचा जाता है बल्कि वे स्थान भी इसके अन्तर्गत आते हैं जहां सेवाएं प्रदान की जाती हैं । उदाहरणार्थ, नाई की दुकान, वकील का कार्यालय और चिकित्सक का क्लीनिक आदि । अनुच्छेद 15 (2) का उद्देश्य सामाजिक बुराइयों को दूर करना है । अतः अस्यपृश्यता के आधार पर कोइं निर्योग्यता या निर्बंधता आरोपित नहीं की जा सकती। इसे संविधान के अनुच्छेद 15 (2) एवं अनुच्छेद 17 के अधीन प्रतिषिद्धकिया गया है।

1.7.2 स्त्रियों और बालकों के पक्ष में विशेष उपबंध

भारतीय संविधान द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है । अनुच्छेद 15 (3) उपबंधित करता है कि इस अनुच्छेद की कोई बात स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी ।

संसद ने राष्ट्रीय महिला आयोग, 1990 द्वारा महिलाओं के लिए विशेष उपबंध किया है। आयोग का प्रमुख कार्य महिलाओं के दी गई संविधानिक और विधिक सुरक्षा सेसंबंधित विषयों का अध्ययन करना, मानीटर करना, विद्यमान विधान की समीक्षा करना और जहां आवश्यक हो वहां संधोशन के लिएसुझाव भी देना है । वह महिलाओं के विषय में किए गए परिवादों को भी देखेगा और स्वतः ऐसे मामलों को संज्ञान में लेगा जिसमें महिलाओं के अधिकारों का हननअन्तर्वलित है ताकि असहाय महिलाओं को विधिक या अन्य समर्थन प्रदान किया जा सके । अनुच्छेद 39, 42 एवं 45 महिलाओं से संबंधित कुछ विशेष उपबंधों का निर्देश करते हैं। विशेष उपबंध स्त्रियों के लाभ के लिए तो हो सकते हैं किंतु उनके अलाभ के लिए नहीं। युसूफ अब्दुल अजीज बनाम मुम्बई राज्य[23] के मामले में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 497 की वैधता पर आक्षेप इस आधार पर किया गया था कि इसके अधीन जारकर्म के अपराध के लिए केवल पुरुष को ही दण्डनीय माना गया है, स्त्रियों को नहीं । इसमें तथ्य इस प्रकार थे कि यूसूफ को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 497 के अधीन जारकर्म के अपराध के लिए दण्ड दिया गया । उसने उच्चतम न्यायालय में धारा 497 को चुनौती देते हुए कहा कि यह संविधान के अनुच्छद 15 (1) का अतिलंघन करती है क्योंकि इसके अधीन जारकर्म के लिए केवल पुरुष को

ही अभियुक्त के रूप में दण्डित किया जाता है। स्त्री को उत्प्रेरक के रूप में भी दण्डित नहीं किया जासकता , ऐसा विभेद लिंग के आधार पर होने के कारण असंवैंधानिक है । न्यायालय ने इस तर्क को मानने से इंकार कर दिया और धारा 497 को वैध घोषित करत हुए निर्धारित किया कि वर्गीकरण लिंग के आधार पर नहीं बल्कि समाज में स्त्रियों की विशेष स्थिति पर आधारित है ।

बालकों के लिए भी विशेष उपबंध किया जा सकता है । इसी उद्देश्य से किशोर न्याय अधिनियम, 1986 और बालक श्रम(प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1980 अधिनियमित किए गए । लक्ष्मीकान्त पांडे बनाम भारत[24] संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने विदेश में रहने वाले विदेशियों द्वारा भारतीय बच्चों को दत्तक ग्रहण के संबंध में उन मानको को अधिकथित किया जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए ।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घौषणा के अनुच्छेद 25 के परिच्छेद2 में अधिकथितकिया गया है कि बालकों को विशेष देखभाल और सहायता का हक है ।

1.7.3 संरक्षात्मक विभेद (अनुच्छेद 15(4))

संरक्षात्मक विभेद का अर्थ है कि राज्य समता के पक्ष में विभेद कर सकता है। जो लोग असमान हैं उन्हें समान बनाने के लिएराज्य से सकारात्मक कार्यवाई की अपेक्षा की जाती है । सैद्धांतिक समता पर नहीं बल्कि जोर तथ्य की समता पर दिया जाता है। विभेद को असमानताओं को समतल पर लाने के लिए ही अनुमति प्रदान की गई है। आरक्षण एक अत्यन्त ही पेचीदा सामाजिक–राजनौतिक प्रश्न बन गया है । चूंकि देश में अवसर की उपलब्धि स्वीकृत है, इसलिए उनके लिए कड़ी प्रतियागिता का होनास्वभाविक है । सरकार पर भी भारी भरकम दबावहै कि वह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गो के लिए ही नहीं, वरन सभी समुदायों के लिए सब प्रकार के आरक्षण को सुनिश्चित करे । तत्वतः आरक्षण विभेदकारी है क्योंकि आरक्षण का अर्थ है कि समान प्रतिभा वाले दो प्रतियोगियों में से आरक्षित कोटा वाले को वरीयता मिलना। अतएव बहुत से योग्य प्रत्याशी कम योग्य व्यक्तियों के पक्ष में आरक्षण होने से कुण्ठित हो जाते हैं । वे आरक्षण की योजना को संविधान के आधार पर चुनौती देते हैं ।

निशि मेधु बनाम जम्मू–कश्मीर राज्य के मामले में, राजकीय मेडिकल कालेज में प्रवेश के लिए 60 प्रतिशत स्थान योग्यता के आधार पर भरे जाने थे, 20 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जाति और अन्य आरक्षित वर्गों कै लिए जिनमें पिछड़े वर्ग भी सम्मिलित थे,नियत किया गया था और शेष 20 प्रतिशत श्क्षेत्रीय असंतुलन की परिशुद्धिश के लिए रखा गये थे। उच्चतम न्यायालय ने श्क्षेत्रौय असंतुलन की परिशुद्धिश से संबंधित वर्गीकरण को अविधिमान्य करार दिया

क्योंकि यह अस्पष्ट था। इसमेंअसंतुलन से ग्रस्त क्षेत्र को स्पष्ट नहीं किया गया था । इसके बाद राज्य के विभिन भाग में क्षेत्रिय असंतुलन की परिशुद्धिश के सिद्वान्त को लागू करने के लिए सरकार ने कुछ ग्रामों को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछडा चिन्हित कर दिया । उच्चतम न्यायालय ने आरती सप्रू बनाम जम्मू कश्मीर[25] राज्य के मामले में उसे फिर अवैध घोषित कर दिया क्योंकि वर्गीकरण मनमाना था एवं अनु0 15 (4) का अतिक्रमण करता था।न्यायालय के समक्ष कोई बोधगम्य आंकड़े नहीं प्रस्तुत किए गए थे जिससे कि उसे मान्य ठहरायाजाता । चित्रा घोष बनाम भारत संघ के मामले में भारतीय मिशन पर विदेश में तैनात सरकारी सेवकों के बालकों के पक्ष मेंकिए गए आरक्षण की बात अन्तर्ग्रस्त थी । उच्चतम न्यायालय ने इस आरक्षण की मान्य ठहराया क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को शिक्षा के मामले में बडी कठिनाई का सामना करनापड़ता है । न्यायालय ने कहा कि सरकार मेडिकल कालेजों के चलाने का व्यय वहन करती है, इसलिए वह उन स्रोतों का निश्चय कर सकती है जहां से विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाना है । श्यदि स्रोतों का प्रादेशिक, भौगोलिक या अन्य युक्तियुक्त आधार पर वर्गीकरण किया जाता है, तो यह न्यायालय के लिए नहीं है कि वह वर्गीकरण की रीति या तरीके में हस्तक्षेप करे ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम निवेदिता जैन[26] का निर्णय अनुच्छेद 15 (4)पर एक महत्वपूर्ण विनिश्चय है। राजकीय मेडिकल कालेजों में प्रवेश के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने निम्नलिखित प्रकार से स्थानों का आरक्षण किया–

अनुसूचित जाति, 15 प्रतिशत;

अनुसूचित जनजाति, 15 प्रतिशत;

महिला प्रत्याक्षी, 15 प्रतिशत;

सैनिक कार्मिक के बालक, 3 प्रतिशत;

केन्द्रीय सरकार के नाम निर्देशिती, 3 प्रतिशत;

जम्मू–कश्मीर सरकार के नाम निर्देशिती, 3 प्रतिशत ।

इसके अतिरिक्त, प्री–मैडिकल परीक्षा में अनूसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए न्यूनतम अर्हक अंक की कोई शर्त नहीं रखी गई थी । मेडिकल कालेजों में 720 स्थानों के लिए 9400 अभ्यर्थियों ने परीक्षा दी । उच्चतम न्यायालय ने इसे मान्य ठहराया । प्रवेश नियमों के एक नियम में यह उपबन्ध था कि यदि अनुसूचितजनजाति के लिए आरक्षित स्थान खाली रहते हैं, तो वे अनारक्षित के रूप में मुक्त हो जाएंगे । लकिन सरकार ने एक आदेश जारी कर दिया जिसके द्वारा आरक्षित स्थानों में अर्हक अंकों की अपेक्षा को समाप्त कर दिया गया । उच्चतम न्यायालय ने इसे वैध करार दिया ।

1.7.4 उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण–

केन्द्रीय शिक्षण संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006(93वाँ संशोधन) के द्वारा अनुच्छेद 15 में खण्ड (5) जोड़ा गया।

अशोक कुमार ठाकुर बनाम भारत संघ[27] के वाद में उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों कीसंविधान पीठ ने सर्वसम्मति से केन्द्रीय शिक्षण संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006 को, जिसके द्वारा केन्द्रीय उच्च शिक्षण संस्थानों, ;प्प्ज्ए प्प्ड एवं अन्य केंद्रीय संस्थान सहित) में अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 प्रतिशत आरक्षण देने के उपबन्ध को संवैधानिक घोषित कर दिया है । इस प्रकार अब कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत हो गया है। किंतु क्रीमीलेयर (उन्नत वर्ग) को इस आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा ।उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि इस कानून की प्रत्येक पाँच वर्ष में समाज परपड़ने वाले प्रभाव की पूर्ण समीक्षा करना आवश्यक होगा ।क्रीमीलेयर का प्रावधान अनुसूचित जाति औरअनुसूचित जनजाति के छात्रों पर लागू नहीं होगा।

उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार पिछड़े वर्गो में उन्नत व्यक्तियों (Creamy Layer) का पता लगानेके लिए एक 3 सदस्यीय विशेषज्ञ समिति न्यायाधीशरामनन्दन प्रसाद की अध्यक्षता में गठित की गयी थी । समिति ने 10 मार्च को अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपदी । सरकार ने समिति की रिपोर्ट स्वीकार कर लिया है । विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि[28]–

(1) 3 वर्ष तक एक लाख तक सम्पत्ति कर योग्य अथवा 3 वर्ष तक एक लाख रुपये वार्षिक से अधिक आय वाले लोगों को 'सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण' का लाभ नहींमिलेगा ।[29]

(2) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, संघ लोक सेवा आयोग और राज्य सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य, प्रमुख चुनाव आयुक्त, भारत के नियन्त्रक एवंमहालेखा परीक्षक तथा ऐसे अन्य संवैधानिक पदों के मामले में यह लागू नहीं हो सकता है ।

(3) सरकारी सेवा के बारे में समिति ने कहा कि यदि पति–पत्नी में से कोई प्रथम श्रेणी का अधिकारीहै तो उन्हें आरक्षण नहीं मिलेगा । यदि उनमें से किसी की मृत्यु हो जाती है तो यह नियम लागू होगा । किन्तु यदि दोनों की मृत्यु हो जाती है तो उनकी संतानों को आरक्षण का लाभ मिलेगा । यदि स्थायी रूप सेविकलांग होने के कारण कोई भी अधिकारी नौकरी से बाहर होता है तो उसे मृत्यु के समान माना जाता है । यदि दोनों पति–पत्नी के मामले में मृत्यु या स्थायी रूप से विकलांगता की स्थिति पैदा होती है तो उस मामलेमें आरक्षण मिलेगा।

(4) पति अथवा पत्नी अथवा दोनों की मृत्यु से पहले यदि किसी एक ने कम से कम पाँच साल तक के लिए संयुक्त राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, 'विश्व बैंक' जैसी संस्थाओं में नौकरी की है तो उनकी संतानोंको आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा ।

(5) यदि किसी प्रथम श्रेणी के अधिकारी से पिछड़े वर्ग की कोई महिला शादी करती है और उसके बाद नौकरी के लिए आवेदन देती है तो उसे आरक्षण का लाभ मिलेगा ।

(6) केन्द्रीय और राज्य सेवाओं में सीधी भर्ती के तहत गुप 'ब' द्वितीय श्रेणी के बारे में यदि दोनोंद्वितीय श्रेणी के अधिकारी हों तो उनकी संतानों को आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा, यदि पति–पली में सेकोई द्वितीय श्रेणी का अधिकारी हो तो उस मामले में यह लागू नहीं होगा । यदि 40 साल की उम्र या इससे पहले दूसरे श्रेणी का कोई अधिकारी प्रथम श्रेणी में प्रोन्नत हो जाए तो उसकी संतान आरक्षण से वंचितहोगी ।

(7) जहाँ पति–पत्नी दोनों ही द्वितीय श्रेणी के अधिकारी हों और यदि उनमें से एक की मृत्यु होजाए तो उनकी सन्तानों को लाभ मिलता रहेगा ।

(8) यदि पति सीधी भर्ती के तहत 40 साल की उम्र से पहले प्रोन्नत होकर प्रथम श्रेणी का अधिकारीबना हो और पत्नी द्वितीय श्रेणी की अधिकारी हो और यदि पति की मृत्यु हो जाए तो उनकी सन्तानें आरक्षणका लाभ प्राप्त कर सकेंगी । इसी प्रकार पत्नी प्रथम श्रेणी की अधिकारी हो और पति दूसरी श्रेणी का अधिकारी हो और यदि पति की मृत्यु हो जाए तो सन्तानों को आरक्षण से वंचित रखा जायेगा ।

(9) सरकारी नौकरी की विभिन्न श्रेणियों के लिए आरक्षण से वंचित रखने के उपर्युक्त आधारसार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, बैंकों, बीमा सगठनों, विश्वविद्यालयों और निजी पूंजी निवेश वाले उपक्रमों मेंसमान पदों पर भी लागू होंगे ।

(10) अर्द्ध सैनिक बलों (असैनिक पदों पर नियुक्तियों को छोडकर) और सशस्त्र सेवाओं में आरक्षणसे वंचित रखने का नियम सेवा में कर्नल और उसके ऊपर के स्तर पर तथा नौसेना, वायुसेना तथा अर्द्धसैनिकबलों में समान पदों पर लागू होगा । यदि किसी सैनिक अधिकारी की पत्नी स्वयं सशस्त्र सेना में है तो उसमामले में आरक्षण से वंचित रहने का नियम तभी लागू होगा, जब वह महिला स्वयं कर्नल के रैंक पर होगी। यदि किसी सैनिक अधिकारी की पत्नी असैनिक नौकरी में है तो इसे आरक्षण से वंचित रखने के नियम केदायरे से बाहर रखा जाएगा

(11) समिति ने व्यापार–उद्योग और पेशेवर श्रेणी के पदों का जिक्र करते हुए कहा कि इन मामलों मेंआरक्षण से वंचित करने या न करने के मामलों में आय और संपत्ति को आधार माना जाएगा । सम्पत्ति केमालिकों के मामले में समिति ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति ऐसे परिवार (माता–पिता और अवयस्कबच्चे) का सदस्य है जिसके पास वैध सीलिंग की 65 प्रतिशत अथवा इससे अधिक सिंचित भूमि है तो उसेआरक्षण से वंचित रखा जाएगा । आरक्षण से वंचित रखने का नियम उन परिवारों पर लागू नहीं होगा जिनकेपास केवल असिंचित भूमि है, भले ही ये

भूमि कितनी ही बड़ी क्यों न हो। सिंचित और असिंचित भूमिरखने वाले परिवार के सदस्यों के मामले में आरक्षण से वंचित रखने का नियम उसी मामले में लागू होगाजिसमें सिंचित भूमि विधि सीलिंग सीमा से 40 प्रतिशत या अधिक है । लेकिन आरक्षण से वंचित रखने कानियम नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, गोवा, अण्डमान और निकोबार, लक्षदीप और दमनऔर दीव में लागू नहीं होगा क्योंकि वहाँ भूमि हदबंदी कानून नहीं हैं ।

(12) शेष पदों के बारे में समिति ने कहा है कि वार्षिक एक लाख रुपये से या उससे अधिक की आयअथवा धनकर कानून की छूट सीमा से अधिक धन रखने वाले व्यक्तियों को आरक्षण के लाभ से बाहर रखाजायेगा ।

(13) समिति ने कहा कि सामाजिक रूप से उन्नत व्यक्ति की पहचान के लिए लगातार 3 वर्ष तकउपर्युक्त स्तर की आय अथवा संपदा होने पर ही उसके मामले में आरक्षण से वंचित करने का नियम लागू होगा ।

(14) ग्रामीण कारीगरों अथवा कुम्हार, धोबी, नाई जैसे पुश्तैनी काम में लगे लोगों के मामले मेंआरक्षण से वंचित रखने का नियम लागू नहीं होगा ।

1.8 लोक नियोजन में अवसर की समता—अनुच्छेद 16

संविधान के अनुच्छेद 16 (1) और (2) में लोक नियोजन के विंषय में अवसर की समता का अधिकार प्रदान किया गया है । अनुच्छेद 16(1) के अनुसार 'राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी'। अनुच्छेद 16(2) अधिकथित करता है, 'राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्‌भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्रहोगा और न उसमें विभेद किया जाएगा । नियोजन के मामले में अनुच्छेद 16 भारतीय नागरिकता की सार्वजनिकता को मान्यता देता है । अनुच्छेद 14, 15 और 16 मिलकर एक संहिता बनाते हैं । दसरथ रामाराव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[30] के मामले में न्यायाधिपति दास ने अनुच्छेद 14, 15 और 16 के सापेक्ष विस्तार को समझाते हुए कहा था कि श्अनुच्छेद 14 समता का साधारण अधिकार प्रत्याभूत करता है और अनुच्छेद 15 एवं 16 कुछ विशेष परिस्थितियों में नागरिकों के पक्ष में उसी समता के अधिकार को कतिपय आधारों पर विभेद न करने को कहते हैं।श

बी. एल. चन्द्र बनाम आल इण्डिया इंसटीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेंज सामाजिक अभियान्त्रिकी (Social engineering) का एक बहुत अच्छा वाद है । इस वाद के तथ्य इस प्रकार थे, संस्थान के कर्मचारी विभिन्न परियोजनाओं पर लगातार बारह से पंद्रह वर्ष से अधिक कार्य कर चुके थे जब उनकी सेवाऐं समाप्त कर दी गई । उन लोगों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष

याचिका प्रस्तुत की और कहा कि वे संस्थान में इतने समय तक कार्यरत रहे हैं कि उनकी जीवन में इतनी अवस्था हो गई है कि वे किसी सरकारी सेवा या किसी अन्य उपयुक्त नियोजन के हकदार नहीं रह गए हैं । संस्थान ने प्रतिउत्तर में कहा कि नियोजन अस्थायी प्रकृति का था और एक बार जब परियोजना पूरी हो गई तो रोजगार समाप्त हो गया । न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र ने कहा कि संस्थान रिसर्च स्टाफ स्थायी कोर की व्यवस्था करे और उसे निर्देश दिया कि उनको रोजगार प्रदान करने की संभाव्यता की छानबीन करे । यही सामाजिक न्याय की मांग थी। संस्थान ने शोधकर्ताओं से उनकी सेवा प्राप्त की और जब उनके जीवन का उत्तम भाग बीत गया तब संस्थान ने उनको बाहर कर देना चाहा । यह न तो न्याय संगत था और न ही उचित ।

1.8.1 समान कार्य के लिए समान वेतन

'समान कार्य के लिए समान वेतन'अनुच्छेद 14 का लक्ष्य है । रनधीर सिहं बनाम भारत संघ[31] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 14, 16 और 39 (घ) को एक साथ पढ़ने पर समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार प्राप्त होता है । यदि बिना युक्तियुक्त आधार के दो कर्मचारियों के बीच इस मामले में विभेद किया जाता है तो यह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा । 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धान्त सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, चाहे उनकी नियुक्ति अस्थाई हो या स्थायी। सरकारी सहायता प्राप्त और गैर–सरकारी सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक स्कूलों के अध्यापकों के वेतन और अन्य सेवा शर्तों में अन्तर करना अनुच्छेद 14 के अधीन विभेदकारी है, अतः इसे असंवैधानिक माना गया है ।यही सिद्धान्त दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों पर भी लागू होता है ।
इन्द्रा साहनी बनाम भारत संघ[32] (मण्डल आयोग का मामला) के ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अनु0 16 (4) के अधीन आरक्षण,प्रान्नेति में नहीं वरन केवल प्रारम्भिक नियुक्तियों केमामले में ही दिया जा सकता है । इस मामले में न्यायालय ने जनरल मैनेजर दक्षिण रेलवे बनाम रंगाचारी[33], पंजाब राज्य बनाम हीरा लाल[34], अखिल भारतीय कर्मचारी शोषित संघ बनामभारत संघ[35], और कन्ट्रोलर एण्ड आडिटर जनरल ऑफ इण्डिया, ज्ञान प्रकाश बनाम के० एस० जगन्नाथ[36], आदि मामलों में दिए निर्णय को उलट दिया है । इन मामलों में यह निर्णय दिया गया था कि अनु0 16 (4) केवल प्रारम्भिक नियुक्तियों तक ही सीमित नहीं है वरन इसमें प्रोन्नति भी आती है अर्थात प्रान्नेति में भी आरक्षण किया जा सकता है किन्तु अब अनु0 16 (4.) जोड़कर इन्द्रा साहनी के निर्णय केप्रभाव को समाप्त कर दिया गया है और अब प्रान्नेति में भी आरक्षण किया जा सकता है ।

1.8.2 इन्द्रा साहनी (मण्डल आयोग का मामला)

के वाद में बहुमत ने अपना निर्णय इस प्रकार दिया है–

1.8.2.1 अनु0 16 (4) अनु0 (1) का अपवाद नहीं है–

न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अनु0 16 (4) अनु0 16 (1) का अपवाद नहीं है बल्कि उसका एक उदाहरण है । आरक्षण अनु0 16 (1) में अनु0 14 के अधीन प्रतिपादितवर्गीकरण के सिद्धान्त के आधार पर भी किया जा सकता है । बालाजी बनाम मैसूर राज्य[37] के मामले में यह निर्धारित किया गया था कि अनु0 16 (4) अनु0 16 (1) का अपवाद है । अनु0 16 (1) सामान्य नियम है एवं आरक्षण अनु0 16 (4) के अधीन किया जा सकता है । किन्तु थोमस के मामले में न्यायालय ने बालाजी केमामले में दिए निर्णय को सही नहीं माना। मण्डल आयोग के मामले में बहुमत ने बालाजी के निर्णय को उलट दिया।

1.8.2.2 अनु0 16 (4) एवं अनु0 15 (4) के अधीन पिछड़े वर्ग समान नहीं

न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया है कि अनु0 16 (4) के अधीन पिछड़ा वर्ग, अनु0 15 (4) मेंसामाजिक और शैक्षिक पिछड़ा वर्ग, के समान नहीं है । अनु0 16 (4) के अंर्तगत 'सामाजिक और शैक्षिक' शब्दावलीका प्रयोग नहीं किया गया है । अतः अनु0 16 (4) में सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ा वर्ग सहित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तथाअन्य सभी पिछड़े वर्ग के नागरिक सम्मिलित हैं ।

1.8.2.3 अनु0 16 (4) में पिछड़ेपन का आधार जाति है, आर्थिक कसौटी नहीं

न्यायालय ने कहा किआर्थिक आधार या निर्धनता पिछड़ेपन की कसौटी नहीं है । गैर हिंदुओं, जैसे–ईसाइयों, मुसलमानों और सिक्खों में भी जातियाँ होती हैं और अनु0 16 (4) के अधीन वे भी आरक्षण की हकदार हैं । अतः न्यायालय ने निर्णय दिया कि जाति यदि सामाजिकरूप से पिछड़ी है तो उसे अनु0 16 (4) के प्रयोजन के लिए पिछडा वर्ग माना जायेगा । डा0 अम्बेडकरने संविधान सभा में कहा था कि पिछड़ा वर्ग कुछ जातियों के एक समूह के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

संविधान में पिछड़े वर्गों की पहचान हेतु के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है न ही कोई प्रक्रिया विहित की गई है एवं वह इसके लिए कोई भी तरीका या प्रक्रिया अपना सकती है परन्तु ऐसा करते समय पूरी जनसंखा का सर्वेक्षण करना आवश्यक है ।

1.8.2.4 पिछड़े वर्गों में से 'सम्पन्न' (Creamy Layer) लोगों आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाय

इस संबंध में न्यायालय ने देवदासन[38] के मामले में दिए निर्णयको उलट दिया है जिसमें पिछड़े और अधिक पिछड़े वर्गो के किए गए वर्गीकरण को असंवैधानिक घोषितकर दिया गया था बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया गया कि पिछड़े वर्गो का निर्धारण करते समय उनमें से 'सम्पन्न लोगों' को निकाल कर सूची बनायी जाय । पिछड़े वर्गों में सबसे पिछड़ों को ही इसका लाभ मिलना चाहिये ।

1.8.2.5 आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत से अधिक नहीं

इस संबंध में न्यायालय नेथोमस[39] तथा अखिल कर्मचारी शोषित संघ[40] के मामलों को उलट दिया और बालाजी के मामले में दिए निर्णय को सही माना जिसमें 50 प्रतिशत के नियम परसन्देह व्यक्त किया गया था ।बहुमत के अनुसार आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी ।विशेष परिस्थितियों में वह भी दूर–दराज के राज्यों में जहाँ विशिष्टपरिस्थितियाँ हैंआरक्षण कुछ अधिक हो सकता है । देवदासन के मामले में अग्रनयन (Carry forward rule) के नियम को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था परन्तु इस वाद में उक्तनियम को विधिमान्य घोषित कर दिया एवं यह शर्त लगादी कि इस नियम के परिणामस्वरूप किये गये आरक्षण द्वारा 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा का उल्लंघन नहीं किया जा सकेगा ।

1.8.2.6 आरक्षण हेतु विधि बनाना आवश्यक नहीं

बहुमत द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि आरक्षण कार्यपालिका आदेश द्वारा लागू किया जा सकता है । इसके लिए विधि बनाना आवश्यक नहीं है ।

1.8.2.7 प्रोन्नति में आरक्षण की अनुमति नहीं

इस संबंध में न्यायालयने जनरल मैनेजर दक्षिण रेलवे बनाम रंगाचारी, स्टेट ऑफ पंजाब बनाम हीरालाल, अखिल भारतीय शोषित संघ बनाम भारत संघके मामलों में दिये अपने निर्णय को उलट दिया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आरक्षण केवल प्रारम्भिक नियुक्तियों तक ही सीमित है ।प्रोन्नति में आरक्षण नहीं किया जा सकता है । न्यायालय का निर्णय पिछली प्रोन्नतियों को प्रभावित नहीं करेगा एवं न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि जिन राज्यों में ऐसी प्रोन्नतिपहले से लागू है वहाँ अगले पाँच वर्ष तक लागू रहेगी । इस अवधि के भीतर सरकारों को पुनर्विचार करके उसेठीक करना होगा ।

1.8.3 77वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1995

यह संशोधन अधिनियम उच्चतम न्यायालय द्वारा मण्डल आयोग के मामले में दिए निर्णय के प्रभावको दूर करने के लिए पारित किया गया है । जिसके अनुसार न्यायालय नेसरकारी सेवाओं में प्रोन्तति में आरक्षण नहीं दिया जाने का निर्णय दिया था। इससंविधान संशोधन द्वारा अनु0 16 में एक नया खण्ड, खण्ड (4क) जोड़ा गया है जिसके अनुसार अनु 16 में की कोई बात राज्य के अनुसूचितजाति और अनुसूचित जनजातियों के किसी वर्ग या वर्गों के लिए जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, प्रोन्नति के लिए आरक्षण के लिए कोई उपबंध करने से वर्जित नहीं करेगी ।

1.8.4 अनुच्छेद 16 (2) –वंशक्रम और निवास स्थान के आधार पर विभेद वर्जित

अनुच्छेद 16 का क्षेत्र अनुच्छेद 15 से अधिक विस्तृत है । अनुच्छेद 16 (2) के अंतर्गत सामान्य आधारों के अतिरिक्त दो अन्य आधार 'वंशक्रम' और'निवास–स्थान' भी शामिल किये गये हैं जो अनुच्छेद 15 में नहीं हैं । लोक–सेवाओं के मामले में उक्त आधारों पर कोई विभेद नहीं किया जायगा । इस उपबंध कोसंविधान में समाविष्ट करने का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रवाद को समाप्त कर देश को एक सूत्र में बांधना है।

दशरथ रामाराव बनाम आन्ध्र प्रदेश[41] के मामले में मद्रास वंशक्रमानुगत ग्रामपद अधिनियम, 1895 की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी थी । इस अधिनियम की धारा 6 के अनुसार ग्राम मुन्सिफ के पद के लिए इस पद के, अन्तिम धारक के परिवार के लोगों में से ही चुनाव करना आवश्यक था । उच्चतम न्यायालय ने इस धारा को अवैध घोषित कर दियाय क्योंकि यह केवल 'वंशक्रम' के आधार पर भेदभाव करती है।

प्रदीप जैन बनाम भारत संघ[42] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि अनुच्छेद 16(2) के अनुसार 'निवास–स्थान' के आधार पर मेडिकल कालेजों में प्रवेश के लिये आरक्षण

संवैधानिक है किन्तु इसकी विधिमान्यता को अनुच्छेद 14 के आधार पर भी चुनौती दी जा सकती है।

1.8.5 अनुच्छेद 16 (3) अनुच्छेद 16 (2) का एक अपवाद –निवास के आधार पर विभेद वर्जित नहीं

अनुच्छेद 16(3) संसद् को यह शक्ति प्रदान करता है कि सरकारउचित कारणों के अधीन कुछ सेवाओं को केवल राज्य के निवासियों के लिये आरक्षित कर सकती है। इस प्रकारअनुच्छेद 16 (3) अनुच्छेद 16 (2) का एक अपवाद है । अनुच्छेद 16 (3) के अधीन संसद ने पब्लिक एम्पलायमेंट रिक्वायरमेंट ऐज टुरेजीडेंस ऐक्ट, 1957 पारित किया। उक्त अधिनियम यह उपबन्धित करता है कि कोई भी व्यक्ति लोकसेवाओं में नियुक्ति के लिये इस आधार पर अयोग्य नहीं होगा कि वह किसी विशेष राज्य का निवासी नहीं है । यह अधिनियम हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा और तेलंगाना आदि में लागू नहीं होगा अर्थात् इनक्षेत्रों में निवास स्थान के आधार पर सरकारी सेवाओं में आरक्षण दिया जा सकता है । इन क्षेत्रों के पिछड़ेपन के कारण ऐसी छूट का प्रावधान किया गया है ।

नरसिंह राव बनाम आन्ध्र प्रदेश[43] के मामले में न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 16 में प्रयुक्त 'राज्य' शब्द से तात्पर्य पूरे राज्य से है। अतः निवास–स्थान संबंधी अर्हता पूरे राज्य के लिये होनी चाहिये, केवल एक भाग के लिये ही नहीं ।

1.8.6 अनुच्छेद 16 (4) –पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का उपबंध

'पिछड़ा वर्ग' शब्दावली की संविधान में कोई परिभाषा नहीं दी गयी है । अनु0 340 राष्ट्रपति कोपिछड़े वर्गों के अवधारण के लिये आयोग की स्थापना करने की शक्ति प्रदान करता है । आयोग कीरिपोर्ट के आधार पर सरकार पिछड़े वर्ग में आने वाले वर्गों को विनिर्दिष्ट करेगी । सरकार के इस वर्गीकरण का युक्तियुक्तआधार होना चाहिए। इस प्रकार अनुच्छेद 16 (4) इस अनुच्छेद 16 (1) और (2) का दूसरा अपवाद है । इसके अनुसार राज्य पिछड़ेहुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहींहै, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का उपबंध कर सकता है ।

बालाजी के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि केवल 'जाति' को पिछड़ेपन के निर्धारण कीकसौटी नहीं बनाया जा सकता है । परन्तु मण्डल आयोग के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर बालाजी के मामले कोउलट दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि पिछड़े वर्ग के निर्धारण में जाति को आधार बनाया जासकता है ।

अशोक कुमार ठाकुर बनाम बिहार राज्य[44] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश औरबिहार राज्य सरकारों द्वारा पिछडे वर्गों में से सम्पन्न वर्गो (ब्तमंउल स्लमत) को निकालने के लिए निहितआर्थिक कसौटी को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया है क्योंकि वह अनु० 16 (4) और अनु० 14 तथा मण्डल आयोग के मामले में विहित विधि का उल्लंघन करता है ।

कर्नाटक राज्य बनाम के० गोविन्दप्पा[45] के मामले में आरक्षण लागू करने के लिए पदों की संख्या कीबहुलता का होना आवश्यक है । पदों की बहुलता के अभाव में आरक्षण का नियम लागू नहीं किया जा सकताहै ।

डॉ० पी० हवी० श्रीवास्तवा और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य[46] के मामले में उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 4–1 केबहुमत से यह अभिनिर्धारित किया है कि मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेजों के अतिविशिष्ट पाठ्यक्रमों (डैध्डक)में प्रवेशआरक्षण के आधार पर नहीं दिया जा सकता है। आरक्षण के आधार पर प्रवेश राष्ट्रहित में नहीं है। अतः उसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है ।

अजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य[47] के मामले मेंअपने एक ऐतिहासिक महत्व के निर्णय उच्चतमन्यायालय की पाँच सदस्यीय संविधानपीठ ने सर्वसम्मति से यह अभिनिर्धारित किया हैकि आरक्षण कोटे के अन्तर्गत चयनित अभ्यर्थी सामान्य कोटे में चयनित अभ्यर्थी के ऊपर अधिकार के रूप में वरिष्ठता का दावा नहीं कर सकता है । न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 16 (4क) मूल अधिकार प्रदान नहीं करता है, न ही कोई सांविधानिक कर्तव्य को अधिरोपित करता हैं बल्कि वह एक सामर्थ्यकारी उपबन्ध हैं जो राज्य को इस बात पर विचार करने की वैवेकिक शक्ति प्रदान करता है कि क्या वर्णित परिस्थितियों में आरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है।

1.8.7 81वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2000

इस संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 16 में एक नया खण्ड 4–ख जोड़ा गया है

जिसके द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति केलिए आरक्षित बकाया (backlog) रिक्तियों को एक पृथक वर्ग माना जाएगा और उन्हें अगले वर्ष या वर्षों में पृथक मानकर भरा जाएगा और अगले वर्षों की रिक्तियों में 50 प्रतिशत की संख्या के प्रयोजन के लिए नहीं जोड़ा जाएगा, भले ही वह 50 प्रतिशत की सीमासे बढ़भी जाए। इस प्रकार यह संशोधन इन्द्रा साहनी के मामले में निर्णीत आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा को प्रभावहीन करता है।

1.8.8 85वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2001

इस संशोधन द्वारा खण्ड 4क में शब्दावली शकिसी वर्ग की प्रोन्नति के मामले मेंश के स्थान पर शकिसी वर्ग के लिए प्रोन्नति के मामले में पारिणामिक (consequential) ज्येष्ठता के साथशशब्दावली अंत स्थापित की गई है । यह संशोधन अधिनियम,भूतलक्षी प्रभाव के साथ 17 जून, 1995 (जिस दिन 77वाँ संशोधन लागू हुआ था) से लागू माना जायेगा । इसके अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के अभ्यर्थियों की ज्येष्ठता 1995 से मानी जायेगी। एम० नागराज बनाम भारत संघ[48] के मामले में उक्त संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती दी गईकि इसके द्वाराकेशवानन्द भारती के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा विहित संविधान के श्आधारभूत ढाँचेश को नष्टकिया गया है । उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त संवैधानिक संशोधन अधिनियम, जिसके द्वारा अनु0 16 (4क), (4ख) और 335 में परंतुक जोड़ा गया है, (81वाँ, 82वाँ, एवं 85 वाँ संशोधन अधिनियम,) अनु0 16 (4) के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन नहीं करते हैं । ये संशोधन अधिनियम केवल अनुसूचित जाति और जनजाति पर लागू होते हैं। उक्त संशोधन अनु0 14, 15 और 16 के अंतर्गत निहित समानता को समाप्त नहीं करते हैं । न तो 'सीमा' और न 'पहिचान' की कसौटी का अतिलंघन किया गया है । अतः संविधान के आधारभूत ढाँचे का उल्लंघन नहीं कियागया है । अनु0 16 (4क) और (4ख) राज्य को पिछड़ापन और प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता के आधार पर आरक्षण प्रदान करने की शक्ति प्रदान करते हैं । राज्य आरक्षण देने के लिए बाध्य नहीं है । यदि वह चाहता है तो मात्रात्मक आकड़ों न कि पिछड़ापन और उस वर्ग का राज्य की सेवाओं में प्रतिनिधित्व में अपर्याप्तता के आधार परआरक्षण प्रदान कर सकता है । न्यायालय ने स्पष्ट किया कि आरक्षण अनन्त काल तक नहीं चलना चाहिए । उसकी एक सीमा होनी चाहिए तथा उसे समाप्त करनाचाहिए ।

82 वें संविधान (संशोधन) अधिनियम, 2000 द्वारा अनु0 335 में एक नया परन्तुक जोड़कर यह उपबन्धित किया गया कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षित पदो ंके लिए होने वाली किसी परीक्षा में उनके लिए अर्हता अंकों या मूल्यांकन के मानकों में छूट प्रदान की जा सकती है। अनु0 335 यह कहता है कि उक्तवर्गों के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण करते समय प्रशासन में दक्षता बनाए रखने पर भी ध्यान दियाजाएगा ।

1.8.9 अनुच्छेद 16 (5) – धार्मिक पदों के लिए धर्मसम्बंधी योग्यता

अनुच्छेद 16 (5) अनुच्छेद 16 (1) और (2) का एक और अपवाद है। अनुच्छेद 16 (5) राज्य को किसी धार्मिक या सम्प्रदायिक संस्थाओं के प्रबन्ध के लिए विशेष धर्म यासम्प्रदाय के मानने वाले लोगों की ही नियुक्ति का उपबन्य करने की शक्ति प्रदान करता है ।

1.9 निजी क्षेत्र में आरक्षण

जब भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण से संबंधित प्रावधानों बनाए तो उनके दिमाग में अनुच्छेद 14 के तहत कानूनों का समान संरक्षण एवंहर व्यक्ति के लिए समानता का अधिकार था। इसके लिए राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की उन्नति के लिए और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए सशक्त किया जाना आवश्यक था जो अनुच्छेद 15 (4) के तहत सम्भव किया गया।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 46 प्रावधानित करता है कि राज्य समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा और विशेष रूप में, अनुसूचित जातियों की और अनुसूचित जनजातियों, और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

यह सामाजिक न्याय हमारे समाज, के इन वर्गों के लिए कैसे सुरक्षित किया जा सकता है इस परन्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) सावंत[49] ने ठीक ही कहा है,कि लाभ उठाने क्षमता के बिना समानता का अधिकार समाज के वंचित वर्गों पर एक क्रूर मजाक है। यह सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को उत्तरोत्तर, बढ़ाएगा ही। समानता के अधिकार के अपवाद राज्य को इस अधिकार का लाभ उठाने से वंचितों कोसक्षम करने के लिए है। दो असमान व्यक्तियों के साथ एक व्यवहार उतना ही अन्यायपूर्ण है जितना कि दो समान व्यक्तियों से अलग – अलगव्यवहार। समानता के न्यायशास्त्र के लिए जरूरी है कि नीचे के लोगों को उन लोगों के समकक्ष लाया जाए तो ऊपर है।

तदनुसार, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में केंद्रीय और राज्य सरकारों के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान बनाया गया था। हालांकि यह नीति संविधान के तहत निर्धारित समय के भीतर दलित वर्गों के उत्थान का वांछित प्रभाव हासिल नहीं कर सकी जिसे बाद में संविधान में संशोधन द्वारा संसद द्वारा बढ़ाया गया। लेकिन भले ही मामूली हो समाज की सामाजिक संरचना और इन वर्गों के लोगों की स्थिति में कुछ परिवर्तन तो आया ही है। इन वर्गों के लोग प्रशासनिक सेवाओं जैसे आईएएस और आईपीएस, जो भारत की स्वतंत्रता समय असंभव था, सहित सर्वोच्च सेवाओं में स्थान पा गए हैं। इन वर्गों के बच्चे स्कूलों और कॉलेजों एवं उच्च संस्थानों में पहुॅचे हैं। समाज में भेदभाव कम हुआ है। जाति आधारित भेदभाव की से ग्रस्त समाज की मानसिकता को रातों रात तो बदला नहीं जा सकता है।हो सकता है कि इन प्रावधानों का लाभ अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों से संबंधित लोगों का केवल एक छोटा से प्रतिशत तक ही पहुॅच पाया हो, लेकिन अब वे एक सम्मानजनक मानव जीवन जाते हैं। इस तथ्य से यह साबित

होता है कि अगर इन वर्गों के अधिक लोगों की स्थिति में सुधार सुनिश्चित किया जाना है तो इसके लिए नौकरियों में आरक्षण जारी रहना चाहिए।

मुख्य समस्या यह है कि भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीति को अपनाने के साथ, राज्य अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से एक एक करके अपना दामन छुड़ा रही है। सार्वजनिक क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए समर्पित किया जा रहा है। यहां तक कि उच्च लाभ अर्जित करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, जिन्हें देश और सरकार के लिए एक सम्मान माना जाता है और जो नवरत्न कहे जाते हैं, कोनिजी क्षेत्र को बेचा जा रहा है।

सार्वजनिक क्षेत्र के सिकुड़ने के साथ, आरक्षण के लिए उपलब्ध नौकरियों की संख्या भी काफी सिकुड़ गई है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि राज्य सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा की संविधानिक जिम्मेदारी को कैसे निभाएगा।

अपने संपादकीय में आरक्षण के प्रश्न पर (नवभारत टाइम्स, 2 जून को, 2005) कहते हैं, निसंदेह निजी कंपनियों को उनकी सामाजिक जिम्मेदारियों को पूरा करना चाहिए। लेकिन अनिवार्यसेवाओं में आरक्षण के लिए के लिएविधि बनाना उचित प्रतीत नहीं होता है। संपादकीय औद्योगिक घरानों की, छात्रवृत्ति, स्कूलों को चलाने, विशेष प्रशिक्षण शिविरों और अन्य गतिविधियों के सरकार के साथ संयुक्त कार्यक्रमों के माध्यम से कमजोर वर्गों की मदद करने के लिए पेशकश संदर्भित करता है। दूसरे शब्दों में, वे कमजोर वर्गों की मदद सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में नहीं बल्कि उनके लिए दान के रूप करने को तैयार हैं।

निजी क्षेत्र के,अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए रोजगार सेइनकार कोकिसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। सरकार कोअनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए निजी कंपनियों में नौकरियों के आरक्षण को लागू करने के लिए संसद में एक कानून पारित करना होगा।

नई अर्थव्यवस्था मेंरोजगार मुख्य रूप से उच्च जाति समुदायों के द्वारानियंत्रित किया जा रहा है।संविधान के तहत समता के अधिकार के अंतर्गत समाज के पिछड़े वर्गों के लिए सकारात्मक उपबंध किए गए हैं। कुछ टिप्पणीकार अतीत के भेदभाव के लिए मुआवजे के रूप में इन कार्यक्रमों को देखना पसंद करते हैं। दूसरों के अनुसार ये उपबंध सार्वजनिक संस्थानों में व्यापक भागीदारी या मोटे तौर पर सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए है।

1.10 अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17)

अनुच्छेद 17भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त अस्पृश्यता को समाप्त करता है एवं उसका किसी भी रूप में पालन निषेध करता है । यह किसी भी रूप में अस्पृश्यता का लागू करना दण्डनीय अपराध घोषित करता है ।

अनुच्छेद 17 और 35 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग में संसद् ने अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 पारित किया। इसके अंतर्गत अस्पृश्यता के अपराध के लिए अधिकतम 500 रुपये जुर्माना या 6 माह की सजा या दोनोंसजाएँ साथ–साथ दी जा सकती हैं । अस्पृश्यता (अपराध) संशोधन अधिनियम, 1967 द्वारा इसका नाम को बदलकर सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 कर दिया गया है । इसके अधीन लोकसेवक का यह कर्तव्य होगा कि उक्त अपराधों की जाँच कर समुचित कार्यवाही करे। लोकसेवक द्वारा कर्तव्य की उपेक्षा किए जाने पर यह माना जायेगा कि वह ऐसे अपराध को उत्प्रेरित करता है ।

देवराजी बनाम पद्मन्ना[50] के वाद में मैसूर उच्च न्यायालय ने अपने एक विनिश्चय में अस्पृश्यता का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि इस शब्द का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिये । इसका अर्थ उनसामाजिक कुरीतियों से समझना चाहिये जो भारत वर्ष में जाति–प्रथा के सन्दर्भ में परम्परा से विकसित हुई हैं । पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ[51] के मामले में उच्चतम न्यायालय नेयह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 17 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध ही नहीं वरनप्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भी उपलब्ध है।कर्नाटक राज्य बनाम अप्पाबालू इंगाले[52] के मामले में न्यायालय ने कहा कि अनु0 17 का उद्देश्य समाज के उन पारम्परिक अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलाना है जिनका कोई विधिक महत्व नहींरह गया है और दलितों को समाज के अन्य वर्गो के समान स्थान दिलाना है तथा ऐसे सामाजिक आदर्शोंकी स्थापना करना है जहाँ जाति या धर्म के आधार पर उनके ऊपर कोई निर्योग्यता या निषेध न लगाया जाताहो ।

1.11 उपाधियोंका अन्त (अनुच्छेद 18)

अनुच्छेद 18 भारत में ब्रिटिश शासन–काल में प्रचलित सामंतशाही परम्परा का अन्त कर राज्य के किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी, को उपाधियाँ प्रदानकरने से मना करता है । अनुच्छेद 18 सेवा या विद्या–संबंधी उपाधियों को प्रदान करने से वर्जित नहीं करता है,क्योंकि उनसे व्यक्तियों में देश की सैनिक–शक्ति को मजबूत करने तथा देश की प्रगति के लिए आवश्यक वैज्ञानिक विकास करने का प्रोत्साहन मिलता है ।

अनुच्छेद 18 (2) भारत के किसी नागरिक को किसी विदेशी सरकार से कोई उपाधिस्वीकार करने से मना करता है । खण्ड (3) बिना राष्ट्रपति की सम्मति के, किसी विदेशी व्यक्ति को, जो राज्य के अधीन किसीविश्वसनीय पद पर है, किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करसकता है । खण्ड (4) यह उपबन्धित करता है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी, जो राज्यके अधीन किसी विश्वसनीय पद पर है, किसी विदेशी राज्य से बिना राष्ट्रपति की सम्मति के कोई उपहार, उपाधि, वृत्ति अथवा पद स्वीकार नहीं कर सकता है ।

बालाजी राधवन बनाम भारत संघ[53] के वाद उच्चतमन्यायालय ने कहा कि भारत सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले अलंकरण—भारतरत्न, पद्म विभूषण, पद्य विभूषण, पद्यश्री आदि अनुच्छेद 18 (1) के अन्तर्गत प्रयुक्त 'उपाधि' के अन्तर्गत उपाधि नहीं हैऔर उसका किसी व्यक्ति द्वारा अपने के नाम के पहले या पीछे (ॅनतपिगमे वत चतमपिगमे) के रूप में प्रयोगनहीं किया जा सकता है । इनका राजनीतिक उद्देश्य पूर्ति हेतु या अन्य दुरूपयोग रोकने के लिए न्यायालय ने सुझाव दिया है कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति की सलाह से राष्ट्रीय स्तर पर एक समिति की स्थापना करे जिसमे लोकसभा का स्पीकर, भारत के न्यायमूर्ति और विपक्ष का नेता हो । इसी प्रकार राज्य स्तर पर भी समिति बनाई जाए । यह समिति उन व्यक्तियों के नामों कीसिफारिश करे जिनका राष्ट्रीय समिति अनुमोदन करे । समिति की सिफारिशों को प्रधानमंत्री और राष्ट्रपतिद्वारा अनुमोदित होना चाहिए ।

अनुच्छेद 18 के उपबंध निर्देशात्मक है, आदेशात्मक नहीं । परन्तु संसद् को विधि बनाकर इन उपबन्धों का उल्लंघन के लिए दण्ड का प्रावधान करने की पूरी शक्ति प्राप्त है , हालांकि संसद द्वारा ऐसा कोई विधान अभी तक पारित नहीं किया गया है।

<u>निर्देश :—</u>

1. ए0 आई0 आर0 1951, एस0 सी0 41
2. ए0 आई0 आर0 1980 एस0 सी0 1086
3. ए0 आई0 आर0 1951, एस0 सी0 41
4. ए0 आई0 आर0 1951, एस0 सी0 318
5. ए0 आई0 आर0 1978 एस0 सी0 507
6. ए0 आई0 आर0 1983 एस0 सी0 47
7. (1995) 1 एस0 सी0 सी0 732.
8. (1984) 3 एस0 सी0 सी0 317.
9. ए0 आई0 आर0 1953 एस0 सी0 91
10. ए0 आई0 आर0 1955 एस0 सी0 795
11. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 1473
12. (1985) एस0 सी0 सी0 641.
13. ए0 आई0 आर0 1962 एस0 सी0 723
14. ए0 आई0 आर0 1952 एस0 सी0 75
15. ए0 आई0 आर0 1952 एस0 सी0 75
16. इन री स्पेशल कोर्ट बिल ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 1473
17. (1990) एस0 सी0 सी0 613.
18. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 1829

19. (1992) 3 एस0 सी0 सी0 666.
20. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 1009
21. ए0 आई0 आर0 1952 एस0 सी0 75
22. ए0 आई0 आर0 1960 एस0 सी0 1208
23. ए0 आई0 आर0 1954 एस0 सी0 321
24. (1985) एस0 सी0 244.
25. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 1009
26. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 2045
27. हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 अप्रैल, 2008
28. पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 170
29. वर्तमान में इसमें संशोधन कर उन्नत व्यक्तियों के लिए धन की सीमा 5 लाख निर्धारित की गई है ।
30. ए0 आई0 आर0 1969 एस0 सी0 564
31. ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0 879
32. ए0 आई0 आर0 1993 एस0 सी0 477
33. ए0 आई0 आर0 1962 एस0 सी0 36
34. (1970) 3 एस0 सी0 सी0 567
35. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 2045
36. (1986) 2 एस0 सी0 सी0 679
37. ए0 आई0 आर0 1963 एस0 सी0 649
38. ए0 आई0 आर0 1964 एस0 सी0 179
39. ए0 आई0 आर0 1976 एस0 सी0 490
40. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 29
41. ए0 आई0 आर0 1969 एस0 सी0 564
42. (1984) 3 एस0 सी0 सी0 654
43. ए0 आई0 आर0 1970 एस0 सी0 42
44. (1995) 5 एस0 सी0 सी0 403
45. ए0 आई0 आर0 2009 एस0 सी0 618
46. ए0 आई0 आर0 1999 एस0 सी0 2894
47. ए0 आई0 आर0 1999 एस0 सी0 347
48. ए0 आई0 आर0 2007 एस0 सी0 71

49. The Constitution, Equality and Reservations P.B. Sawant, Mainstream, June 14, 2003
50. ए0 आई0 आर0 1958 मैसूर 84
51. ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0 1473
52. ए0 आई0 आर0 1993 एस0 सी0 1126
53. (1996) 3 एस0 सी0 सी0 361

अभ्यास प्रश्न –

सत्य /असत्य कथन :

1. भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14, 15, 16, 17 एवं 18 के अंतर्गत समता के अधिकार प्रदान किए गए हैं। **सत्य/असत्य**

2.संविधान का अनुच्छेद 17 किसी भी खिताब प्रदान करने से राज्य को प्रतिबंधित करता है। **सत्य/असत्य**

3.अनुच्छेद 14 के अधिकार भारत के नागरिकों व गैर नागरिकों दोनों को प्राप्त है। **सत्य/असत्य**

4.मिठ्ठू बनाम पंजाब राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 303 को असंवैधानिक घोषित कर दिया। **सत्य/असत्य**

5.अनुच्छेद 16 (2) के अंतर्गत सामान्य आधारों के अतिरिक्त दो अन्य आधार 'वंशक्रम' और 'निवास–स्थान' भी शामिल किये गये हैं जो अनुच्छेद 15 में नहीं हैं। **सत्य/असत्य**

6.अनुच्छेद 16(3) संसद् को यह शक्ति प्रदान करता है कि सरकार उचित कारणों के अधीन कुछ सेवाओं को केवल राज्य के निवासियों के लिये आरक्षित कर सकती है। **सत्य/असत्य**

7.अनुच्छेद 18 किसी भी रूप में अस्पृश्यता का लागू करना दण्डनीय अपराध घोषित करता है। **सत्य/असत्य**

8.अनुच्छेद 17 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध ही नहीं वरन प्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भी उपलब्ध है। **सत्य/असत्य**

9.अनुच्छेद 15 एवं 16 के अधिकार भारत के नागरिकों व गैर नागरिकों दोनों को प्राप्त है। **सत्य/असत्य**

10.बालाजी राधवन बनाम भारत संघ[53] के वाद उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारत सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले अलंकरण–भारतरत्न, पद्म विभूषण, पद्य विभूषण, पद्यश्री आदि अनुच्छेद 18 (1) के अन्तर्गत प्रयुक्त 'उपाधि' के अन्तर्गत उपाधि नहीं है। **सत्य/असत्य**

1.12 सारांश

समानता का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है, जो संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद14, 15, 16, 17 और 18 द्वारा प्रदान किया गया है। यह अन्य सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का प्रमुख आधार है।समता न्याय का आधार तत्व है ।संविधान के अनुच्छेद 14 गारंटी देता है कि सभी नागरिकों को समान रूप से देश के कानून द्वारा संरक्षित किया जाएगा।संविधान का अनुच्छेद 15सामाजिक समानता और सार्वजनिक क्षेत्रों के बराबर का उपयोग का अधिकार प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 16 कहता है कि राज्य रोजगार के मामले में भेदभाव नहीं कर सकता।संविधान का अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता की प्रथा समाप्त करता है। अनुच्छेद 18 किसी भी खिताब प्रदान करने से राज्य को प्रतिबंधित करता है।

अनुच्छेद 14 केअधिकार भारत के नागरिकों व गैर नागरिकों दोनों को प्राप्त है। इस प्रकार भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह भारत का नागरिक हो या नहीं समान विधि के अधीन होगा और उसे विधि का समान संरक्षण प्रदान किया जायेगा। इसके विपरीत अनु0 15, 16, 17 एवं 18 के उपबंधों का लाभ केवल नागरिकों को प्राप्त है। साथ ही इसके अंतर्गत विधिक व्यक्ति भी सम्मिलित हैं।

विधि के समक्ष समता की गारंटी उसी के समान है जिसे इंग्लैंड में विधि का शासन कहते हैं। जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसकी अवस्था या पद जो कुछ भी हो देश की सामान्य विधियों के अधीन है और साधारण न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर है।

मेनका गॉधी बनाम भाारत संघ के मामले में न्यायमूर्ति भगवती के अनुसार– 'समता बहुत पहलुओं और बहु आयामों वाली एक गतिशील संकल्पना है और इसे पारंपरिक तथा सैद्धान्तिक सीमाओं में बन्द नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 14राज्य कार्यवाही में मनमानापन का विखण्डन करता है और व्यवहार में समता एवं औचित्यको सुनिश्चित करता है । युक्तियुक्तता का सिद्वान्त जो विधिक रूप और दार्शनिक रूप से समता या अमनमानापन का मर्मभूत तत्व है, व्याप्त है ।' अनेक निर्णयों में न्यायालय ने जोर देकर कहा है कि समता सकारात्मक अधिकार है और विद्यमान असमानताओं को कम करने के लिए राज्य सेअपेक्षा करती है। जैसा कि संविधान में परिकल्पित किया गया है ।

सविधान के अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्व केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोइ विभेद नहीं करेगा ।अनुच्छेद 15 (2)का विस्तार अधिक है क्योंकि यह केवल राज्य के विरुद्व ही नही बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्व भी उपलब्ध हैं ।भारतीय संविधान द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है । अनुच्छेद 15 (3) उपबंधित करता है कि इस अनुच्छेद की कोई बात स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी ।

संरक्षात्मक विभेद का अर्थ है कि राज्य समता के पक्ष में विभेद कर सकता है। जो लोग असमान हैं उन्हें समान बनाने के लिएराज्य से सकारात्मक कार्यवाई की अपेक्षा की जाती है ।जोरसैद्धांतिक समता पर नहीं बल्कि तथ्य की समता पर दिया जाता है।संविधान के अनुच्छेद 16 (1) और (2) में लोक नियोजन के विंषय में अवसर की समता का अधिकार प्रदान किया गया है । अनुच्छेद 16(1) के अनुसार 'राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी'। अनुच्छेद 16(2) अधिकथित करता है, 'राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्रहोगा और न उसमें विभेद किया जाएगा ।

समान कार्य के लिए समान वेतन'अनुच्छेद 14 का लक्ष्य है । रनधीर सिहं बनाम भारत संघ के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 14, 16 और 39 (घ) को एक साथ पढ़ने पर समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार प्राप्त होता है । यदि बिना युक्तियुक्त आधार के दो कर्मचारियों के बीच इस मामले में विभेद किया जाता है तो यह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा ।

इन्द्रा साहनी बनाम भारत संघ (मण्डल आयोग का मामला) के ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अनु0 16 (4) के अधीन आरक्षण,प्रान्नति में नहीं वरन केवल प्रारम्भिक नियुक्तियों के मामले में ही दिया जा सकता है । इस मामले में न्यायालय ने जनरल मैनेजर दक्षिण रेलवे बनाम रंगाचारी, पंजाब राज्य बनाम हीरा लाल, अखिल भारतीय कर्मचारी शोषित संघ बनामभारत संघ, और कन्ट्रोलर एण्ड आडिटर जनरल आँफ इण्डिया, ज्ञान प्रकाश बनाम के० एस० जगन्नाथ, आदि मामलों में दिए निर्णय को उलट दिया है । इन मामलों में यह निर्णय दिया गया था कि अनु0 16 (4) केवल प्रारम्भिक नियुक्तियों तक ही सीमित नहीं है वरन इसमें प्रोन्नति भी आती है अर्थात प्रान्नति में भी आरक्षण किया जा सकता है किन्तु अब अनु0 16 (4.) जोड़कर इन्द्रा साहनी के निर्णय केप्रभाव को समाप्त कर दिया गया है और अब प्रान्नति में भी आरक्षण किया जा सकता है ।

अनुच्छेद 16 का क्षेत्र अनुच्छेद 15 से अधिक विस्तृत है । अनुच्छेद 16 (2) के अंतर्गत सामान्य आधारों के अतिरिक्त दो अन्य आधार 'वंशक्रम' और'निवास–स्थान' भी शामिल किये गये हैं जो अनुच्छेद 15 में नहीं हैं । लोक–सेवाओं के मामले में उक्त आधारों पर कोई विभेद नहीं किया जायगा । इस उपबंध कोसंविधान में समाविष्ट करने का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रवाद को समाप्त कर देश को एक सूत्र में बांधना है।

इस प्रकार अनुच्छेद 16 (4) इस अनुच्छेद 16 (1) और (2) का दूसरा अपवाद है । इसके अनुसार राज्य पिछड़ेहुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय

में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहींहै, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का उपबंध कर सकता है ।

जब भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण से संबंधित प्रावधानों बनाए तो उनके दिमाग में अनुच्छेद 14 के तहत कानूनों का समान संरक्षण एवंहर व्यक्ति के लिए समानता का अधिकार था। इसके लिए राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की उन्नति के लिए और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए सशक्त किया जाना आवश्यक था जो अनुच्छेद 15 (4) के तहत सम्भव किया गया।यह सामाजिक न्याय हमारे समाज, के इन वर्गों के लिए कैसे सुरक्षित किया जा सकता है इस परन्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) सावंत ने ठीक ही कहा है,कि लाभ उठाने क्षमता के बिना समानता का अधिकार समाज के वंचित वर्गों पर एक क्रूर मजाक है। यह सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को उत्तरोत्तर, बढ़ाएगा ही। समानता के अधिकार के अपवाद राज्य को इस अधिकार का लाभ उठाने से वंचितों कोसक्षम करने के लिए है। दो असमान व्यक्तियों के साथ एक व्यवहार उतना ही अन्यायपूर्ण है जितना कि दो समान व्यक्तियों से अलग – अलगव्यवहार। समानता के न्यायशास्त्र के लिए जरूरी है कि नीचे के लोगों को उन लोगों के समकक्ष लाया जाए तो ऊपर है।

मुख्य समस्या यह है कि भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीति को अपनाने के साथ, राज्य अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से एक एक करके अपना दामन छुड़ा रही है। सार्वजनिक क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए समर्पित किया जा रहा है।सार्वजनिक क्षेत्र के सिकुड़ने के साथ, आरक्षण के लिए उपलब्ध नौकरियों की संख्या भी काफी सिकुड़ गई है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि राज्य सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा की संविधानिक जिम्मेदारी को कैसे निभाएगा।

निजी क्षेत्र के,अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए रोजगार सेइनकार को किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। सरकार कोअनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए निजी कंपनियों में नौकरियों के आरक्षण को लागू करने के लिए संसद में एक कानून पारित करना होगा।

अनुच्छेद 17भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त अस्पृश्यता को समाप्त करता है एवं उसका किसी भी रूप में पालन निषेध करता है ।पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय नेयह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 17 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध ही नहीं वरनप्राइवेट व्यक्तियों के विरुद्ध भी उपलब्ध है।कर्नाटक राज्य बनाम अप्पाबालू इंगाले के मामले में न्यायालय ने कहा कि अनु0 17 का उद्देश्य समाज के उन पारम्परिक अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलाना है जिनका कोई विधिक महत्व

नहींरह गया है और दलितों को समाज के अन्य वर्गो के समान स्थान दिलाना है तथा ऐसे सामाजिक आदर्शोंकी स्थापना करना है जहाँ जाति या धर्म के आधार पर उनके ऊपर कोई निर्योग्यता या निषेध न लगाया जाताहो ।

अनुच्छेद 18 भारत में ब्रिटिश शासन–काल में प्रचलित सामंतशाही परम्परा का अन्त कर राज्य के किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी, को उपाधियाँ प्रदान करने से मना करता है । अनुच्छेद 18 सेवा या विद्या–संबंधी उपाधियों को प्रदान करने से वर्जित नहीं करता है,क्योंकि उनसे व्यक्तियों में देश की सैनिक–शक्ति को मजबूत करने तथा देश की प्रगति के लिए आवश्यक वैज्ञानिक विकास करने का प्रोत्साहन मिलता है ।

बालाजी राधवन बनाम भारत संघ के वाद उच्चतमन्यायालय ने कहा कि भारत सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले अलंकरण–भारतरत्न, पद्म विभूषण, पद्य विभूषण, पद्यश्री आदि अनुच्छेद 18 (1) के अन्तर्गत प्रयुक्त 'उपाधि' के अन्तर्गत उपाधि नहीं हैऔर उसका किसी व्यक्ति द्वारा अपने के नाम के पहले या पीछे (ॅनतपिगमे वत चतमपिगमे) के रूप में प्रयोगनहीं किया जा सकता है । इनका राजनीतिक उद्देश्य पूर्ति हेतु या अन्य दुरूपयोग रोकने के लिए न्यायालय ने सुझाव दिया है कि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति की सलाह से राष्ट्रीय स्तर पर एक समिति की स्थापना करे जिसमे लोकसभा का स्पीकर, भारत के न्यायमूर्ति और विपक्ष का नेता हो । इसी प्रकार राज्य स्तर पर भी समिति बनाई जाए । यह समिति उन व्यक्तियों के नामों कीसिफारिश करे जिनका राष्ट्रीय समिति अनुमोदन करे ।

1.13 महत्वपूर्ण शब्दावली

आत्यान्तिक– बिना किसी रोक–टोक या निर्बन्धन के अधीन।

मूल अधिकार– ये वे आधारभूत अधिकार है जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक ही नहीं वरन अपरिहर्य है।

निर्बन्धन–रोक लगाना।

1.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः

(1) सत्य;(2) असत्य; (3) सत्य; (4) सत्य; (5) सत्य; (6) सत्य; (7) असत्य ; (8) सत्य; (9) असत्य; (10) सत्य;

1.15 संदर्भ ग्रन्थ

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी 2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

4.http://www.pucl.org/Topics/Industries-envirn resettlement/2005/reservations-pvt.htm

5.http://shalinikaushikadvocate.blogspot.in/2011/04/blog- post.html

6.http://hi.wikipedia.org/wiki/

1.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

1.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.समता के अधिकार पर एक निबन्ध लिखिए।

2.'सार्वजनिक क्षेत्र के सिकुड़ने के साथ, आरक्षण के लिए उपलब्ध नौकरियों की संख्या भी काफी सिकुड़ गई है। ऐसे में राज्य सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा की संविधानिक जिम्मेदारी को कैसे निभाएगा। ऐसे में निजी क्षेत्र को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी वहन करनी चाहिए। ' उक्त कथन पर अपने विचार लिखिए।

3.अनुच्छेद 16 का क्षेत्र अनुच्छेद 15 से अधिक विस्तृत है । समझाइए।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–2. ''राज्य'' उदारीकरण

इकाई–2. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं प्रसारण का अधिकार;बन्द एवं हड़ताल का अधिकार

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 वाक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

2.3.1 राष्ट्रीय ध्वज फहराना नागरिक का मूल अधिकार

2.3.2 सूचना के अधिकार का अधिनियम, 2005

2.3.3 चुनाव सुधार कानून में संशोधन असंवैधानिक

2.3.4 वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का क्षेत्र विस्तार

2.4 प्रेस की स्वतन्त्रता

2.4.1 इलेक्ट्रोनिक मीडिया पर सरकार का एकाधिकार नहीं

2.4.2 मानहानि के डर से किसी प्रकाशन पर रोक नहीं

2.4.3 पूर्व–अवरोध (च्तम . ब्मदेवतेीपच)

2.4.4 चलचित्रों पर पूर्व–अवरोध

2.5 बन्द एवं हड़ताल का अधिकार

2.5.1 बन्द का आहवान एवं आयोजन असंवैधानिक

2.5.2 हड़ताल का अधिकार

2.6 वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन

2.6.1 निर्बन्धन की युक्तियुक्तता की कसौटी

2.6.2 वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन के आधार (अनुच्छेद 19(2))

2.6.2.1 राज्य की सुरक्षा

2.6.2.2 विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के हित में

2.6.2.3 लोक व्यवस्था के हित में

2.6.2.4 शिष्टाचार या सदाचार के हित में

2.6.2.5 न्यायालय का अवमान

2.6.2.6 मानहानि

2.6.2.7 अपराध–उद्दीपन के मामले में

2.6.2.8 भारत की सम्प्रभुता एवं अखण्डता

2.7 सारांश

2.8 महत्वपूर्ण शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (क) भारत के सभी नागरिकों को वाक–स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का मूल अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 19 के भाग (2) में स्पष्ट किया गया है कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता अबाध नहीं है। सरकार भारत की प्रभुता और अखण्डता, सुरक्षा, विदेशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार, सदाचार के हितों में और न्यायिक अवमानना, अपराध करने को उकसाना आदि स्थिति निर्मित होने की सम्भावना हो तो अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर जरूरत के अनुसार प्रतिबन्ध भी लगा सकती है। यह बात प्रमाणित है कि किसी को भी निर्बाध या अबाध आजादी या स्वतन्त्रता उसे तानाशाह बना देती है। अतः समाज या कानून या संविधान हर बात की सीमा का निर्धारण करता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए देश के दूरदर्शी संविधान निर्माताओं ने बोलने की आजादी देने के साथ ही साफ कर दिया कि जहॉं आप दूसरे की अभिव्यक्ति की आजादी में हस्तक्षेप करते हैं, वहीं से आपकी खुद की सीमा शुरू हो जाती है।

2.2उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगें –

- वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल अधिकार
- वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर निर्बन्धन के आधार
- प्रेस की स्वतन्त्रता
- पूर्व–अवरोध
- बन्द एवं हड़ताल का अधिकार

2.3 वाक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में भारत के नागरिकों को स्वतन्त्रता संबंधी विभिन्न अधिकार प्रदान किये गये है । अनुच्छेद 19 भारत के सब नागरिको को निम्नलिखित छह स्वतंत्रताएँप्रदान करता है–

(क) वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

(ख) शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन करने की स्वतंत्रता

(ग) संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता

(घ) भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता

(ड) भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता और

(च) (44वें संविधान (संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा निरस्त)

(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता ।किसी भी लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था की आधारशिला वाक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है।लोकतान्त्रिक सरकार के समुचित संचालन के लिए आवश्यक जनता की, तार्किक एवं आलोचनात्मक शक्ति को इसके बिना विकसित करना संभव नहीं है।

लावेल बनाम ग्रिफिन[1] में न्यायालय ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को स्पष्ट करते हुए कहा किअभिव्यक्ति की स्वतन्त्रतामें किसी व्यक्ति के विचारों कोकिसी ऐसे माध्यम से अभिव्यक्त करना सम्मिलित है जिससे वह दूसरों तक उन्हें संप्रेषित कर सके । इस प्रकार इनमें संकेतों, अंकों, चिन्हों तथा ऐसी ही अन्य क्रियाओं द्वारा किसी व्यक्ति के विचारों की अभिव्यक्तिसम्मिलित है विचारों का स्वतंत्र प्रसारण ही इस स्वतंत्रता का मुख्य उद्देश्य है । यह भाषण द्वारा या समाचार–पत्रों द्वारा किया जा सकता है । अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है ।

एस० पी० गुप्त और अन्यबनाम भारत का राष्ट्रपति और अन्य[2] में उच्चतम न्यायालय ने कहा है लोकतान्त्रिक सरकार एक खुली सरकार होती है जिसकेविषय में जनता को जानने का अधिकार होता है । रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य[3] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में विचारों के प्रसार की स्वतंत्रता सम्मिलित है।

श्रीनिवास बनाम मद्रास राज्य[4]में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किवाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल अपने ही विचारों के प्रसार की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है । इसमें दूसरों के विचारों के प्रसार एवं प्रकाशन की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है जो प्रेस की स्वतंत्रता द्वारा ही सम्भव है।

इण्डियन एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स बनाम भारत संघ[5] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि 'अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता' चार विशेष उद्देश्यों की पूर्ति करती है– (क) यह व्यक्ति की

आत्मोन्नति में सहायक होती है, (ख) यह सत्य की खोज में सहायक होती है, (ग) यह व्यक्ति के निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करती है, और (घ) यह स्थिरता औरसामाजिक परिवर्तन में युक्तियुक्त सामंजस्य स्थापित करने में सहायक होती है ।
अनु0 19 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल नागरिकों को हीप्राप्त हैं। अनु0 19 में प्रयुक्त नागरिक शब्द इसें स्पष्ट करता है कि इसमें प्रदत्त स्वतंत्रताएँ किसी विदेशी को प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार एक कम्पनी भी नागरिक नहीं है, अतएव वह भी अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदान अधिकारों का दावा नहीं कर सकती है ।

2.3.1 राष्ट्रीय ध्वज फहराना नागरिक का मूल अधिकार

भारत संघ बनाम नवीन जिन्दल[6] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपने मकान पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का प्रत्येक नागरिक का अनु0 19 (1) () के अधीन एक मूल अधिकार है क्योंकि इसके माध्यम से वह राष्ट्र के प्रति अपनीभावनाओं और वफादारी के भाव का प्रकटीकरण करता है किंतु यह अधिकार आत्यन्तिक नहीं है और इसपर अनुच्छेद 19 (2) के तहत युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं ।

2.3.2 सूचना के अधिकार का अधिनियम, 2005

लोकतांत्रिक प्रणाली में सूचना का अधिकार एक अत्यन्त आवश्यक अधिकार है जिससे प्रत्येक नागरिक यह जान सके कि लोकप्राधिकारीगण सरकारी कामकाज कैसे कर रहे हैं । 5 दिसम्बर, 2002 को राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन सरकार द्वारा सूचना की स्वतंत्रता काअधिनियम, 2002 पारित किया गया था । इस अधिनियम को निरस्त करके उसके स्थान पर वर्तमान सूचना के अधिकार का अधिनियम, 2005 पारित किया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य देश के नागरिकों कोलोक प्राधिकारियों के सरकारी कामकाज से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार प्रदानकरना है।
लार्डकर्जन के समय बनाया गया कानून आफिसियल सिक्रेट अधिनियम भी इन्हीं में से एक है। इसके अनुसारसरकारी दस्तावेजों को साधारण जनता से गोपनीय रखने का उद्देश्य देश की सुरक्षा व एकता को बनाये रखना था । किन्तु व्यवहार में वे हर तथ्य को गोपनीय बनाने के फिराक में रहते थे । इसी कारण नागरिकों को नकेवल अपने मामले में बल्कि सार्वजनिक मामलों में भी सच्चाई का पता नहीं चल पाता था ।
वर्तमानअधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक लोक अधिकारी का यह दायित्व होगा कि नागरिकों द्वारा माँगी गई सूचनाएँउसे प्रदान करे तथा सभी दस्तावेजों का विवरण रखे जो परिचालन की

अपेक्षा के अनुरूप हो । इस अधिनियम का उद्देश्य प्रशासन में खुलापन,पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व को बढ़ाना है।[7]

धारा 5 के अनुसार प्रत्येक लोक प्राधिकारी इस अधिनियम केलागू होने के 100 दिन के भीतर इतने केन्द्रीय और राज्य सूचना अधिकारियों की नियुक्ति करेगा जितनेआवश्यक हों । ये सूचना अधिकारी किसी भी व्यक्तियों को सूचना प्रदान करेंगे जो इसके लिए आवेदन दे ।

धारा 6 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो सूचना प्राप्त करने के इच्छुक हैं वह इसके लिए लिखित या इलेक्ट्रोनिक मीडिया द्वाराहिन्दी या अंग्रेजी में लोकसूचना अधिकारी को आवेदन देगा। सूचना अधिकारी आवेदन पाने के पश्चात् यथाशीघ्र किन्तु 30 दिन के भीतर विहित शुल्क के भुगतान पर या तो सूचना देगा अथवा धारा 8 और 9 के अन्तर्गत विहित कारणों के आधार पर इन्कार कर देगा । किन्तु जहाँ सूचना किसी व्यक्ति के प्राण एवं स्वतंत्रता से संबंन्धित है उसे आवेदन के पश्चात् 48 घण्टे के भीतर प्रदान कर दिया जाना चाहिए । धारा 8 और 9 में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनके आधार पर सूचना देने से इन्कार किया जासकता है ।

धारा 12 के अनुसार लोक सूचना अधिकारी के निर्णय से पीड़ित व्यक्ति 30 दिनों के भीतर ऐसे अधिकारी के पासअपील कर सकेगा जिसको विहित किया जाए।

धारा 12, 13 और 14 केन्द्रीय सूचना आयोग के गठन, सेवा शर्तों और पदच्युति से सम्बन्धित उपबंध करता है। । धारा 15, 16 और 17 के अधीन राज्य सूचना आयोग के गठन, उनकी सेवा शर्तें और उनकी पदच्युति से संबंधित उपबन्ध दिए गए हैं ।

धारा 20 के अधीन यह उपबन्ध है कि अगर सूचना अधिकारी बिना उचित कारण के आवेदन लेते हैं या सूचना नहीं देते तो केन्द्रीय सूचना आयोग सन्बन्धित अधिकारी पर 250 रुपये प्रतिदिन की दर से का जुर्माना लगा सकता है जब तकसूचना नहीं प्रदान की जाती है ।

धारा 23 यह उपबन्धित करती है कि इसअधिनियम के अन्तर्गत किसी भी आदेश के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई भी मामला नहीं लाया जा सकता है ।

धारा 24 में केन्दीय सरकार द्वारा दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट गुप्तचर या सुरक्षा संबंधी उन संगठनों का उल्लेख है जिनके विरुद्ध यह अधिनियम लागू नहीं किया जाएगा।

इस विधि के पारित होने से पहले ही उच्चतम न्यायालय ने प्रेस के अधिकार को संविधान के अनु0 19 के अन्तर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अन्तर्गत पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया था किंतु नौकरशाही इसे स्वीकार करने में अड़चने डालती रही । इस अधिनियम के पारित हो जाने से प्रेस की स्वतंत्रता भी निश्चित रूप से सशक्त हुई।

2.3.3 चुनाव सुधार कानून में संशोधन असंवैधानिक

मतदाता का सूचना का अधिकार एक मूल अधिकार अनुच्छेद 19 के अंर्तगत एक मूल अधिकार है। पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिवर्टीजबनाम भारत संघ[8] केवाद में अपने ऐतिहासिक महत्व के फैसले में उच्चतम न्यायालय ने विवादास्पद संशोधित चुनाव सुधार कानून को असंवैधानिक घोषित कर दिया। उच्चतम न्यायालय के तीन सदस्यीय खण्डपीठ (न्यायमूर्ति एम० वी० शाह, न्यायमूर्ति पी० वी० रेड्डी और न्यायमूर्ति डी० एम० धरमाधिकारी) ने अपने निर्णय में कहा कि मतदाता का सूचना का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 मेंप्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार का आवश्यक अंग है और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33 में किया गया संशोधन इसे कम करता है अतः उक्त संशोधन असंवैधानिक है। इस निर्णय के पश्चात् अब उम्मीदवारों को नामांकन पत्र भरते समय निम्नलिखित बातों कीसूचनाएँ देना अनिवार्य हो गया है[9]–

(1) क्या उम्मीदवार को पहले किसी आपराधिक मामले में दोषी ठहराया गया है, दोषमुक्त कियागया है अथवा बरी किया गया है । यदि ऐसा है तो क्या उसे जेल की सजा अथवा जुर्माना कियागया है ।

(2) नामांकन पत्र भरने से 6 मास पहले क्या उम्मीदवार किसी ऐसे अपराध के लंबित मामले मेंआरोपी ठहराया गया है जिसमें दो या उससे अधिक वर्ष की कारावास की सजा का प्रावधानहो और जिसमें आरोप तय किए गए हों या अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया हो । यदि ऐसा हैतो उसका विवरण ।

(3) उम्मीदवार और उसके पति अथवा पत्नी तथा आश्रितों की परिसम्पत्तियों, चल, अचल, बैंकबैलेंस आदि ।

(4) उम्मीदवार की देनदारियाँ यदि कोई हों तो और विशेषकर क्या किसी सार्वजनिक वित्तीयसंस्थान अथवा सरकार की देनदारी बाकी है ।

(5) उम्मीदवार की शैक्षिक योग्यता की जानकारी ।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 33 में किए संशोधन के अनुसार उम्मीदवारों को किसी भी न्यायालय या चुनाव आयोग के आदेश के बावजूद नामांकन भरते समय उक्त सूचनाएं देना अनिवार्य नहीं था।न्यायमूर्ति शाह ने कहा किश्मतदान के अधिकार का कोई अर्थ नहीं जब तक कि नागरिक को अपने उम्मीदवार के पूर्ववृत्त की पूर्ण जानकारी नहीं है ।श

इमैनुअल बनाम केरल राज्य[10] के मामले, (राष्ट्रगान का मामला) में उच्चतमन्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी व्यक्ति को राष्ट्रगान गाने के लिये बाध्य नहीं कियाजा सकता है । यदि उसका धार्मिक विश्वास ऐसा करने की अनुमति नहीं देता है । इस मामले में केरल के एकके ईसाई समाज के जेहोबाज विटनेस समुदाय के कुछ छात्रों को से इस कारण निष्कासित करदिया गया था क्योंकि उन्होंने राष्ट्रगान गाने से इंकार कर दिया था । वे दिखाने के लिये राष्ट्रगान के समयआदरपूर्वक खड़े हो गये पर उन्होंने गायन में भाग नहीं

लिया । निष्कासन के विरुद्धउन्होंने केरल उच्चन्यायालय में याचिका दायर की, जिसने उनकी याचिका खारिज कर दी। उन्होंने उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को उलट दिया और यह निर्णय दिया कि ऐसा कोई कानून नहीं है जिसके अधीन उन्हें राष्ट्रगान गाने के लिए बाध्य किया जा सकता है । निष्कासन के आदेश उनके अनु0 19 (1) (क) में प्रदत्त भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्यता का उल्लंघन करता है अतः अवैध है । अनु0 19 (1) (क) में चुप रहने का अधिकार भी निहित है ।
चुंकि उपराक्त निर्णय से राष्ट्र की एकता और अखण्डता को खतरा हो सकता है, अतःइसके दूरगामी परिणामों को देखते हुए सरकार ने इस विनिश्चय के पुनर्विचारण के लिए उच्चतमन्यायालय में आवेदन दिया है ।

2.3.4 वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का क्षेत्र विस्तार

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग नागरिक के द्वारा भारत की सीमा के भीतर ही नहीं वरन विश्व के किसीभी देश में किया जा सकता है । इसअधिकारको किसी भौगोलिक परिसीमा में बाँधा नहीं जा सकता है । राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के इस अधिकार के प्रयोग पर देश की सीमा के आधार पर रोक लगाना अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण होगा । आधुनिक काल मेंश्वसुधैव कुटुम्बकमश;ळसवइसप्रंजपवदद्धकी धारणा के मध्य भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को देश की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है । मेनका गाँधी बनाम भारत संघ[11] के वाद में न्यायालय ने कहा कि अभिव्यक्ति से तात्पर्य है किसी व्यक्ति से विचारों काआदान–प्रदान करना, चाहे वह विश्व के किसी भी भाग में क्यों न निवास करता हो । उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि यद्यपिविदेश– भ्रमण का अधिकार अनु0 19 के अधीन एक मूल अधिकार नहीं है, किन्तु यदि उसके ले लेने परनागरिक के अनु0 19 के अधिकारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है तो उससे अनु0 19 का अतिक्रमण माना जा सकता है एवं यह तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

2.4 प्रेस की स्वतन्त्रता

राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र की सफलता के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता अपरिहार्य है । समाचार–पत्र विचारों को अभिव्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है । अमेरिका के प्रेस–कमीशन ने प्रेस की स्वतन्त्रता के महत्व के बारे में निमलिखित विचार व्यक्त किये हैं –श्प्रेस की स्वतन्त्रता राजनीतिक स्वतंत्रतताके लिए आवश्यक है । जिस समाज में मनुष्य को अपने विचारों को एक–दूसरे तक पहुँचाने की स्वतंत्रता नहीं है वहाँ अन्य स्वतंत्रताएँ भी सुरक्षित नहीं रह सकती हैं । वस्तुतः जहां वाकस्वातंत्र्य है वहीं स्वतंत्र समाज का प्रारम्भ होता

है और स्वतन्त्रता को बनाये रखने के सभी साधन मौजूद रहते हैं । इसीलिएवाकस्वातंत्र्य को स्वतंत्रताओं में एक अनोखा स्थान प्राप्त है।श

अमेरिकन संविधान की भांति भारतीय संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है । डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान–सभा में इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि प्रेस को कोई ऐसेविशिष्ट अधिकार नहीं प्राप्त हैं जो एक साधारण नागरिक को नहीं प्रदान किये जा सकते हैं । उनके सम्पादक या मैनेजर समाचार–पत्रों द्वारा ही अपने अभिव्यक्ति के अधिकार का प्रयोग करते हैं । इसलिये इसके लिये संविधान में विशेष उपबन्ध की कोई आवश्यकता नहीं है ।

उच्चतम न्यायालय ने साकल पेपर्स लिमिटेड बनाम भारत संघ[12] के मामले में यहनिर्धारित किया है किसमाचार–पत्र विचारों को अभिव्यक्त करने के माध्यम हैं, अतः वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है।

प्रभुदत्त बनाम भारत संघ[13] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रेस की स्वतंत्रता मेंसूचनाओं तथा समाचारों को जानने का अधिकार भी शामिल है । लेकिन प्रेस की जानने की स्वतंत्रताकिसी व्यक्ति पर प्रेस को सूचना अथवा समाचार देने का कोई विधिक कर्तव्य अधिरोपित नहीं करती है । जब नागरिक प्रेस को अपनी इच्छा से कोई बात बताना चाहते हों तभी प्रेस सूचनाएँ जान सकता है।

राज्य बनाम चारुलता जोशी[14] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है किप्रेस को जेल में विचाराधीन कैदियों के साक्षात्कार करने का अबाध अधिकार नहीं है ।

एम० हसन बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार[15]के मामले में वादियों ने आन्ध्र प्रदेश सरकार केमहानिदेशक, कारागार के उस आदेश की विधिमान्यता को चुनौती दी जिसके द्वारा दो मृत्युदण्ड के कैदियों से साक्षात्कार करने से इंकार कर दिया था । अधिकारियों ने इंकार करने के कई कारण बताए थे। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त कारण चुंकि अनु0 19 (2) में विनिर्दिष्ट निर्बन्धनों में उल्लिखित नहीं है । अतः साक्षात्कार देने के लिए सम्मति देने वाले कैदियों को साक्षात्कार करने से रोकना अनु0 19(1) (क) के अधीन अभिव्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन है।

अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय[16]उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रेस की स्वतंत्रता अन्य स्वतंत्रताओं से ऊँचे स्तर की है। अतः उस पर कर लगाने वाले कानून की वैधता की जांच की कसौटी अन्य कर विधानों से अलग होनी चाहिये ।

हमदर्द दवाखाना बनाम भारत संघ[17] के मामले में सरकार ने 'औषधि और जादू–उपचार (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम' पारितकिया । इस अधिनियम का उद्देश्य औषधियों के विज्ञापन को नियन्त्रित करना और बीमारियों को अच्छा करने के लिये बढ़ा–चढ़ा कर गुणगान की गई औषधियों के भ्रमित करने वाले विज्ञापनों को निषिद्ध करना था । इस अधिनियम पर

इस आधार परआपत्ति उठायी गयी कि विज्ञापनों पर प्रतिबन्ध वाक्–स्वतंत्रता पर प्रतिबंध है । उच्चतम न्यायालय नेअधिनियम को विधिमान्य घोषित करते हुए यह अवलोकन किया कि विज्ञापन अभिव्यक्ति का एक माध्यम होते हुए भी प्रत्येक विज्ञापन वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से सम्बन्धित नहीं होता है । प्रस्तुतमामले में विज्ञापन विशुद्ध रूप से व्यापार एवं वाणिज्य से सम्बन्धित है, विचारों के प्रसार से नहीं ।

टाटा प्रेस लिमिटेड बनाम महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड[18] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने हमदर्द दवाखाना के मामले में दिए गए निर्णय के विस्तार को सीमित कर दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि 'वाणिज्यिक भाषण' (विज्ञापन) अनु0 19 (1) (क) के अन्तर्गत भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ही एक रूप है और उस पर केवल अनु0 19 के खण्ड (2) में उल्लिखित आधारों पर ही निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं । विज्ञापन हमारी अर्थव्यवस्था का अहम् भाग है । लोकतान्त्रिक आर्थिक प्रणाली में वाणिज्यिक सूचनाओं का आदान–प्रदान अपरिहार्य है । इसके अभाव में अर्थव्यवस्था पंगु हो सकती है । अतः विज्ञापन के प्रचार प्रसार या प्रकाशन पर लगाया गया कोई भी नियंत्रण या काट–छाँट अनु0 19 (1) (क) के अन्तर्गत प्रदान किए गए मूल अधिकारों को प्रभावित करते हैं ।हमदर्द दवाखाना का निर्णय केवल उन मामलों में लागू होगा जहाँ विज्ञापन किसी ऐसी वस्तु का किया जाता है जो समाज के लिए हानिप्रद है ।

विज्ञापन स्वतंत्र प्रेस का प्राण है । एक लोकतान्त्रिक प्रेस के लिए विज्ञापन एक महत्वपूर्ण उपदान है । प्रेस की स्वतंत्रता औद्योगिक सम्बन्धों को विनियमित करने वाली विधियों के अधीन है । प्रेसभी कारखाना है, इसलिये ऐसे कानून, जो उसमें काम करने वाले श्रमिकों और पक्षकारों की दशाओं के सुधारकी दृष्टि से बनाये जाते हैं, अनुच्छेद 19 (1) (क) का उल्लंघन नहीं करते हैं । श्रमजीवी पत्रकार तथा कर्मचारी एक्ट, 1955 विशेष रूप से प्रेस–कारखानों में कार्य करने वाले कर्मचारियोंएवं पत्रकारों की सेवा–शर्तो को सुधारने के लिए पारित किया गया है । यह उनकी ग्रेच्युटी, कार्य करने केसमय तथा मजदूरी आदि का प्रावधान करता है। उच्चतम न्यायालय ने इस अधिनियम को संवैधानिक घोषित किया है।[19] प्रेस की स्वतंत्रता संसदीय विशेषाधिकारों के भी अधीन है । सर्च लाइट के मामले[20] मेंउच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई समाचार–पत्र किसी सदस्य द्वारा विधान–मण्डल मेंदिये गये भाषण का वह भाग प्रकाशित नहीं कर सकता है जिसे स्पीकर के आदेश द्वारा कार्यवाही से निकाल दिया गया है ।

2.4.1 इलेक्ट्रोनिक मीडिया पर सरकार काएकाधिकार नहीं

सेक्रेटरी मिनिस्ट्री ऑफ इनफारमेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग बनामक्रिकेट एसोसिएशन ऑफ वेस्ट बंगाल[21] में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि क्रिकेट का खेल अभिव्यक्ति का एक माध्यम है एवं अनुच्छेद 19 (1) (क) के भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के अंतर्गत आता है । इस अधिकार के अन्तर्गत मैचों का इलेक्ट्रोनिक मीडिया से प्रसारण करने का अधिकार भी सम्मिलित है । सरकार को मैचों के प्रसारण का कोई एकाधिकार नहीं प्राप्त है।यह अधिकार मैचों के आयोजकों का है जिसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । इस अधिकार पर केवल अनु0 19 (2) में वर्णित आधारों पर ही निर्बन्धन लगाया जा सकता है।न्यायालय ने कहा कि आज इलेक्ट्रोनिक मीडिया दूरदर्शन और रेडियो संचार के बहुत प्रभावी माध्यम है । वायु तरंगें सार्वजनिक सम्पत्ति हैं और उनका प्रयोग सार्वजनिक फायदे के लिए किया जाना चाहिए । इस पर केवल अनु0 19 (2) के अन्तर्गत वर्णित आधारों पर निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं । सरकार इनको विधि द्वाराविनियमित कर सकती है ।सरकार को एक स्वतंत्र स्वायत्त संस्था की स्थापना करनी चाहिये। जिसमें समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि हों जो वायुतरंगों के नियंत्रण एवं प्रयोग को विनियमित करें । अनु0 19 (2) इन मामलों में सरकार को एकाधिकार सृजित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है । टेलीग्राफ एक्ट की धारा 4 का निर्वचन अनु0 19 (1) (क) के अनुरूप किया जाना चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय का उक्त निर्णय एक बहुत ही महत्वपूर्ण निर्णय है क्योंकि यह इलेक्ट्रोनिक माध्यमों, दूरदर्शन तथा रेडियो को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करता है । स्वतंत्र एवं निर्भीक विचारों को अभिव्यक्त की स्वतंत्रतालोकतंत्र की आधारशिला है । टाटा प्रेस लिमिटेड बनाममहानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड[22] में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'वाणिज्यिक भाषण' (विज्ञापन) 19 (1) () (क) के अन्तर्गत भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का रूप है।लोकतन्त्र में स्वतंत्र वाणिज्यिक सूचनाओं का प्रसारण अपरिहार्य है । यह देश की अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है । उस पर केवल अनु0 19 (2) में वर्णित आधारों पर ही निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं ।

2.4.2 मानहानि के डर से किसी प्रकाशन पर रोक नहीं

राजगोपाल बनाम तमिलनाहु राज्य[23](आटोशंकर का मामला) केअपने ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में उच्चतम न्यायालय नेप्रेस की स्वतन्त्रता के संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया है किअधिकारियों की बदनामी होने की आशंका के कारण सरकार को किसी सामग्री के प्रकाशन को रोकनेके लिए पूर्व अवरोध लगाने की विधिक शक्ति नहीं है। लोक अधिकारीगण या उनके सहयोगी जिन्हें ऐसी सामग्री के प्रकाशन परबदनामी की आशंका है कि वे प्रकाशन को रोक नहीं सके हैं, लेकिनयह साबित करने के लिए कि प्रकाशन झूठे तथ्यों पर आधारित थे, वे

प्रकाशन के पश्चात् नुकसानी और मानहानिकी कार्यवाही कर सकते हैं। न्यायालय ने कहा कियदि प्रकाशन अदालत के अभिलेख समेत किसी भी लोक अभिलेख (चनइसपब कवबनउमदज) पर आधारित है तोप्रेस के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है ।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि प्रकाशन सामग्री अदालत के अभिलेख समेत किसी भी लोक अभिलेख पर आधारित होती हो तो उसके किसी भी पहलू के प्रकाशन का विरोध नहीं किया जा सकता है । सरकारी अधिकारियों द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वाह के दौरान किए गए कार्यो तथा आचरण के लिए नुकसानी पाने काअधिकार उन्हें नहीं है चाहे प्रकाशन असत्य तथ्यों और वक्तव्यों पर ही आधारित हो । उन्हें केवल यह साबित करना होगा कि उसने तथ्यों की पर्याप्त जाँच के पश्चात् काम किया है । प्रकाशक को यह साबित करने कीआवश्यकता नहीं है कि जो कुछ उसने लिखा है वह सत्य ही है ।न्यायालय ने यह कहा कि केवल न्यायपालिका, संसद और विधायिका पर यह नियम लागू नहीं होताहै क्योंकि न्यायपालिका को अपनी अवमानना के लिए दण्डित करने का अधिकार मिला है, और शेष दोनों को संविधान के अनु0 105 और 194 के अधीन प्राप्त विशेषाधिकार के फलस्वरूप सुरक्षा मिली हुई है । किन्तु सरकार, स्थानीय अधिकारी और अन्य अंग, और संस्थाएँ जो सरकारी शक्ति का प्रयोग करते हैं, वे मानहानिके लिए नुकसानी का वाद संस्थित नहीं कर सकते हैं ।न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सदाचार के हित में इस नियम का एक अपवाद है अर्थात् बलात्कार की शिकार, यौन हिंसा, अपहरण या उस प्रकार के अन्य अपराध की शिकार महिलाओं केनाम प्रकाशित नहीं किए जायँ । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी को आटोशंकर कीजीवनी को, जैसा कि वह लोक अभिलेख से प्रतीत होती है, और उसकी सहमति के बिना भी प्रकाशित करने का अधिकार है । किन्तु यदि वे इस सीमा से आगे जाकर उसकी जीवनी प्रकाशित करते हैंतो वे उसकी एकान्तता के अधिकार पर आक्रमण करते हैं और वे विधि के अनुसार परिणामों के लिए दायीहोंगे। उच्चतम न्यायालय का निर्णय लोकतंत्र और विधि शासन को सशक्त बनाने में पर्याप्त सहायताकरेगा । प्रेस की स्वतंत्रता समाज की नींव है । समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार से लड़ने में स्वतंत्र प्रेस कीप्रमुख भूमिका है । इसके बावजूद यदि भारतीय प्रेस निर्भय होकर अपनी रचनात्मक भूमिका नहीं निभाता है तो यह उसकी विफलता होगी।[24]

2.4.3 पूर्व–अवरोध (Pre - Censorship)

ब्रजभूषण बनाम दिल्ली राज्य[25] के मामले में सर्वप्रथम प्रेस की स्वतन्तता पर पूर्व– अवरोध कीसंवैधानिकता का प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया । इस मामले में ईस्ट पंजाब पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट, 1947 की धारा 7 के अन्तर्गत दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने दिल्ली के एक साप्ताहिक समाचार–पत्र के विरुद्ध एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार वह सरकारी

एजेन्सियों द्वारा नहीं प्राप्त की गयी सामग्री को प्रकाशित करने से पहले सरकारी परीक्षण केलिए भेजेंगे और उनकी पूर्व–अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् ही उसे प्रकाशित करेंगे । उच्चतम न्यायालय नेउक्त आदेश को असंवैधानिक घोषित कर दिया । न्यायालय ने कहा कि किसी समाचार–पत्र पर पूर्व– अवरोध लगाना प्रेस की स्वतंत्रता पर अनुचितनिर्बंधन है । वीरेन्द्र बनाम पंजाब राज्य[26] एक अन्य मामले में उच्चतमन्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी समाचार–पत्र को तत्कालीन महत्व के विषय पर अपनेविचार प्रकाशित करने से रोकना वाक और अभिव्यक्ति को स्वतन्त्रता पर एक गम्भीर अतिक्रमण है ।एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ[27] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित कियाहै कि ऐसी कोई विधि जो समाचार पत्रों पर पूर्व– अवरोध लगाती है या उनके प्रसारण को कम करती है या उसके आरम्भ किए जाने को रोकतीहै या सरकारी सहायता आवश्यक बना देती है, वह अनुच्छेद 19 (1) (क) में प्रदत्त स्वतंत्रता का अतिक्रमण करती है, अतः अवैधहै।

रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य[28] के वाद में न्यायालय ने उस विधि को अविधिमान्य घोषित कर दिया जिसके द्वारा एक राज्य में एक पत्रिका के प्रसारण पर रोक लगा दी गई थी । बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड बनाम भारत संघ[1] के वाद में सन् 1972 – 73 कीअखबारी कागज–नीति और अखबारी कागज नियन्त्रण आदेश, 1962 द्वाराअखबारी कागज–नीति के अधीन पृष्ठों की अधिकतम संख्या 10 तक सीमित कर दी गयी थी और समान स्वामित्व यूनिट (ब्वउउवद वूदमतेीपच नदपज) को अपने प्राधिकृत कोटे के आपसी अदला–बदली की इजाजत नहीं थी, की विधिमान्यता को संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) और अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण आधार पर चुनौती दी गयी थी।सरकार की ओर से तर्क दिया गया कियह समाचार–पत्र कागज–नीति छोटे–छोटे समाचार–पत्रों के विकास करने और बड़े समाचार–पत्रों के एकाधिकार के संगठन को रोकने में सहायता करने के लिए है । विधायन काउद्देश्य अखबारी कागज के आयात एवं देश में उसके आवण्टन को विनियमित करना है, भले ही उसकेपरिणामस्वरूप परिचालन को कम करने का आनुषंगिक प्रभाव होता है । आनुषंगिक प्रभाव सेप्रेस का मूल अधिकार कम नहीं होगा ।उच्चतम न्यायालय ने अखबारी कागज–नीति कोअसंवैधानिक घोषित कर दिया । न्यायालय ने कहा कि प्रेस की स्वतंत्रता अनु0 19 (1) (क) में प्रदत्त वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक आवश्यक अंग है । प्रेस को बिना किसी पूर्व– अवरोध केबिना निर्बाध प्रसार और परिचालन का अधिकार प्राप्त है । अखबारी कागज–नीति अनुच्छेद 19 (1) की परिधि के भीतर युक्तियुक्त निर्बंधन नहीं है।अखबारी कागज–नीति वादियों के वाक और अभिव्यक्ति के मूल अधिकारों को कम करती है । उन्हें पृष्ठों में वृद्धिअधिकार नहीं दिया गया है । समाचार–पत्रों के समान स्वामित्व यूनिट नये अखबार या नये संस्करण नहींनिकाल सकता ।अखबारी कागज के वितरण के आवरण में सरकारने समाचार–पत्रों के विकास और परिचालन को नियंत्रित करने का प्रयास किया है ।

प्रेस की स्वतंत्रता गुणात्मक और मात्रात्मक दोनो प्रकार की है ।जो अंतर्वस्तु और परिचालन दोनोमें हीनिहितहै। न्यायालय ने कहा कि समाचार–पत्रों के लिए आय का मुख्य स्रोत विज्ञापन है । पृष्ठों में कटौती से न केवल समाचार–पत्रों की आय घटेगी वरन्उसका परिचालन भी घटेगा, क्योंकि उनमें पाठकों के लिए अपेक्षित समाचारों और विचारों के लिए स्थानकम हो जायेगा जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी निर्बन्धित हो जायेगी ।

2.4.4 चलचित्रों पर पूर्व–अवरोध

के0 ए0 अब्बास बनाम भारतसंघ[29] के वाद में सर्वप्रथम चलचित्रों पर पूर्व– अवरोध का प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया । इस मामले में चलचित्र अधिनियम, 1952 की धारा 5 (ब) (2) की संवैधानिकता को चुनौती दी गयी थी। यह धाराकेन्द्रीय सरकार को चलचित्रों के प्रदर्शन के लिए प्रमाण–पत्र देने वाले अधिकारियों के मार्गदर्शन केलिए ऐसे सिद्धान्तों को विहित करने का प्राधिकार देती है जिसे वह उचित समझे । वादी का कहना था यह अनु0 19 द्वारा प्रदत्त वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिक्रमण है क्योंकि अन्य अभिव्यक्ति के साधनों पर ऐसे निर्बन्धन नहीं लगाये गये हैं । उच्चतमन्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चलचित्रों पर पूर्व–अवरोध (च्तम बमदेवतौपच) अनु0 19 (1) (क) और (ख) के अधीन संवैधानिक है। चलचित्रों के निर्माण एवं प्रदर्शन पर पूर्व– अवरोध लोकहित मेंहै । अमेरिका में भी चलचित्रों पर पूर्व–अवरोध को सांविधानिक है।[30]
एक अन्य मामले में वादी ने भोपाल गैस काण्ड पर 'मानव वध से परे' नाम से एक डाक्युमेन्टरी फिल्म बनाई थी । उस फिल्म को 1987 की सबसे अच्छी फिल्म का गोल्डेन लोटस पुरस्कारमिला था । सूचना एवं प्रसारण मंत्री नेयह घोषणा की कि पुरस्कृत फिल्मों को दूरदर्शन पर प्रसारित किया जायेगा । परन्तु प्रसारण के लिए भेजने पर दूरदर्शन ने इसे कई आधारों पर प्रसारित करने से इंकार कर दिया कि फिल्म पुरानी हो गई है, इसकीउपयोगिता समाप्त हो गई है, इसमें नवीनीकरण की आवश्यकता है, उचित और सामंजस्यपूर्ण नहीं है, राजनीतिक दलों ने इस पर अनेक प्रश्न उठाए हैं, और प्रतिकर का प्रश्न न्यायालय के अधीन है । दूरदर्शन के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में याचिका फाइल करने पर न्यायालय ने फिल्म कोप्रसारित करने का आदेश दिया । इस निर्णय के विरुद्ध दूरदर्शन ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की ।उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी को अनु0 19 (1) (क) के अधीन अपनी फिल्म को प्रसारित करने का मूल अधिकार प्राप्त है और दूरदर्शन ने उसकी फिल्म को प्रसारित करने से इन्कार करके उसका उल्लंघन किया था । इस अधिकार के अधीन प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों को समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और फित्यों के माध्यम से प्रसारित करने का अधिकार प्राप्त है । केवल इस आधार परकि उसमें सरकार की आलोचना

दिखाई गई थी उसके प्रसारण को इन्कार करने का कोई कारण नहीं था । फिल्मों पर पूर्व अवरोधसांविधानिक है किन्तु उसका प्रयोग अनु0 19 (2) और चलचित्र अधिनियम की धारा 3 (ख) में विहित सीमाके भीतर हो अर्थात् उसमें निर्बन्धन ठोस आधारों पर लगाया जा सकता है । उसे अनु0 14 के अधीनयुक्तियुक्त होना भी चाहिए ।

1.5 बन्द एवं हड़ताल का अधिकार

1.5.1 बन्द का आहवान एवं आयोजन असंवैधानिक

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) बनाम भरत कुमार और अन्य[31] के मामले के ऐतिहासिक महत्व के निर्णय उच्चतम न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने निर्धारित किया है कि राजनीतिक दलों द्वारा बन्द का आयोजन करना असंवैधानिंकऔर अवैध है। न्यायालय ने कहा कि केरल उच्च न्यायालय द्वारा 'बन्द' और 'हडताल' में किया गया भेदसही है और उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । उच्च न्यायालय ने 'बन्द' और 'हड़ताल' में भेदनागरिकों के मूल अधिकारों पर इनके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर करते हुए कहा कि 'बन्द' से नागरिकों के मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे उनके प्रयोग करने सेवंचित हो जाते हैं जबकि हड़ताल का ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता है । उक्त मामले में केरल चैम्बर्स ऑफ कामर्स के दो नागरिकों ने अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयमें रिट फाइल करके यह निवेदन किया कि वह राजनीतिक दलों द्वारा बन्द के आहवान एवं आयोजन को असंवैधानिक घोषित कर उन्हें रोक दे क्योंकि इससे उनके अनु 19 (1) (क) और अनु0 21 के अधीन मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता था । कम्युनिस्ट पार्टी ने यह कहा कि बन्द का आहवान उसके अनु0 19 (1) (क) के अधीन राजनीतिक दल का मूल अधिकार है ।केरल उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि बन्द के आहवान में नागरिकों को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से यह धमकी दी जाती है कि वे अपनी सभी कार्यकलापों, और पेशों को रोक दें और घर सेबाहर न जाएं अन्यथा उसका परिणाम भयानक होगा । नागरिकों मेंमनोवैज्ञानिक भय व्याप्त हो जाता है जिसके कारण वे अपने मूल अधिकारों का प्रयोग करने से वंचित हो जाते हैं । बन्द के दौरान नागरिकों को उनके नियमित कार्यों से रोका जाता है जो प्रत्यक्षतः उनके मूल अधिकारों का उल्लंघन है ।

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी राजनीतिक दल या संगठन देशभर में उद्योग एवं वाणिज्य को पंगु बनाने का दावा नहींकर सकता है और उनके मत से सहमत न

होनेवाले नागरिकों को अपने मूल अधिकारों के प्रयोग करने या राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों को पालन करने सेरोक सकता हैं । मामला मूलअधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित होने के कारण न्यायालय को वादियों को घोषणात्मक उपचार प्रदान करने की पर्याप्त अधिकारिता प्राप्त है। राज्य द्वारा बन्द को रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया था । इसकोदेखते हुए न्यायालय ने कहा कि उसे बन्द के आहवान एवं आयोजन को असंवैधानिक घोषित करने की पर्याप्त अधिकारिता है क्योंकि बन्द राष्ट्र के हित में नहीं है और इससे राष्ट्र की प्रगति भी अवरुद्ध होती है । न्यायालय ने यह घोषणा की कि[32]–

श्हम राजनीतिक दलों यासगठनों द्वारा बन्द के समय होने वाली प्राइवेट और पब्लिक सम्पत्ति के विनाश की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं हम इस मत के हैं कि जो राजनीतिक दल या संगठन ऐसे बन्द काआहवान आयोजित करते हैं वे नागरिकों को इसके परिणामस्वरूप पहुँची हानि के लिए वे राज्य को प्रतिकर देनेके लिए दायी हैं । राज्य ऐसे बन्द के परिणामस्वरूप हुई हानि की क्षतिपूर्ति के लिए कदम उठाने के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता है ।श

प्रदर्शन या धरना–प्रदर्शन भी अभिव्यक्ति के साधन हैं ।कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य[33] के वाद में न्यायालय ने निर्धारित किया कि शांतिपूर्णप्रदर्शन या धरना–प्रदर्शन अनु0 19 (1) (क) तहत संरक्षण प्राप्त हैं। हिंसात्मक औरउच्छृंखल नहीं।

2.5.2 हड़ताल का अधिकारः–

हड़ताल करने का अधिकार अनु0 19 (1) (क) के तहत मूल अधिकार नहीं है, अतः किसी भी व्यक्ति को हड़ताल का निर्बाध अधिकार नहीं है, उसे हड़ताल करने से रोका जा सकता है। प्रदर्शन जब हड़ताल कारूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता है।[34]

2.6 वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन

ए0 के0 गोपालन[35] के मामले में न्यायाधिपति श्री पतंजलि शास्त्री ने कहा है कि श्मनुष्य एक विचारशील प्राणी होने के नाते बहुत–सी चीजों के करनेकी इच्छा करता है, लेकिन एक नागरिक समाज में उसे अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना पड़ता है और दूसरों का आदर करना पड़ता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) से (6) के अधीन राज्य को भारत की प्रभुता और अखण्डता की सुरक्षा, लोक–व्यवस्था, शिष्टाचार आदि के हितों की रक्षा के लिएयुक्तियुक्त निर्बन्धन लगाने की शक्ति प्रदान की गयी है।श

युक्तियुक्त निर्बन्यन के लिए आवश्यक हैं कि (क) निर्बन्धन केवल अनु0 19 के खण्ड (2) से (6) के अधीन दिये गये आधारों पर ही लगाये जासकते हैं एवं (ख) निर्बन्धन युक्तियुक्त होना चाहिये

2.6.1 निर्बन्धन की युक्तियुक्तता की कसौटी

निर्बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं इसका निर्धारण करना न्यायालयों का कार्य. है । इसके अर्न्तगत न्यायालयों के पुनर्विलोकन की शक्ति को अत्यन्त विस्त्रत है । अनेक विनिश्चयों में उच्चतम न्यायालय ने कुछसामान्य नियम स्थापित किये हैं, जिनके आधार पर निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता की जाँच की जाती है । कोई निर्बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं, इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय देने की शक्तिविधानमण्डल को नहीं वरन् न्यायालयों को है।[36]लगाये गये निर्बन्धनों और उस उद्देश्य में तर्कसंगत सम्बन्ध होना चाहिए जिसेविधि बनाकर विधानमण्डल प्राप्त करना चाहता है । स्वेच्छाचारी और आवश्यकता से अधिकनिर्बन्धन हाने की दशा में विधि को अवैध घोषित किया जा सकता है ।युक्तियुक्तता का निर्धारण प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर ही किया जा सकता है । इसके लिए कोई निश्चित मानदण्ड नहीं हैं। निर्बधनों को मौलिक और प्रक्रियात्मक विधि दोनों दृष्टिकोणों से युक्तिसंगत होना चाहिये।[37]राज्य की नीति के निदेशक–तत्वों में निहित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लगाये गये निर्बन्धनयुक्तियुक्तता की कसौटी माने जा सकते हैं।[38]निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता के निर्धारण में न्यायालयों कोवस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना चाहिये, व्यक्तिनिष्ठ नहीं । वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध केवल अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) से (6) के अन्तर्गत उल्लिखित आधारों पर ही लगाये जा सकते हैं । किसीअन्य आधार पर नहीं।[39]न्यायालयकेवल निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता का निर्धारण कर सकते हैं, विधि कीयुक्तियुक्तता का निर्धारण करना न्यायालयों का कार्य नहीं है।[40]

2.6.2 वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन के आधार(अनुच्छेद 19 (2)

अनुच्छेद 19 (2) में वर्णित निमलिखित आधारों के आधार पर नागरिकों की वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं–

(1) राज्य की सुरक्षा;

(2) विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के हित में;

(3) लोक व्यवस्था;

(4) शिष्टाचार या सदाचार के हित में;

(5). न्यायालय–अवमान;

(6) मानहानि;

(7) अपराध उद्दीपन के मामले में;

(8) भारत की प्रभुता एवं अखण्डता ।

2.6.2.1 राज्य की सुरक्षा

राज्य की सुरक्षा सर्वोपरि है । राज्य की सुरक्षा के हित में नागरिकों के वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं । 'राज्य सुरक्षा' पदावली लोक व्यवस्था के गम्भीर तथा बिगड़े हुए रूप को दर्शाती है, जैसे– आन्तरिक विक्षोभ या विद्रोह, राज्य के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करना आदि। ऐसे भाषण या अभिव्यक्तियाँ जो कत्ल जैसे हिंसात्मक अपराध को उकसाती या प्रोत्साहित करती हैं, राज्य की सुरक्षा को खतरा पहुँचाने वाली समझी जायेंगी । जब उनसे राज्य की सुरक्षा पर आघात पहुँचने की आशंका हो तभी नागरिकों के वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं।[41]

2.6.2.2 विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के हित में –

संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951द्वारा अनु0 19 (2) मेंनिर्बन्धन का यह आधार जोड़ा गया है । संविधान के प्रयोजन के लिए 'विदेशी राज्य' में कामनवेल्थ के सदस्य सम्मिलित नहीं हैं । पाकिस्तान कामनवेल्थ का सदस्य है। अतः इस प्रयोजन के लिए उसे विदेशी राज्य नहीं माना जा सकता है एवं इस आधार पर वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर निर्बन्धन नहीं लगाया जा सकता कि वह पाकिस्तान या अन्य कामनवेल्थ के देशों के प्रतिकूल है।[42]

2.6.2.3 लोक व्यवस्था के हित में

रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य के मामले में उच्चतमन्यायालय द्वारायह अभिनिर्धारित किया गया था कि लोक व्यवस्था का साधारण भंग, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाने का आधार नहीं है ।लोक व्यवस्था से अभिप्राय उस शान्ति व्यवस्था से है जो किसी राजनैतिक समाज के सदस्यों के बीच सरकार द्वाराप्रवर्तित आन्तरिक विनियमों के फलस्वरूप विद्यमान है। 'लोक व्यवस्था' एक अति विस्तृत अर्थ वाली पदावलीहै ।उक्त निर्णय के प्रभाव को दूर करने के लिए प्रथम संविधान संशोधन, 1951 द्वारा इस शब्द को अनुच्छेद 19 (2) मेंजोड़ा गया। बाबूलाल पराटे बनाम महाराष्ट्र राज्य[43] के मामले उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144, जो मजिस्ट्रेट को जुलूसों और सभाओं पर अग्रिम निर्बन्धन लगाने की शक्ति प्रदान करती है, अनु0 19 (1) (क) का अतिक्रमण नहींकरती है,

क्योंकि इसके अन्तर्गत दिये गये आदेशों की प्रकृति अस्थायी है।इस प्रकार लोक व्यवस्था को कायम रखने के लिए सरकार अग्रिमकार्यवाही भी कर सकती है।

2.6.2.4 शिष्टाचार या सदाचार के हित में

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 292 से लेकर 294 तक नैतिकता एवं शिष्टता के हित में वाक् औरअभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाने का उपबन्ध करती है । किसी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक स्थानों परये धाराएँ अश्लील प्रकाशनों को बेचने, प्रचार या प्रदर्शन करने, अश्लील कृत्यों को करने, अश्लील गानों याअश्लील भाषणों आदि का प्रतिषेध करती हैं ।सरकारऐसे कथनों या प्रकाशनों पर, जिनसे लोक–नैतिकता एवं शिष्टता परप्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, अनुच्छेद 19 (2) के तहत निर्बन्धन लगा सकती है। नैतिकता एवं शिष्टता शब्दावली की परिभाषा न तो संविधान में दी गयी है और न ही किसी अधिनियम में । एक आंग्ल वाद आर० बनाम हिकलिन[44] में दी हुई परिभाषा को भारतीय न्यायालयों द्वारा अपनाया गया है । उक्त वाद में न्यायालय ने 'अश्लीलता' की परिभाषा निम्न शब्दों में की है–श्ऐसे कथन और प्रकाशन सामान्यतया अश्लील समझे जाते हैं जो उन व्यक्तियों के मन में, जिनकेहाथ में वे पड़जाते हैं, अनैतिक एवं भ्रष्ट विचारों को पैदा करते हैं ।श्नैतिकता कास्तर समय और स्थान के साथ–साथ बदलता रहता है । इसका कोई निश्चित मानदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

2.6.2.5 न्यायालय का अवमान–

न्यायालय–अवमान कीभी संविधान में कोई परिभाषा नहीं दी गयी है ।न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2 के अनुसार 'न्यायालय– अवमान' के अंतर्गत सिविल और आपराधिक दोनों प्रकार के अवमान शामिल हैं । 'सिविल– अवमान' का अर्थ है जानबूझकर न्यायालय के फैसले, डिक्री, निदेश, आदेश,रिट या उसकी किसी प्रक्रिया की अवहेलना या न्यायालय को दिये गये वचन का जानबूझकर भंग करना । 'आपराधिक अवमान' से तात्पर्य ऐसे प्रकाशनों (चाहे वे मौखिक या लिखित या किसी माध्यम से हों) से है जो न्यायालयों या न्यायाधीशों की निन्दा की प्रवृत्ति वाला या उसके प्राधिकार को कम करने वाला हो, या जो पक्षपात का लांछन लगाता हो, या न्यायिक कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करता हो या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति वाला हो या किसी भी प्रकार से न्याय प्रशासन के कार्य में हस्तक्षेप करता हो या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति वाला हो या इस कार्य में अवरोध करता हो या अवरोध की प्रवृत्ति वाला हो । परन्तु निम्नलिखित कृत्यों से न्यायालय का अवमान नहीं होता है–

(क) निर्दोष प्रकाशन और उसका विवरण,

(ख) न्यायिक कार्यवाहियों का उचित और सही प्रकाशन,

(ग) न्यायिक कृत्य की उचित आलोचना,

(घ) न्यायाधीशों के विरुद्ध ईमानदारी से की हुई शिकायत,

(च) वाद की न्यायिक कार्यवाहियों का सही प्रकाशन ।

'न्यायालय अवमान' के लिए अधिनियम में 6 महीने का कारावास या 200 रुपये तक का आर्थिकदण्ड या दोनों दिया जा सकता है । अधिनियम के अधीन न्यायाधीशों, मजिस्ट्रेटों या न्यायिक कृत्य करने वालेव्यक्तियों को भी अपने ही न्यायालय के अवमान के लिए साधारण व्यक्तियों की ही भांति दण्डित किया जासकता है।

2.6.2.6 मानहानि

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 499 मानहानि से सम्बन्धित है ।ऐसा कोई भी कथन या प्रकाशन, जो किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाताहै, मानहानि कहलाता है । ऐसे कथन का प्रकाशन मानहानि कहा जाता है जिससे कोई व्यक्ति समाज में घृणा, हँसी या अपमान का पात्र बनता है । इस प्रकार के कथन या प्रकाशन पर अनुच्छेद 19 (2) के अन्तर्गत युक्तियुक्त प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं । न्यायालयों ने विभिन्न वादों में यह अभिनिर्धारित किया है कि यह धारा वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाती है ।

2.6.2.7 अपराध–उद्दीपन के मामले में –

संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा यह आधार अनुच्छेद 19 (2) में जोड़ा गयाहै 'उद्दीपन' शब्द के अन्तर्गत क्या सम्मिलित है, इसका निर्धारणन्यायालय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर करेंगें। अपराध को उकसाने वाले भाषणों को विधि द्वारा रोका एवं दण्डित किया जा सकता है ।

2.6.2.8 भारत की सम्प्रभुता एवं अखण्डता

संविधान के सोलहवें संशोधन अधिनियम, 1963 द्वारा यह आधार अनुच्छेद 19 (2) में जोड़ा गया है । इस आधार के द्वारा भारत की अखण्डता एवं सम्प्रभुता पर किसी प्रकार की आँच आने या भारत के किसी भाग को संघ से पृथक् होने के लिए उकसाने वालेकथनों के प्रकाशन पर निर्बन्धन लगाया जा सकता है।

निर्देश :

54. (1938), 303 यू0 एस0 444
55. ए0 आई0 आर0 1992 एस0 सी0 14
56. ए0 आई0 आर0 1950 एस0 सी0 124
57. ए0 आई0 आर0 1951 मद्रास 79
58. (1985) 1 एस0 सी0 सी0 641
59. ए0 आई0 आर0 2004 एस0 सी0 1559
60. पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 179
61. ए0 आई0 आर0 2004 एस0 सी0 2112
62. पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 180
63. (1986) 3 एस0 सी0 सी0 615
64. ए0 आई0 आर0 1978 एस0 सी0 597
65. ए0 आई0 आर0 1962 एस0 सी0 305
66. ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0 6
67. ए0 आई0 आर0 1999 एस0 सी0 1379
68. ए0 आई0 आर0 1998 आन्ध्र प्रदेश (पूर्णपीठ)
69. (1994) 2 एस0 सी0 सी0 434
70. ए0 आई0 आर0 1960 एस0 सी0 554
71. (1995) 5 एस0 सी0 सी0 138
72. एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ, ए0 आई0 आर0 1958 एस0 सी0 578
73. शर्मा एम0 एण्ड एम0 बनाम श्रीकृष्ण सिन्हा, ए0 आई0 आर0 1959 एस0 सी0 395
74. (1995) 2 एस0 सी0 सी0 161
75. (1995) 5 एस0 सी0 सी0 138
76. (1994) 6 एस0 सी0 सी0 632
77. पाण्डे, डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 192
78. ए0 आई0 आर0 1950 एस0 सी0 129
79. ए0 आई0 आर0 1957 एस0 सी0 896
80. ए0 आई0 आर0 1958 एस0 सी0 578
81. ए0 आई0 आर0 1950 एस0 सी0 129
82. ए0 आई0 आर0 1971 एस0 सी0 481
83. यू0 एम0 पैरामाउण्ट पिक्चर्स, 334 यु0 एस0, पृष्ठ 181

84. ए0 आई0 आर0 1998 एस0 सी0 184

85. पाण्डे, डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 193

86. ए0 आई0 आर0 1972 एस0 सी0 1164

87. ओ०के० घोष बनाम इ० एक्स० जोसेफ, ए0 आई0 आर0 1973 एस0 सी0 812 तथा राधेश्याम बनाम पी० एम० जी० नागपुर, ए0 आई0 आर0 1965 एस0 सी0 311

88. ए0 आई0 आर0 1951 एस0 सी0 27

89. चिन्तामणि राव बनाम मध्य प्रदेश, ए0 आई0 आर0 1951 एस0 सी0 118

90. डा0 खरे बनाम पंजाब राज्य, ए0 आई0 आर0 1950 एस0 सी0 211

91. बम्बई राज्य बनाम बालसारा, ए0 आई0 आर0 1951 एस0 सी0 318

92. रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, ए0 आई0 आर0 1952 एस0 सी0 124

93. एन0 बी0 खरे बनाम दिल्ली राज्य, ए0 आई0 आर0 1950 एस0 सी0 211

94. बिहार राज्य बनाम शैलबाला, ए0 आई0 आर0 1952 एस0 सी0 329

95. जगन्नाथ बनाम भारतसंघ, ए0 आई0 आर0 1960 एस0 सी0 625

96. ए0 आई0 आर0 1961 एस0 सी0 884

97. (1868) एल0 आर0 3 क्यू0 बी0 360

अभ्यास प्रश्न

1.वाक एवं स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति पर निम्न अनुच्छेद के अधीन निर्बन्धन आरोपित किए गये हैं :–

क. 19 (1)

ख. 19 (1) (क)

ग.19 (2)

घ.19 (2) से (6) तक

2.वाक एवं स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति का मूल अधिकार निम्न को प्राप्त है–

क.नागरिकों को

ख.विधिक व्यक्तित्व को

ग.नागरिकों एवं गैर नागरिकों दोनो को

3.रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य वाद के निर्णय के प्रभाव को दूर करने के लिए अनुच्छेद 19(2) में निम्न शब्दावली जोड़ी गयी।

क.विदेशी राज्यों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्धों के हित में

ख.लोक व्यवस्था

ग.अपराध उद्दीपन

घ.भारत की सम्प्रभुता एवं अखण्डता

4.संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा अनुच्छेद 19(2) के अन्तर्गत निम्न शब्दावली/शब्दावलियों को जोड़ा गया।

क.विदेशी राज्यों के साथ सुरक्षा के हित में

ख. लोक व्यवस्था

ग.अपराध–उद्दीपन

घ.उपरोक्त सभी

5.भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को देश की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। अभिव्यक्ति से तात्पर्य किसी व्यक्ति से विचारों का आदान प्रदान करना है चाहे वह विश्व के किसी भाग में निवास करता हो, उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्न वाद में किया गया–

क.रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य

ख.मेनका गांधी बनाम भारत संघ

ग.नवीन जिन्दल बनाम भारत संघ

घ.एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स बनाम भारत संघ

6.भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) बनाम भरत कुमार एवं अन्य के वाद में यह निर्धारित किया गया कि –

क.राजनीतिक दलों द्वारा बन्द का आयोजन असंवैधानिक और अवैध है।

ख.राजनीतिक दलों द्वारा बन्द का आहवान अनुच्छेद 19 (1) (क) के तहत मूल अधिकार है।

ग.न्यायालय ने बन्द एवं हड़ताल में भेद स्पष्ट किया।

घ.क एवं ग दोनों

7.निम्न वाद प्रेस की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है–

क.रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य

ख.ब्रजभूषण बनाम दिल्ली राज्य

ग.उपरोक्त दोनों

घ.उपरोक्त में कोई नहीं।

8.निम्न में से कौन सा कथन सत्य है–

क.हड़ताल का अधिकार अनुच्छेद 19 (1) (क) के अधीन एक मूल अधिकार है।

ख.वाणिज्यिक भाषण (विज्ञापन) भाषण एवं अभिव्यक्ति का ही रूप है।

ग.समाचार पत्रों को विधान मण्डल की प्रत्येक कार्यवाही को प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

घ.प्रेस की स्वतन्त्रता पूर्व अवरोध के अन्तर्गत है।

9.निम्न में कौन सा कथन असत्य है–

क.राष्ट्रीय ध्वज फहराना नागरिक का मूल अधिकार है।

ख.वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त है।

ग.वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर लोक व्यवस्था के हित में निर्बन्धन लगाया जा सकता है।

घ.चलचित्रों पर पूर्व अवरोध असंवैधानिक है।

2.7 सारांश :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में भारत के नागरिकों को स्वतन्त्रता संबंधी विभिन्न अधिकार प्रदान किये गये है ।किसी भी लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था की आधारशिला वाक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है।लोकतान्त्रिक सरकार के समुचित संचालन के लिए आवश्यक जनता की, तार्किक एवं आलोचनात्मक शक्ति को इसके बिना विकसित करना संभव नहीं है।विचारों का स्वतंत्र प्रसारण ही इस स्वतंत्रता का मुख्य उद्देश्य है । यह भाषण द्वारा या समाचार–पत्रों द्वारा किया जा सकता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है ।इण्डियन एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि 'अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता' चार विशेष उद्देश्यों की पूर्ति करती है– (क) यह व्यक्ति की आत्मोन्नति में सहायक होती है, (ख) यह सत्य की खोज में सहायक होती है, (ग) यह व्यक्ति के निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करती है, और (घ) यह स्थिरता औरसामाजिक परिवर्तन में युक्तियुक्त सामंजस्य स्थापित करने में सहायक होती है ।अनु0 19 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल नागरिकों को हीप्राप्त हैं। अनु0 19 में प्रयुक्त नागरिक शब्द इसें स्पष्ट करता है कि इसमें प्रदत्त स्वतंत्रताएँ किसी विदेशी को प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार एक कम्पनी भी नागरिक नहीं है, अतएव वह भी अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदान अधिकारों का दावा नहीं कर सकती है ।

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग नागरिक के द्वारा भारत की सीमा के भीतर ही नहीं वरन विश्व के किसीभी देश में किया जा सकता है । इस अधिकारको किसी भौगोलिक परिसीमा में बाँधा नहीं जा सकता है । राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के इस अधिकार के प्रयोग पर देश की सीमा के आधार पर रोक लगाना अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण होगा । आधुनिक काल में"वसुधैव कुटुम्बकम"(Globlization)की धारणा के मध्य भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को देश की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है । मेनका गाँधी बनाम भारत संघ[11] के वाद में

न्यायालय ने कहा कि अभिव्यक्ति से तात्यर्य है किसी व्यक्ति से विचारों काआदान–प्रदान करना, चाहे वह विश्व के किसी भी भाग में क्यों न निवास करता हो ।

लोकतांत्रिक प्रणाली में सूचना का अधिकार एक अत्यन्त आवश्यक अधिकार है जिससे प्रत्येक नागरिक यह जान सके कि लोकप्राधिकारीगण सरकारी कामकाज कैसे कर रहे हैं । 5 दिसम्बर, 2002 को राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन सरकार द्वारा सूचना की स्वतंत्रता का अधिनियम, 2002 पारित किया गया था । इस अधिनियम को निरस्त करके उसके स्थान पर वर्तमान सूचना के अधिकार का अधिनियम, 2005 पारित किया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य देश के नागरिकों कोलोक प्राधिकारियों के पास सरकारी कामकाज से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार प्रदानकरना है ।

राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र की सफलता के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता अपरिहार्य है । समाचार–पत्र विचारों को अभिव्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है ।

टाटा प्रेस लिमिटेड बनाम महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि 'वाणिज्यिक भाषण' (विज्ञापन) अनु0 19 (1) (क) के अन्तर्गत भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ही एक रूप है और उस पर केवल अनु0 10 के खण्ड (2) में उल्लिखित आधारों पर ही निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं । विज्ञापन हमारी अर्थव्यवस्था का अहम् भाग है । लोकतान्त्रिक आर्थिक प्रणाली में वाणिज्यिक सूचनाओं का आदान–प्रदान अपरिहार्य है । इसके अभाव में अर्थव्यवस्था पंगु हो सकती है । अतः विज्ञापन के प्रचार प्रसार या प्रकाशन पर लगाया गया कोई भी नियंत्रण या काट–छाँट अनु0 19 (1) (क) के अन्तर्गत प्रदान किए गए मूल अधिकारों को प्रभावित करते हैं ।

विज्ञापन स्वतंत्र प्रेस का प्राण है।एक लोकतान्त्रिक प्रेस के लिए विज्ञापन एक महत्वपूर्ण उपदान है । प्रेस की स्वतंत्रता औद्योगिक सम्बन्धों को विनियमित करने वाली विधियों के अधीन है । प्रेसभी कारखाना है, इसलिये ऐसे कानून, जो उसमें काम करने वाले श्रमिकों और पक्षकारों की दशाओं के सुधारकी दृष्टि से बनाये जाते हैं, अनुच्छेद 19 (1) (क) का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

किसी समाचार–पत्र को तत्कालीन महत्व के विषय पर अपनेविचार प्रकाशित करने से रोकना वाक और अभिव्यक्ति को स्वतन्त्रता पर एक गम्भीर अतिक्रमण है ।एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित कियाहै कि ऐसी कोई विधि जो समाचार पत्रों पर पूर्व– अवरोध लगाती है या उनके प्रसारण को कम करती है या उसके आरम्भ किए जाने को रोकतीहै या सरकारी सहायता आवश्यक बना देती है, वह अनुच्छेद 19 (1) (क) में प्रदत्त स्वतंत्रता का अतिक्रमण करती है, अतः अवैध है।फिल्मों पर पूर्व अवरोधसांविधानिक है किन्तु उसका प्रयोग अनु0 19 (2) और चलचित्र अधिनियम की धारा 3

(ख) में विहित सीमाके भीतर हो अर्थात् उसमें निर्बन्यन ठोस आधारों पर लगाया जा सकता है । उसे अनु0 14 के अधीनयुक्तियुक्त होना भी चाहिए ।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) बनाम भरत कुमार और अन्य के मामले के ऐतिहासिक महत्व के निर्णय उच्चतम न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने निर्धारित किया है कि राजनीतिक दलों द्वारा बन्द का आयोजन करना असंवैधानिंक और अवैध है।'बन्द' से नागरिकों के मूल अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे उनके प्रयोग करने सेवंचित हो जाते हैं जबकि हड़ताल का ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता है ।

प्रदर्शन या धरना–प्रदर्शन भी अभिव्यक्ति के साधन हैं ।कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य के वाद में न्यायालय ने निर्धारित किया कि शांतिपूर्ण प्रदर्शन या धरना–प्रदर्शन अनु0 19 (1) (क) तहत संरक्षण प्राप्त हैं। हिंसात्मक औरउच्छृंखल नहीं।

हड़ताल करने का अधिकार अनु0 19 (1) (क) के तहत मूल अधिकार नहीं है, अतः किसी भी व्यक्ति को हड़ताल का निर्बाध अधिकार नहीं है, उसे हड़ताल करने से रोका जा सकता है। प्रदर्शन जब हड़ताल कारूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता है।

ए0 के0 गोपालन के मामले में न्यायाधिपति श्री पतंजलि शास्त्री ने कहा है कि श्मनुष्य एक विचारशील प्राणी होने के नाते बहुत–सी चीजों के करनेकी इच्छा करता है, लेकिन एक नागरिक समाज में उसे अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना पड़ता है और दूसरों का आदर करना पड़ता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) से (6) के अधीन राज्य को भारत की प्रभुता और अखण्डता की सुरक्षा, लोक–व्यवस्था, शिष्टाचार आदि के हितों की रक्षा के लिएयुक्तियुक्तनिर्बन्धन लगाने की शक्ति प्रदान की गयी है।श

2.8 महत्वपूर्ण शब्दावलीः–

आत्यान्तिक– बिना किसी रोक–टोक या निर्बन्धन के अधीन।

मूल अधिकार– ये वे आधारभूत अधिकार है जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक ही नहीं वरन अपरिहार्य है।

निर्बन्धन– रोक लगाना। युक्तियुक्त – जिसका उचित आधार हो।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) ग; (2) क; (3) ख; (4) घ; (5) ख; (6) घ; (7) ग; (8) ख; (9) घ;

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी

2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

4.http://www.janokti.com/discussion-suggestions

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.'किसी भी लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था की आधारशिला वाक और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है।' टिप्पणी कीजिए।

2.प्रेस की स्वतंत्रता पर एक निबन्ध लिखिए।

3. वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किन आधारों पर निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं?

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–2. "राज्य" उदारीकरण

इकाई–3. राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को एवं मूल कर्तव्यों को मूल अधिकारों के साथ समझना

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 राज्य की नीति के निदेशक तत्व

3.3.1 मूल अधिकार एवं निदेशक तत्व

3.3.2 नीति–निदेशक तत्वों का लागू करना राज्य का संवैधानिक कर्तव्य

3.3.3 राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का कार्यरूप में अनुपालन

3.4 मूल कर्तव्य

3.4.1मूल कर्तव्य एवं मूल अधिकार

3.5 सारांश

3.6 महत्वपूर्ण शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रन्थ

3.9 सहायक/उपयोगी सामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इकाई 5 एवं 6 में आपने समता के विषय में पढ़ा, भारत के संविधान में मूल अधिकारों के सम्बन्ध में विस्तृत एवं व्यापक रूप से उल्लेख किया गया है। संविधान के अध्याय 3 को जिनमें मूल अधिकारों का विवरण है, भारत का मेग्ना–कार्टा कहा जाता है। इन अधिकारों के अभाव में एक स्वतन्त्र, विकसित, समाज की स्थापना नहीं की जा सकती है।

भारत के संविधान द्वारा एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गयी है। जिसका उद्देश्य केवल अपने नागरिकों की सम्पत्ति और प्राणों की रक्षा करने तक सीमित नहीं है वरन उनका चहुँमुखी विकास करना है, उनके सुख एवं समृद्धि में वृद्धि करना है इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संविधान के भाग चार में कुछ नीतियों एवं सिद्धान्तों का समावेश किया गया है जिनको प्राप्त करना राष्ट्र के लिये लक्ष्य है ताकि स्वतंत्रता संग्राम के समय जिस कल्याणकारी राज्य की कल्पना की गयी थी उन उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के पूरक होते हैं अतः संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा भाग चार में नया भाग 4–क जोड़कर मूल कर्तव्यों को समाविष्ट किया गया। जिनका पालन प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य है।

मूल अधिकार जहाँ न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं, वहीं नीति निदेशक तत्व एवं मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं बनाये गये हैं। नीति निदेशक तत्व सरकार के लिए कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति हेतु लक्ष्य का निर्धारण करते हैं वहीं मूल कर्तव्य एक प्रतिबद्ध नागरिक बनने हेतु कुछ कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–

•राज्य की नीति के निदेशक तत्व

•नीति निदेशक तत्वों की प्रकृति एवं महत्व

•नीति निदेशक तत्वों एवं मूल अधिकारों में सम्बन्ध

•मूल कर्तव्य

•मूल कर्तव्यों की प्रकृति एवं महत्व

•मूल कर्तव्य एवं मूल अधिकारों का सम्बन्ध

•मूल अधिकारों की प्रकृति एवं महत्व

3.3 राज्य की नीति के निदेशक तत्वः—

संविधान के अध्याय चार में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य की नीति के निदेशक तत्व दिये गये हैं, इन्हें आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया है। इनके अन्तर्गत विधान मंडल और कार्यपालिका को विधायी एवं प्रशासनिक शक्तियों के उपयोग की रीति के निदेश दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के आदर्श निहित हैं।

संविधान की उद्देशिका में निहित दर्शन को एवं आदर्शों को क्रियात्मक रूप में लागू कराने में नीति निदेशक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं अगर राज्य प्रशासन में और विधि के निर्माण में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करें।

42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की उद्देशिका में 'समाजवादी' शब्द जोड़ा गया है एवं सामाजिक — आर्थिक सुधारों द्वारा सबको समान अवसर की उपलब्धता प्रदान कराने हेतु भाग चार में कुछ नये निदेश जोड़े गये—

1.अनुच्छेद 39क अन्तःस्थापित किया गया इसके द्वारा राज्य पर यह कर्तव्य आरोपित किया गया कि वह निःशुल्क विधिक सहायक का उपबन्ध करेगा।

2.अनुच्छेद 43—क अन्तस्थापित किया गया, इसके उपबन्धों के अनुसार राज्य विधि बनाकर उद्योग आदि में कर्मकारों की भागीदारी सुनिश्चित करेगा।

44वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 38 में खण्ड—2 अंतःस्थापित किया गया—
'राज्य, विशिष्टियां, अय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्याष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच की प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।''इस प्रकार राज्य का यह कर्तव्य होगा कि वह आय आदि संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित कर लोगों का सामाजिक स्तर सुधारने का प्रयास करेगा।

3.3.1 मूल अधिकार एवं निदेशक तत्व

मूल अधिकार राज्य के लिए एक सीमारेखा बनाते हैं, राज्य ऐसी कोई विधि पारित नहीं कर सकता जो मूल अधिकारों से असंगत है एवं उनका उल्लंघन करती है। न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि ऐसी दशा में वह उस विधि को असंवैधानिक घोषित कर दे।

निदेशक तत्व राज्य को विधि बनाते हुए कतिपय नीतियों और सिद्धान्तों का अनुसरण करने को कहते हैं। नीति—निदेशक तत्वों से असंगत विधि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह नीति—निदेशक तत्वों का उल्लंघन करती है।

इस प्रकार मूल अधिकार जहाँ वाद योग्य हैं वहीं नीति के निदेशक तत्व वाद–योग्य नहीं है। किसी नागरिक के मूल अधिकारों से उल्लंघन की दशा में वह न्यायालय द्वारा उपचार के माध्यम से उन्हें प्रवर्तित करा सकता है परन्तु नीति के निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है वे न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। अनुच्छेद 37 यह स्पष्ट उपबन्ध करता है।

मूल अधिकार और निदेशक तत्वों में विरोधाभास की दशा में न्यायालय ने चम्पाकम दोइराजन बनाम मद्रास राज्य[1] में निर्धारित किया कि मूल अधिकार अभिभावी होंगे, परन्तु बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 39 पर बल देते हुए निर्धारित किया कि जमींदारी उन्मूलन अधिनियम लोक प्रयोजन हेतु है अतः संवैधानिक है।

एक अन्य वाद[3] में न्यायालय ने कहा कि मूल अधिकार हालांकि नीति निदेशक तत्वों पर अभिभावी है परन्तु न्यायालय नीति निदेशक तत्वों की भी अवहेलना नहीं कर सकते जहाँ तक सम्भव हो दोनों में विरोध की दशा में सामंजस्यपूर्ण निर्वचन का सिद्धान्त ही अपनाना चाहिए।

मुहम्मद हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य[4] में न्यायालय ने पशु–संरक्षण विधि, जिनके अधीन गायों और बछड़ों तथा अन्य उपयोगी जानवरों वध का प्रतिबंध किया गया था, को विधिमान्य घोषित किया।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य[5] के ऐतिहासिक वाद में न्यायाधीश हेंगड़े एवं मुखर्जी ने कहा ''मूल अधिकार तथा निदेशक तत्व हमारे संविधान के अन्तःकरण हैं। मूल अधिकारों का प्रयोजन एक समतावादी समाज का निर्माण करना और समाज के उत्पीड़न या बन्धनों से सब नागरिकों को मुक्त करना और सबके लिये स्वतन्त्रता की उपलब्धि कराना है। निदेशक तत्वों का प्रयोजन कुछ ऐसे सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को नियत करना है जो अहिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति द्वारा तत्काल प्राप्त किये जा सकते हों। मूल अधिकारों तथा निदेशक तत्वों के बीच कोई विरोध नहीं है।''[6]

25वॉ संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद 31 में एक नया अनुच्छेद 31(ग) जोड़ा गया जो यह उपबन्धित करता है कि राज्य द्वारा अनुच्छेद (ख) और (ग) में उल्लिखित निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करने वाली विधि इस आधार पर शून्य नहीं होगी कि वह अनु0 14 और 19 का उल्लंघन करती है।

42वें संविधान संशोधन द्वारा 31 (ग) में पुनः संशोधन द्वारा सभी निदेशक तत्वों को उसमें शामिल किया गया, अब भाग 4, भाग 3 पर अभिभावी हो गया था।

निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों पर प्राथमिकता देने के प्रयास को उच्चतम न्यायालय द्वारा बहुमत से मिनर्वा मिल्स[7] वाद में विफल कर दिया गया। न्यायालय ने अनुच्छेद 31(ग) में किये गये विस्तार को असंवैधानिक घोषित कर दिया। न्यायालय के अनुसार इस प्रकार न्यायिक पुनर्विलोकन को पूर्णतः अपवर्जित करने से संविधान का ''आधारिक ढाँचा'' नष्ट हो जायेगा।

न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों में समन्वयकारी निर्वाचन द्वारा सूक्ष्म संतुलन कायम रखा जाये।

एक अन्य वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया कि सामाजिक और आर्थिक प्रजातन्त्र को यथार्थ बनाने में सहायक के रूप में मौलिक अधिकार और निदेशक तत्व रथ के दो पहिए हैं।[8]

यूनीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश[9] के वाद में न्यायालय ने अनुच्छेद 45 में उपबन्धित निदेशक तत्व को मूल अधिकार का दर्जा प्रदान किया न्यायालय ने कहा कि 14 वर्ष के बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है। (हालांकि अब अनुच्छेद 21–ए के तहत यह मूल अधिकार बन चुका है)। रनधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने समान कार्य के लिये समान वेतन (39घ) को अनुच्छेद 14 के तहत मुल अधिकार बताया। कन्ज्यूमर एजूकेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर बनाम भारत संघ के वाद में न्यायालय ने कहा कि कर्मकारों को चिकित्सा सुविधा का अधिकार एक मूल अधिकार है।

एयर इण्डिया स्टेट्यूटरी कार्पोरेशन बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन[10] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने नीति निदेशक तत्वों को असंक्राम्य (non-transferable) मूल अधिकारों का दर्जा प्रदान किया है एवं वे स्वयं न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हो गये हैं।

3.3.2 नीति निदेशक तत्वों का लागू करना राज्य का संवैधानिक कर्तव्य

यह तो स्पष्ट है कि नीति–निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा मूल अधिकारों की भांति प्रवर्तनीय नहीं है। लेकिन अनुच्छेद 37 यह घोषित करता है कि नीति निदेशक तत्व ''देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।''डा0 अम्बेडकर के अनुसार, '' यदि कोई सरकार इनकी अवहेलना करेगी तो, उसे निर्वाचन के समय मतदाताओं को उत्तर देना होगा। विपक्ष का भी यह कर्तव्य बनता है कि वह राज्य सरकार के क्रियाकलापों पर नजर रखे कि वह संवैधानिक उपबंधों के अनुसार कार्य कर रही है या नहीं एवं यह उसके हाथ में अस्त्र की तरह भी है कि वह नीति निदेशक तत्वों के अनुरूप सरकार को कार्य न करते देख उसकी आलोचना करे एवं जनता को भी इन सबसे अवगत कराए। अनुच्छेद 355 संघ पर यह कर्तव्य आरोपित करता है कि वह प्रत्येक राज्य सरकार का इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करे, नीति निदेशक तत्व चूंकि संविधान के ही भाग हैं, अतः अनुच्छेद 37 और अनुच्छेद 355 दोनों ही द्वारा सरकार को निदेशक तत्वों के अनुपालन पर विवश किया जा सकता है। अतः यह कहना निर्मूल है कि नीति निदेशक तत्व सरकार पर केवल कर्तव्य आरोपित करते हैं उनके पीछे कोई अधिशास्ति नहीं है। अनुच्छेद 355 एवं 365[11] द्वारा राज्य द्वारा निदेशक तत्वों की अवहेलना करने पर संघ द्वारा उसका क्रियान्वयन कराया जा सकता है।

3.3.3 राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का कार्यरूप में अनुपालन

अनुच्छेद 39(ख) के अनुसार– ''समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हितों का सर्वोत्तम साधन बन सके। इस खण्ड के अधीन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए राज्य उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है।''

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार विधियां पारित की। ये सुधार लगभग समस्त देश में लागू हो चुके हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ मुख्य संपदा कृषि भूमि है। इसी उद्देश्य से खेती की निश्चित सीमा भी निर्धारित की गयी है जो एक व्यक्ति रख सकता है।

अनुच्छेद 40 के अनुसार, ''राज्य ग्रामपंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनके ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।'' उक्त निदेश को कार्यरूप प्रदान करने के लिए सरकार ने 73वाँ एक 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित कर ग्रामपंचायत एवं नगर पालिकाओं सम्बन्धित विधियाँ पारित कीं।[12]

अनुच्छेद 43 में उपबन्धित कुटीर उद्योगों की उन्नति हेतु (राज्य का विषय) केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को वित्त पोषण, विपणन आदि में सहायता प्रदान करने हेतु बहुत से बोर्डों का गठन किया है। अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड, अखिल भारतीय हस्तशिल्प, हथकरघा, लघु उद्योग, रेशम बोर्ड आदि इसके अलावा लघु उद्योगों को बढ़ावा एवं वित्त आदि की सुविधा प्रदान करने हेतु राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना कर उन्हें विधिक शक्तियाँ प्रदान की है। 86वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा अनुच्छेद 21 में नया अनुच्छेद 21(क) जोड़कर 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया एवं तदनुसार अनुच्छेद 45 में नया अनुच्छेद रखा गया– ''राज्य छः वर्ष की आयु के सभी बालकों के पूर्व बाल्यकाल की देखरेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबन्ध करेगा।" अनुच्छेद 47 में उपबन्धित पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य के अनुपालन में भारत सरकार ने 1952 में सामुदायिक विकास योजना एवं बाद में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1978–79) आदि कार्यक्रम आरम्भ किये।

आज स्वास्थ्य की देख–रेख नेशनल कामन मिनियम प्रोग्राम (**N.C.M.P**) के अन्तर्गत सात मुख्य बातों में एक है। इस प्रोग्राम को प्रभावी बनाने में मुख्य भूमिका नेशनल रूरल हेल्थ मिशन (**N.H.R.M.**) की है। जिसकी छत्रछाया में हेल्थ और फेमिली वेलफेयर के प्रोग्राम चल रहे हैं। प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना भी ऐसी ही एक अन्य योजना है। इसके अन्तर्गत

एम्स की तरह छः संस्थाएं स्थापित की जानी हैं और 13 मेडिकल कालेजों को उच्चीकृत किया जाना है। छूत की तथा अन्य बीमारियों की समस्या से निपटने के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय अंधेपन, एड्स, कैंसर, मानसिक विकार आदि के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोग्राम सारे देश में चलाता रहता है।[13]

अनुच्छेद 39 (घ) में उपबन्धित समान कार्य के लिए समान वेतन के अनुसरण में संसद ने समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 पारित किया, रनधीर सिंह के वाद में उच्चतम न्यायालय ने इसे अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत मूल अधिकार प्रदान किया गया है एवं कहा है कि यद्यपि यह एक निदेशक तत्व है किन्तु साथ ही यह एक संवैधानिक लक्ष्य भी है। राज्य द्वारा विभेद करने पर न्यायालय इसके पालन कराने के लिए अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। तमिलनाडु राज्य बनाम अबु कावेर बार्ड[14] के बाद में यह निर्णय दिया गया कि राज्य में यातायात का राष्ट्रीयकरण करने के लिए बनाया गया कानून अवैध नहीं है क्योंकि वह अनुच्छेद 39(ख) और (ग) के निदेशों के अनुपालन हेतु है।

अनुच्छेद 39(च) के अनुसार, ''बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों तथा अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए,''

एम0सी0 मेहता बनाम भारत संघ के वाद में उच्चतम न्यायालय ने राज्य एवं केन्द्र सरकारों को बाल श्रम समाप्त करने एवं उनके पुनर्वास एवं कल्याण की व्यवस्था करने के स्पष्ट निर्देश जारी किए। सरकार ने बाल श्रम समाप्त करने की दिशा में अनेक कदम उठाये हैं एवं कारगर बालश्रम उन्मूलन विधियाँ पारित की हैं। 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 39क में समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता का उपबन्ध जोड़ा गया।

उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों में 'विधिक सहायता' एवं 'शीघ्रतर परीक्षण' पाने का बन्दियों का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत एक मूल अधिकार अभिनिर्धारित किया है।[15] सुखदास बनाम अरूणाचल प्रदेश क्षेत्र[16] के वाद में निर्धारित किया गया कि दाण्डिक अभियोजन में विधिक सहायता पाना अभियुक्त का हक है, उसे इसके लिए अलग से आवेदन देने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य मजिस्ट्रेट का है कि वह उसे उसके इस अधिकार के विषय में बताये। ऐसा न करने पर विचारण अवैध माना जाएगा।

3.4 मूल कर्तव्य

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में नया भाग 4–क जोड़कर नागरिकों के मूल कर्तव्यों का समावेश किया गया, अनुच्छेद 51–क के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह–

1.संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

2.स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को ह्रदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

3.भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।

4.देश की रक्षा करें।

5.हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझें और उसका परीक्षण करें।

6.हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिपरीक्षण करें।

7.प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्धन करें।

8.वैज्ञानिक दृष्टिकोण और ज्ञानार्जन की भावना का विकास करें।

9.सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा करें।

10.व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों के उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतता प्रयास करें।

11.छः वर्ष की आयु से चौदह वर्ष की आयु तक के बच्चों या प्रतिपाल्यों के माता–पिता या संरक्षक जैसा मामला हो, उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें।[17]

3.4.1 मूल कर्तव्य एवं मूल अधिकार

अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। संविधान जहाँ नागरिकों को मूल अधिकार देता है वहीं कर्तव्य भी आरोपित कर सकता है परन्तु प्रश्न यह है कि जिस देश की जनंसख्या का एक बड़ा भाग निरक्षर है एवं भूखे पेट सोता है उसे अपने अधिकारों का भी भान नहीं है वहाँ उससे किस प्रकार यह आशा की जा सकती है कि वह संविधान में उल्लिखित मूल कर्तव्यों का पालन करे। कर्तव्यों का पालन तभी निश्चित किया जा सकता है जब अधिकार सुनिश्चित रूप से प्रदान किये जा सकें एवं उनकी रक्षा की जा सके। अतः सरकार का यह परम लक्ष्य होना चाहिए कि वह भाग 4 में निदेशित लक्ष्यों का अनुपालन करके सही मायनों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करे समस्त जनसंख्या को शिक्षा प्रदान करे काम का अधिकार प्रदान करे उनके जीवन स्तर को सामान्य करे तभी वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हो पायेगी एवं कर्तव्यों का पालन भी स्वयं अंतःकरण द्वारा कर पायेगी। अतः मूल कर्तव्यों को नागरिकों को याद दिलाने से पहले जरूरी है कि उन्हें उनके मूल अधिकारों का भली भांति परिचित कराया जाये। मूल अधिकारों जहाँ न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है वहीं मूल कर्तव्यों के साथ इस तरह का कोई प्रवर्तन जुड़ा नहीं है अगर कोई नागरिक अपने मूल कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो

इसके लिए किसी दण्ड या शास्ति का उपबंध संविधान में नहीं किया गया है। रामशरण बनाम भारत संघ[18] के बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि संविधान में मूल कर्तव्यों के सीधे प्रवर्तन के लिए या उनके उल्लंघन के निवारण हेतु किसी अधिशास्ति का उपबन्ध नहीं है।

रूरल लिटिगेशन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[19] में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि मूल कर्तव्य नागरिकों पर आबद्धकर हैं, राज्य को इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का उच्च प्रयास करना चाहिए जैसे वन संरक्षण, वन्य जीवन और पर्यावरण की रक्षा। अनुच्छेद 51 क के खण्ड (छ) में यह आदेश है अतएव न्यायालय समुचित मामलों में यह निर्देश दे सकता है।

गुजरात राज्य बनाम मीराजपुर मोती कुरेशी कासब जमात[20] में अपीलार्थी ने बम्बई पशु संरक्षण (गुजरात संशोधन) अधिनियम 1994 की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी कि उक्त अधिनियम अनुच्छेद 19 के अधीन उनके कारोबार करने के मूल अधिकार पर रोक लगाता है, अतः असंवैधानिक है। उक्त अधिनियम अनुच्छेद 48 में निहित निदेशक तत्व को लागू करने के लिए पारित किया था। सात न्यायमूर्तियों की संविधान पीठ ने बहुमत से यह निर्णय दिया कि नीति निदेशक तत्वों में निहित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मूल अधिकारों पर लगाए गये निबंधन अनुच्छेद 19 के अधीन 'युक्तियुक्त' निर्बन्धन हैं एवं ऐसा अनुच्छेद 51.। के आधार पर भी किया जा सकता है। अनुच्छेद 51.।;हद्ध के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य है कि वह वन्य जीवों की रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया रखे।

एक अन्य निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि यद्यपि मूल कर्तव्य मूल अधिकारों की भांति प्रवर्तनीय नहीं बनाए गये हैं किन्तु भाग–4क के अनुच्छेद 51क में भी कर्तव्यों के पहले ''मूलभूत'' शब्द का प्रयोग उसी प्रकार किया गया है जैसा कि संविधान के भाग 3 के अधिकारों के लिए किया गया है। यद्यपि मूल कर्तव्य अप्रवर्तनीय है फिर भी वे संविधान और विधि के प्रश्नों के निर्वाचन में मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

निर्देश

1. ए0आई0आर0 1951 एस0सी0 228
2. ए0आई0आर0 1952 एस0सी0 352
3. ए0आई0आर0 1953 एस0सी0 936
4. ए0आई0आर0 1958 एस0सी0 731
5. (1978) 2 उम0नि0प0 159,
6. पाण्डे, जय नारायण, भारत का संविधान 44वां संस्करण पृष्ठ 398
7. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1980 एस0सी0 1780

8. जिलू भाई नानभाई खाचर बनाम स्टेट ऑफ गुजरात, 1995 सप्ली (1) एस0सी0सी0 596 (पैरा 47)

9. (1993) 1 एस0सी0सी0 645

10.ए0आई0आर0 1997 एस0सी0 645

11. अनुच्छेद 355 एवं 365 के बारे में ईकाई 3 में विस्तार पूर्वक समझाया गया है।

12. ईकाई 16

13.आचार्या डा0 दुर्गा दास वसु, भारत का संविधान एक परिचय, पृष्ठ 159–160

14.(1984) । एस0सी0सी0 516

15.हुस्नआरा खातून बनाम गृह सचिव बिहार राज्य, ए0आई0आर0 1979 एस0सी0 1360

16.ए0आई0आर0 1986 एस0सी0 991

17.86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा समावेशित

18.ए0आई0आर0 1989 एस0सी0 544

19.ए0आई0आर0 1987 एस0सी0 359

20.ए0आई0आर0 2006 एस0सी0212

अभ्यास प्रश्नः–

1.समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार–

क.मूल अधिकार है।

ख.नीति–निदेशक तत्व हैं।

ग.मूल कर्तव्य है।

घ.उपरोक्त में कोई नहीं।

2. 6से 14 वर्ष के बालकों को शिक्षा का अधिकार–

क.मूल अधिकार है।

ख.मूल कर्तव्य है।

ग.नीति–निदेशक तत्व हैं।

घ.क एवं ख दोनों

3.मूल कर्तव्य समावेशित हैं–

क.भाग 3 में।

ख.भाग 4 में।

ग.भार 4–क में।

घ.उपरोक्त में कोई नहीं।

4.निम्न न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं–

क.मूल अधिकार

ख.मूल कर्तव्य

ग.नीति–निदेशक तत्व

घ.उपरोक्त सभी

5.निम्न में कौन सा/से कथन सही हैं–

क.मूल कर्तव्य रूस (पूर्व सोवियत संघ) से लिये गये हैं।

ख.नीति के निदेशक तत्व आयलैण्ड के संविधान से लिये गये हैं।

ग.मूल अधिकार वाद–योग्य हैं।

घ.उपरोक्त सभी।

सत्य / असत्य कथन –

6.न्यायालय द्वारा कुछ नीति–निदेशक तत्वों को मूल अधिकार का दर्जा प्रदान किया गया है। सत्य/असत्य

7.राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति के आदर्श एवं उद्देश्य निहित हैं। सत्य/असत्य

8.मूल कर्तव्यों का उल्लंघन दण्डनीय अपराध है। सत्य/असत्य

3.5 सारांश

संविधान के अध्याय चार में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य की नीति के निदेशक तत्व दिये गये हैं, इन्हें आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया है। इनके अन्तर्गत विधान मंडल और कार्यपालिका को विधायी एवं प्रशासनिक शक्तियों के उपयोग की रीति के निदेश दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के आदर्श निहित हैं।

42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की उद्देशिका में 'समाजवादी' शब्द जोड़ा गया है एवं सामाजिक – आर्थिक सुधारों द्वारा सबको समान अवसर की उपलब्धता प्रदान कराने हेतु भाग चार में कुछ नये निदेश जोड़े गये।

मूल अधिकार जहाँ वाद योग्य हैं वहीं नीति के निदेशक तत्व वाद–योग्य नहीं है। किसी नागरिक के मूल अधिकारों से उल्लंघन की दशा में वह न्यायालय द्वारा उपचार के माध्यम से उन्हें प्रवर्तित करा सकता है परन्तु नीति के निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है वे न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। अनुच्छेद 37 यह स्पष्ट उपबन्ध करता है। एक वाद में न्यायालय ने कहा कि मूल अधिकार हालांकि नीति निदेशक तत्वों पर अभिभावी है परन्तु न्यायालय नीति निदेशक तत्वों की भी अवहेलना नहीं कर सकते जहाँ तक सम्भव हो दोनों में

विरोध की दशा में सामंजस्यपूर्ण निर्वचन का सिद्धान्त ही अपनाना चाहिए। एक अन्य वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया कि सामाजिक और आर्थिक प्रजातन्त्र को यथार्थ बनाने में सहायक के रूप में मौलिक अधिकार और निदेशक तत्व रथ के दो पहिए हैं।

यह तो स्पष्ट है कि नीति–निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा मूल अधिकारों की भांति प्रवर्तनीय नहीं है। लेकिन अनुच्छेद 37 यह घोषित करता है कि नीति निदेशक तत्व ''देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।'' डा0 अम्बेडकर के अनुसार, '' यदि कोई सरकार इनकी अवहेलना करेगी तो, उसे निर्वाचन के समय मतदाताओं को उत्तर देना होगा।''

संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में नया भाग 4–क जोड़कर नागरिकों के मूल कर्तव्यों का समावेश किया गया। मूल कर्तव्य 11 हैं। अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। संविधान जहाँ नागरिकों को मूल अधिकार देता है वहीं कर्तव्य भी आरोपित कर सकता है परन्तु प्रश्न यह है कि जिस देश की जनंसख्या का एक बड़ा भाग निरक्षर है एवं भूखे पेट सोता है उसे अपने अधिकारों का भी भान नहीं है वहाँ उससे किस प्रकार यह आशा की जा सकती है कि वह संविधान में उल्लिखित मूल कर्तव्यों का पालन करे। अतः सरकार का यह परम लक्ष्य होना चाहिए कि वह भाग 4 में निदेशित लक्ष्यों का अनुपालन करके सही मायनों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करे समस्त जनसंख्या को शिक्षा प्रदान करे काम का अधिकार प्रदान करे उनके जीवन स्तर को सामान्य करे तभी वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हो पायेगी एवं कर्तव्यों का पालन भी स्वयं अंतःकरण द्वारा कर पायेगी। अतः मूल कर्तव्यों को नागरिकों को याद दिलाने से पहले जरूरी है कि उन्हें उनके मूल अधिकारों का भली भांति परिचित कराया जाये। मूल अधिकारों जहाँ न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है वहीं मूल कर्तव्यों के साथ इस तरह का कोई प्रवर्तन जुड़ा नहीं है अगर कोई नागरिक अपने मूल कर्तव्य का उल्लंघन करता है तो इसके लिए किसी दण्ड या शास्ति का उपबंध संविधान में नहीं किया गया है।

3.6 महत्वपूर्ण शब्दावली

नीति के निदेशक तत्व :– इनमें वे उद्देश्य एवं लक्ष्य निहित हैं जिनका पालन करना राज्य का कर्तव्य है। ये देश के लिये नीति निर्माण करते करते समय राज्य के लिये निदेश हैं।

मूल कर्तव्य – इनका पालन प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक कर्तव्य है। वाद–योग्य – जिनका उल्लंघन होने पर न्यायालय में वाद लाया जा सकता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :–

1. ख; 2. घ; 3. ञ; 4. क; 5. घ; 6. सत्य ; 7. सत्य ; 8. असत्य ;

3.8 संदर्भ ग्रन्थ :–

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी 2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री :–

1.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का महत्व समझाइये।

2.मूल कर्तव्यों पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।

3.नीति–निदेशक तत्व एवं मूल अधिकारों में अन्तर्सबंध समझाइये।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–2. "राज्य" उदारीकरण

इकाई–4. शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अल्पसंख्यकों का अधिकार एवं राज्य का नियन्त्रण; पंथनिरपेक्षता और धार्मिक कट्टरता।

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3' अल्पसंख्यक' – अभिव्यक्ति का अर्थ
4.4 संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकार
4.4.1 उपासना की स्वतन्त्रता
4.4.2 भाषायी एवं सांस्कृतिक अधिकार
4.4.3 मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं
4.4.4 भाषायी अल्पसंख्यकों हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति
4.4.5 राज्य द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार
4.4.6 अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने का अधिकार
4.4.7 राज्य द्वारा सहायता में विभेद नहीं
4.5 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार
4.5.1 अनुच्छेद 29(1) एवं 30(1)
4.5.2 सम्बन्धन एवं मान्यता का अधिकार
4.6 राज्य द्वारा अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं का विनियमन
4.7 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का मामला
4.8 पंथ निरपेक्षता एवं धार्मिक कट्टरता
4.8.1पंथ निरपेक्षता
4.8.2 धार्मिक कट्टरता
4.9 सारांश
4.10 महत्वपूर्ण शब्दावली
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.12 संदर्भ ग्रन्थ
4.13 सहायक/उपयोगी सामग्री
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ सभी नागरिकों को अन्तःकरण और धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त है। भारत विविधताओं से भरा देश है। यहाँ विभिन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक समुदाय निवास करते हैं जिनकी अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति है, जिन्हें सुरक्षित बनाये रखना उनका अधिकार है जो संविधान द्वारा संरक्षित है। भाषायी, सांस्कृतिक और धार्मिक अल्पसंख्यक अपनी संस्कृति एवं धर्म को बनाये रखने एवं उससे सम्बन्धित शिक्षा संस्थानों की स्थापना एवं उसके प्रशासन हेतु नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं एवं यह स्वतन्त्रता उन्हें संविधान के अन्तर्गत मूल अधिकारों द्वारा प्रदान की गयी हैं। संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 भारत के समस्त नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धित अधिकार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 30 के तहत प्राप्त अधिकार आत्यान्तिक नहीं है। वे अनुच्छेद 29 के प्रावधानों के अधीन है। अनुच्छेद 30 द्वारा प्राप्त अधिकार जहाँ नागरिकों एवं गैर नागरिकों दोनों को प्राप्त है वहीं अनुच्छेद 29 के द्वारा प्रदान किये गये अधिकार केवल नागरिकों को ही प्राप्त है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–

- संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
- शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अल्पसंख्यकों का अधिकार
- राज्य द्वारा अल्पसंख्यक शिक्षा–संस्थाओं पर नियन्त्रण
- पंथ निरपेक्षता एवं धार्मिक कट्टरता

4.3'अल्पसंख्यक' – अभिव्यक्ति का अर्थ

अल्पसंख्यकों के अधिकारों को समझने से पहले संविधान में प्रयुक्त शब्दावली 'अल्पसंख्यक (minoritie) का अर्थ समझना आवश्यक है। भारत में भाषायी, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अल्पसंख्यक है– वे जो भाषा के आधार पर संख्या में कम है, वे जो धर्म के आधार पर संख्या में कम है एवं वे जो अपनी विशिष्ट संस्कृति के आधार पर संख्या में कम हैं, इस श्रेणी में हम आदिवासी एवं कबीलों को रख सकते हैं। जिनकी मुख्य भूमि (राष्ट्र) से अलग संस्कृति है, जिसे वे हजारों वर्षों से संजोये हुए हैं। मुख्य रूप से 'अल्पसंख्यक' अभिव्यक्ति को भाषा एवं धर्म पर आधारित भावों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

टी0एम0ए0 फाउन्डेशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने इस प्रश्न पर अपना निर्णय देते हुए कहा कि चूंकि राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर किया गया। अतः पंथ और भाषा के आधार पर कौन अल्पसंख्यक हैं इसका निर्धारण अलग–अलग राज्यों में उनकी संख्या के आधार पर किया जाएगा। इसलिए अल्पसंख्यक वर्गों को राज्य के अनुसार विचारण में लिया जाना चाहिए। वे धार्मिक या भाषायी वर्ग या समूह जिनकी संख्या राज्य की कुल जनसंख्या के आधे से कम है वे उस राज्य में अल्पसंख्यक का दर्जा प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। इस निर्णय के फलस्वरूप कश्मीर में हिन्दू अल्पसंख्यक माने जाऐंगे।

4.4 संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अधिकार

4.4.1 उपासना की स्वतन्त्रता

भारत में प्रत्येक नागरिक को अपने अन्तःकरण से धर्म को मानने स्वतंत्रता है। एक पंथनिरपेक्ष राज्य होने के कारण राज्य का कोई धर्म नहीं है।

4.4.2 भाषायी एवं सांस्कृतिक अधिकारः–

प्रत्येक नागरिक को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार प्राप्त है[2] राज्य द्वारा बहुसंख्यकों या किसी स्थान की अन्य संस्कृति को सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों पर नहीं थोपा जाएगा। यही प्राविधान भाषायी अल्पसंख्यकों पर भी लागू होते हैं।

4.4.3मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं

संविधान द्वारा राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वह राज्य को यह निर्देश दे कि वह भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में देने हेतु व्यवस्था करे।

4.4.4 भाषायी अल्पसंख्यकों हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति

संविधान द्वारा यह उपबंधित किया गया है कि राष्ट्रपति भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेगा, जो संविधान में उपबन्धित भाषायी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित रक्षा के उपायों का विश्लेषण कर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन सौंपेगा[3]। अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया गया है।

4.4.5 राज्य द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार

अनुच्छेद 29(2) यह उपबंधित करता है कि राज्य द्वारा पोषित या सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

मुम्बई बनाम बाम्बे एजूकेशन सोसाइटी[4] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि राज्य द्वारा सहायता प्राप्त विद्यालय द्वारा एक विद्यार्थी को इस आधार पर प्रवेश से वंचित करना कि उस विद्यार्थी की मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं है। अनुच्छेद 29(2) के तहत प्राप्त अधिकार से वंचित करना है।

4.4.6 अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने का अधिकार

अनुच्छेद 29(1) के अधीन अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति बनाए रखने का अधिकार प्रदान किया गया है परन्तु यह अधिकार तब तक पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता जब तक इससे संबंधित शिक्षा संस्थाएं खोलने का अधिकार प्राप्त न हो। अनुच्छेद 30(1) अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाए खोलने का अधिकार प्रदान करता है। ताकि वे आने वाली पीढ़ी को अपनी भाषा एवं संस्कृति से अवगत करा सके।

4.4.7 राज्य द्वारा सहायता में विभेद नहीं

भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है, अतः राज्य शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में इस आधार पर विभेद नहीं कर सकता कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।[5]

4.5 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार (अनुच्छेद 30)

अनुच्छेद 30 के अनुसार,
(1)धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा,
(1क) खंड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक–वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की सम्पत्ति का अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी सम्पत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम इतनी हो कि उस खंड के अधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बंधित या निराकृत न हो जाए।
(2)शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक–वर्ग के प्रबंध में है।

4.5.1 अनुच्छेद 29(1) और 30(1)

अनुच्छेद 29 एवं 30 दोनों शिक्षा संस्कृति संबंधी अधिकार प्रदान करते हैं। दोनों के मध्य निम्न संबंध व्याप्त हैं–
1.अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को प्राप्त है लेकिन अनुच्छेद 29(1) उन सभी नागरिकों को जिनकी कोई विशेष लिपि, भाषा, या संस्कृति है चाहे वे अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक, उसे बनाए रखने का अधिकार प्रदान करता है।
2.अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदान अधिकार केवल भाषायी या धार्मिक अल्पसंख्यकों को प्राप्त है वहीं अनुच्छेद 29(1) तीन विषयों, लिपि, भाषा या संस्कृति से संबंधित अधिकार प्रदान करता है।
3.अनुच्छेद 30(1) धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी रूचि की शिक्षा संस्था की स्थापना एवं उसके प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है, लेकिन यदि कोई ऐसी संस्था राज्य द्वारा पोषित या राज्य–निधि से सहायता प्राप्त करती है तो वह धर्म या भाषा आदि के आधार पर छात्रों को प्रवेश देने में विभेद नहीं कर सकती है।[6]

4.5.2 सम्बन्धन एवं मान्यता का अधिकार

सैन्ट जेवियर कालेज[7] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि किसी भी अल्पसंख्यक संस्था को सम्बन्धन (ffiliation) का अधिकार मूल अधिकार नहीं है। जब कोई

शिक्षा–संस्था सम्बन्धन या मान्यता के लिए आवेदन करती है तो यह विवक्षित रहता है कि वह शिक्षा संस्था ऐसे विनियमों का पालन करेगी जो सम्बन्धन या मान्यता देने वाले प्राधिकारी द्वारा बनाए जाते हैं, किन्तु मान्यता या सम्बन्धन की ऐसी शर्तों को विहित करना जिसके परिणाम स्वरूप अल्पसंख्यक वर्ग की अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार न्यून होता है। अनुच्छेद 30 का उल्लंघन होगा।

मैनेजिंग बोर्ड आफ मिली तालीमी मिशन बनाम बिहार राज्य[8] के वाद में यह निर्धारित किया गया कि किसी अल्पसंख्यक शिक्षण संस्था को विश्वविद्यालय द्वारा सम्बन्धन और मान्यता देने से मनमाने और अयुक्तियुक्त रूप से इन्कार करना अनुच्छेद 30 और 14 का उल्लंघन है। हालांकि सम्बन्धन का अधिकार एक मूल अधिकार नहीं है किन्तु बिना उचित और पर्याप्त आधार के सम्बन्धन या मान्यता देने से इन्कार करना अनुच्छेद 30 का अतिक्रमण है।

ए0पी0 क्रिश्चियन मेडिकल कालेज एजूकेशन सोसाइटी बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[9] के वाद में सोसाइटी ने अल्पसंख्यक संस्था के रूप में मेडिकल कालेज की स्थापना की परन्तु संस्था के संगम ज्ञापन में ऐसी कोई बात नहीं थी जिससे यह प्रकट होता हो कि उक्त संस्था अल्पसंख्यक है। संस्था ने असत्य कथन करके कि उसे सरकार से अनुमोदन मिल चुका है, कालेज में छात्रों को प्रवेश दे दिया परन्तु विश्वविद्यालय द्वारा परीक्षा लेने से इन्कार कर दिया गया। न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि उक्त संस्था की स्थापना का उद्देश्य व्यवसाय था अतः उसे अनुच्छेद 30(1) का संरक्षण प्रदान नहीं किया जा सकता।

4.6 राज्य द्वारा अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं का विनियमनः–

अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यक वर्गों को प्रदान किये गये अधिकार बहुसंख्यक वर्ग से केवल समानता सुनिश्चित करने के लिए हैं। राष्ट्रहित, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक कल्याण, लोक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य, स्वच्छता, कराधान, आदि से संबंधित देश की साधारण विधियाँ अल्पसंख्यक संस्थाओं को भी समान रूप से लागू होंगी। शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने और प्रशासन करने का अधिकार आत्यान्तिक नहीं है, न ही इसमें कुप्रशासन सम्मिलित होता है। शैक्षित स्वरूप और मानकों को सुनिश्चित करने और शैक्षिक उत्कर्ष बनाए रखने के लिए नियन्त्रण के उपाय किए जा सकते हैं। इस कोटि में साधारणतया विधार्थियों और अध्यापकों से सम्बन्धित विनियम, कर्मचारियों (अध्यापन एवं अध्यापनेत्तर) की नियुक्ति के लिए पात्रता के मानदंड और अहर्ताएं तथा सेवा की शर्ते अधिकथित करने के लिए विनियम ओर पाठ्यविवरण तथा अध्ययन पाठ्यक्रम विहित करने के लिए विनियम आते हैं। ऐसे विनियम किसी भी प्रकार से अनुच्छेद 30(1) के अधीन अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करते।[10]

पी0ए0 इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य[11] में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी संस्था को अपना अल्पसंख्यक रूप बनाए रखने के लिए दो उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहना आवश्यक है, पहला अपने धर्म और भाषा को संरक्षित करने योग्य बनाना, और दूसरा संबंधित बच्चों को भली–भांति अच्छी शिक्षा देना।

अनुच्छेद 30 युक्तियुक्त विनियम बनाने से राज्य को नहीं रोकता है लेकिन विनियम अल्पसंख्यक शिक्षा–संस्था के हित में बनाये जाने चाहिए।

सिद्धराज भाई बनाम गुजरात राज्य[12] के वाद में न्यायालय ने निर्धारित किया कि ऐसे विनियम जो अनुदान प्राप्त करने या मान्यता की शर्तों के रूप में विधिपूर्वक लगाए जा सकते हैं उन्हें निम्न दो कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए–

(1) उन्हें युक्तियुक्त होना चाहिए एवं

(2) संस्था के शैक्षिक स्वरूप को विनियमित करने वाला होना चाहिए जो अल्पसंख्यक–समुदाय अथवा उन व्यक्तियों के लिए, जो इसका आश्रय लेते हैं, संस्था को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनाने में सहायक है।अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं को श्रेष्ठता के उस स्तर से नीचे नहीं गिरने दिया जा सकता जो ऐसी संस्थाओं के लिए अपेक्षित है। विनियम यह भी उपबन्ध कर सकते हैं कि संस्था की निधि का शिक्षा के प्रयोजन अथवा संस्था की भलाई के लिए ही उपयोग किया जाना चाहिए न कि किसी अन्य बाहरी प्रयोजन हेतु।

इन री केरल एजूकेशन बिल[13] के वाद में राज्य सरकार द्वारा विधेयक के माध्यम से अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षण–संस्थाओं को सहायता प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तों का निर्धारण किया गया था तथा अध्यापकों की नियुक्ति, पदच्युति तथा वेतन के बारे में भी नियम विहित किए थे। अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा इन नियमों को उनके प्रशासन में हस्तक्षेप बताया गया। परन्तु न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 30 राज्य को अल्पसंख्यक शिक्षा–संस्थाओं की श्रेष्ठता बनाए रखने से नहीं रोकता है, अतः सहायता या मान्यता प्रदान करने के लिए राज्य युक्तियुक्त शर्ते विहित कर सकता है।

फ्रैंक एन्थोनी पब्लिक स्कूल इम्पलाईज एसोसिएशन बनाम भारत संघ के मामले में स्कूल के कर्मचारियां ने देहली स्कूल एजुकेशन एक्ट की धारा 12 को इस आधार पर चुनौती दी कि वह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है, दिल्ली एजूकेशन एक्ट की धाराएं 8–12 मान्यता प्राप्त और गैर सहायता प्राप्त प्राइवेट स्कूलों के कर्मचारियों की सेवा शर्तें को विनियमित करती हैं। किन्तु धारा 12 के अनुसार 'उक्त प्रावधान गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थाओं पर लागू नहीं होंगे।' उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि गैर सहायता प्राप्त संस्थाएं जो दिल्ली प्रशासन से मान्यता प्राप्त है, उन्हें अपने शिक्षकों और कर्मचारियों को वही वेतन भत्ते और अन्य लाभ प्रदान करने चाहिए जो सरकारी स्कूलों के शिक्षकों और कर्मचारियों को मिलता है। न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 30(1) के अधिकारों की आड़ में ऐसी संस्थाओं को शिक्षकों

और कर्मचारियों का शोषण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। क्रिश्चियन मेडिकल कालेज हास्पिटल एम्पलाइज यूनियन बनाम क्रिश्चियन मेडिकल कालेज, वेलूर एसोसिएशन[14] के मामले में न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धाराएं 9. ।ए 11.।ए 12 और 33 अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षा संस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होती हैं क्योंकि ये विनियात्मक प्रकृति की है और इनसे अनु0 30(1) में प्रदत्त अधिकारों पर कोई आघात नहीं पड़ता है।

सामाजिक कल्याण विधियाँ तथा ऐसे अन्य विनियात्मक उपाय अनुच्छेद 30(1) पर हालांकि कुछ हद तक तो प्रभाव डालते हैं किन्तु वे उसे कम नहीं करते। न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 30(1) के अधिकार की सुरक्षा तथा उनमें कार्यरत कर्मचारियों की सुरक्षा का सामाजिक उत्तरदायित्व, दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। अधिनियम के अधीन श्रमिक न्यायालयों की शक्तियाँ सीमित एवं नियत्रित नहीं हैं। उनके निर्णय के विरूद्ध उच्च एवं उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

सेंट स्टीफन कालेज[15] के बाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अल्पसंख्यक संस्थाओं में 50 प्रतिशत अन्य समुदाय के छात्रों को प्रवेश देना होगा। टी0एम0ए0 फाउन्डेशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक[16] के महत्वपूर्ण वाद में मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि अल्पसंयकों को संविधान के अनुच्छेद 30 में जो शिक्षा संस्थाओं के चलाने का अधिकार दिया गया है उसकी सीमाएं क्या हैं। शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन के अधिकार विषय पर न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 19 (1)(ह) और 26 के अन्तर्गत सभी नागरिकों एवं अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार है लेकिन यह अनुच्छेद 19(6) के अन्तर्गत निर्बन्धन के अधीन है। सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं के बारे में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि ऐसे संस्थान को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अन्तर्गत अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों को प्रवेश देने का अधिकार अनुच्छेद 29(2) की भावनाओं के अनुसार होगा अर्थात उन्हें गैर अल्पसंख्यक समुदाय के कुछ छात्रों को भी प्रवेश देना होगा एवं ऐसी व्यवसायिक एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के लिये योग्यता के मानकों में कमी नहीं की जा सकेगी। ऐसे व्यवसायिक संस्थानों में छात्रों का प्रवेश राज्य द्वारा आयोजित प्रवेश परीक्षा के आधार पर किया जायेगा। एक अन्य प्रश्न के उत्तर में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यक संस्था की अपनी प्रवेश प्रक्रिया हो सकती है किन्तु वह प्रक्रिया उचित एवं पारदर्शी होनी चाहिए एवं व्यवसायिक और उच्चतर शिक्षा के कालेजों में छात्रों का प्रवेश योग्यता के आधार पर ही होना चाहिए। गैर सरकारी सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थानों को भी छात्रों को प्रवेश देते समय योग्यता की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अन्यथा संस्था उच्च स्तर प्राप्त करने में विफल हो जाएगी। इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजूकेशन बनाम कर्नाटक राज्य के वाद में न्यायालय के 5 न्यायाधीशों की पीठ ने टी0एम0पाई के निर्णय

के कुछ बिन्दुओं को याचिकाकर्ताओं की मांग पर पुनः स्पष्ट किया एवं कुछ अपने विचार व्यक्त किए। जिनको न्यायालय में चुनौती दी गयी, उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तुत मामले में स्पष्ट किया–

1.उच्चतम न्यायालय ने निजी व्यवसायिक शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण के विषय पर स्पष्ट किया कि इस्लामिक एकेडमी के मामले में राज्य द्वारा ऐसी संस्थाओं में स्थानीय आवश्यकता के अनुसार सीटों में संख्या निर्धारित करने का निर्णय टी0एम0पाई0 के मामले में दिए गये निर्णय के विपरीत है अतः उसे अवैध घोषित कर दिया।

2.प्रवेश प्रक्रिया के मामले में दो केन्द्रीयकृत समितियों के निर्णय को ठीक बताया। ये समितियाँ तब तक कार्य करेंगे जब तक इसके लिए विधान मण्डल समुचित विधि नहीं बना देता। उच्चतम न्यायालय के अनुसार इससे योग्यतम छात्रों को प्रवेश दिया जा सकेगा।

3.शुल्क ढाँचे के मामले में न्यायालय ने निर्धारित किया कि अल्पसंख्यक संस्थाएं अपना शुल्क नियत कर सकती हैं, लेकिन इसका विनियमन किया जा सकता है ताकि संस्थाएं लाभ कमाने का कार्य न करें और कैपीटेशन शुल्क न ले सकें।

तात्पर्य यह है कि अनुच्छेद 30 के उपबंध धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को अतिरिक्त संरक्षण प्रदान करते हैं किन्तु वे आत्यान्तिक अधिकार नहीं है। कुप्रबन्ध एवं शिक्षा का स्तर बनाए रखने आदि हेतु वे विनियमन के अधीन हैं।

4.7 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का मामला

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना, अलीगढ़ विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 द्वारा की गयी थी। सन् 1981 में संशोधन द्वारा अधिनियम की धारा (2स) से 'स्थापित' शब्द निकाल दिया। इस संशोधन का उद्देश्य विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक संस्था का रूप प्रदान करना था। एक नियम के जरिये विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में 50ः सीटों को मुस्लिम छात्रों के लिए आरक्षित कर दिया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अजीज वासा बनाम भारत संघ वाद का अनुसरण करते हुए उक्त संशोधन को अवैध घोषित कर दिया, चूंकि अलीगढ़ विश्वविद्यालय की स्थापन केन्द्रीय अधिनियम द्वारा की गयी थी किसी संस्था द्वारा नहीं। अतः अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक संस्था नहीं माना जा सकता। न्यायालय ने मुस्लिम छात्रों के प्रवेश को भी अवैध घोषित कर दिया।[17]

4.8 पंथ निरपेक्षता एवं धार्मिक कट्टरता

4.8.1 पंथ निरपेक्षता (Secularism)

भारत के संविधान में किसी भी मत को राजकीय धर्म मानने का उपबंध नहीं है। उद्देशिका में विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का वचन दिया गया है। अनुच्छेद 25 से 28 धर्म स्वातन्त्रय का अधिकार सुनिश्चित करते हैं। उद्देशिका में संविधान (42वाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा ''पंथ निरपेक्ष'' शब्द अन्तःस्थापित किया गया। बोम्मई बनाम भारत संघ[18] के वाद में न्यायालय ने कहा कि पंथ निरपेक्षता संविधान के आधारभूत लक्षणों में से एक हैं। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने कहा कि पंथनिरपेक्षता ईश्वर विरोधी नहीं है। भारतीय परिप्रक्ष्य में इसका सकारात्मक रूप है। राज्य न तो किसी धर्म का पक्ष लेता है और न ही किसी धर्म का विरोध करता है, वह धर्म के मामले में सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार कहता है। राज्य धर्म के मामले में निरपेक्ष व्यवहार करता है। संतोष कुमार बनाम सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय[19] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि शैक्षिक पाठ्यक्रम में संस्कृत को चयनात्मक विषय के रूप में अधिमान देने और अरबी, फारसी आदि को वह स्थान न देने से पंथनिरपेक्षता के सिद्धान्तों को आघात नहीं पहुँचता है। संस्कृत सभी आर्य भाषाओं की जननी है। संस्कृत के बिना भारतीय दर्शन की, जिसमें सारी संस्कृति और विरासत छिपी है, पहचान संभव नहीं है। न्यायालय ने कहा, पंथनिरपेक्षता धर्मपरायणता के विरोध में नहीं है। पंथनिरपेक्षता न तो ईश्वर विरोधी है और न ही ईश्वर समर्थक।

संविधान में धर्मनिरपेक्षता (पंथनिरपेक्षता) के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। पश्चिमी देशों में धर्मनिरपेक्षता के लक्षणों में आधुनिकता, ज्ञान–विज्ञान एवं सामाजिक क्रान्तिकारिता अनिवार्य है, जबकि भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक भेदभाव व धार्मिक साम्प्रदायिक टकराव के निषेध तक सीमित है। संविधान के अनुसार हालांकि भारत को कोई राष्ट्रधर्म नहीं होगा लेकिन वह अपने नागरिकों को यह महत्वपूर्ण अधिकार व स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि वे किसी भी धर्म में आस्था रख सकते हैं, अपने धार्मिक रीति रिवाजों के अनुसार पूजा–पाठ कर सकते हैं तथा अपने धर्म का प्रचार–प्रसार कर सकते हैं, अतः पक्षपात रहित धार्मिक सम्मान का व्यवहार ही भारत के संदर्भ में निरपेक्षता अर्थात पंथनिरपेक्षता का वास्तविक चरित्र है।

भारत का संविधान धार्मिक आस्था रखने की स्वतन्त्रता देता है न कि बाध्यता की। अतः संविधान भारतीय नागरिक को नास्तिक होने की स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय संविधान धर्म की निंदा का भी अधिकार प्रदान करता है। संविधान ने धर्मनिरपेक्षता के सकारात्मक रूप को अपनाया है। नकारात्मक रूप को नहीं। इस प्रकार भारतीय पंथनिरपेक्षता अपने संवैधानिक रूप में सकारात्मक रूप में सर्वधर्म समभाव का ही

दूसरा नाम है। वह सहिष्णुता, शांति, अहिंसा, सामंजस्य, समन्वय, निरन्तरता एवं विकास का सम्मिलित रूप है।

4.8.2 धार्मिक कट्टरवाद

धार्मिक कट्टरता एक गंभीर समस्या है जिससे आज पूरी दुनिया चिंतित है। यही वह समस्या है जिसने पाकिस्तान को जन्म दिया। इसे धार्मिक अतिवाद भी कहा जाता है। इससे सम्बन्धित लोग आंख बंद करके यह विश्वास करते हैं कि पूरा सच केवल उनके स्वयं के धर्मशास्त्रों में दिया गया है। वे अन्य धर्म मतावलम्बियों एवं धर्म शास्त्रों को नफरत की नजर से देखते हैं। उनका एक मात्र लक्ष्य होता है पूरे विश्व में अपने धर्म का प्रसार करना एवं इसी अंधे धार्मिक उत्साह को धर्मयुद्ध या पवित्र युद्ध या जिहाद का नाम देकर मानवता से साथ क्रूरता पर उतर आते हैं। धार्मिक उन्माद के कारण ही बांग्लादेशी लेखिका तसलीमा नसरीन को अपना देश छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। भारत में भी धर्मनिरपेक्षता पर धार्मिक कट्टरता समय–समय पर हावी होती नजर आती है, जब लेखिका तस्लीमा नसरीन को अपना दूसरा घर कलकत्ता (भारत) छोड़कर किसी और देश में शरण लेनी पड़ती है। इसी धार्मिक कट्टरपंथियों के हावी होने के कारण मशहूर लेखक सलमान रश्दी को जयपुर में एक कार्यक्रम में भाग नहीं लेने दिया गया क्योंकि वो अपनी विवादित पुस्तक सेनेटिक वर्सेज के कारण विशेष धर्म के मतावलम्बियों द्वारा फतवे के शिकार हुए थे। शाहबानों वाद[20] में भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की सरकार एक विशेष धर्म के लोगों के आगे झुक गयी एवं उसने उच्चतम न्यायालय के निर्णय को बदलने के लिये मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किया एवं मुस्लिम स्त्रियों को उनके सामान्य अधिकार से वंचित कर दिया। आधुनिक सभ्य देश के लिए यह अधिनियम लज्जाजनक है। इस अधिनियम से संविधान की उद्देशिका में प्रकल्पित राष्ट्र की एकता को आघात पहुँचता है। इसके परिणामस्वरूप प्रगतिशील मुस्लिम राष्ट्रों की दृष्टि में भी भारत एक पिछड़ा और दरियाकनूसी राष्ट्र हो गया।[21] उक्त वाद में एक तलाकशुदा मुस्लिम स्त्री ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन भरण–पोषण का आवेदन किया जो स्वीकार करके न्यायालय ने डिक्री कर दी। पति ने उच्चतम न्यायालय में इस आधार पर अपील की कि धारा 125 मुसलमानों पर लागू नहीं होती है क्योंकि यह मुस्लिम वैयक्तिक विधि के विरूद्ध है। उच्चतम न्यायालय ने इस निर्वचन को स्वीकार नहीं किया। न्यायालय ने कहा कि यह सभी ''व्यक्तियों'' पर लागू होता है, चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, अपील खारिज कर दी गयी। निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह समान सिविल संहिता बनाए चाहे इसमें मुसलमान पहल करें या नहीं किंतु इस दिशा में सरकार द्वारा कदम नहीं उठाए

गये। मुंबई विश्वविद्यालय के एक विद्वान आचार्य सिद्दीकी ने कहा कि यदि राज्य पहल करेगा तो अंततोगत्वा मुस्लिम समाज उसे स्वीकार कर लेगा क्योंकि यह आधुनिक सभ्य समाज के आदर्शों के अनुरूप हैं। उच्चतम न्यायालय के स्पष्ट निर्देशों की अवहेलना करके और मुस्लिम समाज के एक बहुत बड़े अनुभाग की, जिसमें विद्वान लोग भी थे, उपेक्षा करके तत्कालीन सरकार ने मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 अधिनियमित करके यह उपबंध किया कि इस अधिनियम के उपबंध विवाह विछिन्न मुस्लिम स्त्री के भरण पोषण के अधिकार को लागू होंगे, यदि ऐसी स्त्री और उसका पूर्व पति यह चाहते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 लागू हो तभी वह धारा लागू होगी। इस तरह धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में धार्मिक कट्टरता जीत गयी। धार्मिक कट्टरता ने अपनी ही आधी आबादी (मुस्लिम महिलाओं) के साथ धर्म के नाम पर अन्याय किया एवं उनके हकों को छीना।

एक ही देश में धर्म के नाम पर लोगों पर अलग–अलग विधियों को लागू करना सभ्य और प्रगतिशील समाज के लिये कलंक के समान है, चूंकि मुस्लिम लॉ में एक से अधिक विवाह वैध है अतः अगर किसी हिन्दू पति को दूसरा विवाह करना होता है तो वह इस्लाम धर्म अपना कर ऐसा आसानी से कर लेता है। ऐसे कई मामले सामने आने पर उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में[22] प्रधानमंत्री को निर्देश दिया कि वे संविधान के अनुच्छेद 44 पर अमल कर सभी नागरिकों के लिए एक 'समान सिविल संहिता' बनाए। न्यायालय ने कहा कि ऐसा करना पीड़ित व्यक्ति की रक्षा तथा राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की अभिवृद्धि दोनों ही दृष्टि से आवश्यक है। न्यायालय ने कहा कि सभ्य समाज में 'धर्म ओर वैयक्तिक विधि' में कोई संबंध नहीं होता है। अतः समान सिविल संहिता बनाने से किसी समुदाय के सदस्यों के अनुच्छेद 25, 26 तथा 27 के अधीन मूल अधिकारों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। विवाह, उत्तराधिकार और इस प्रकार की सामाजिक प्रकृति की बातें धार्मिक स्वतन्त्रता से बाहर हैं और उन्हें विधि बनाकर विनियमित किया जा सकता है। हिन्दुओं ने देश की एकता व अखण्डता के लिए धार्मिक भावनाओं का त्याग किया और उनका संहिताकरण (हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955) किया। बहुत से हिन्दू उक्त अधिनियम के उपबन्धों जिसमें पति–पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह वर्जित है, से बचने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते हैं और दूसरा विवाह कर लेते हैं। लेकिन कोई धर्म जानबूझकर विकृति की अनुमति नहीं देता है। अनेक इस्लामिक देशों में भी वैयक्तिक विधि का संहिताकरण किया जा चुका है। एक समान सिविल संहिता विचारों के आधार पर मत भिन्नता एवं कट्टरता को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता को सशक्त करने में सहायक होगी इससे भारत की पंथनिरपेक्षता और भी सुदृढ़ होगी।

निर्देश

1.ए0आई0आर0 2003 एस0सी0 355,

2.अनुच्छेद 29(1)

3.अनुच्छेद 350(ख)

4.(1955) 1 एस0सी0आर0 568

5.अनुच्छेद 30(2)

6.अनुच्छेद 29(2)

7.अहमदाबाद सेन्ट जेवियर कालेज बनाम गुजरात राज्य, ए0आई0आर0 1974 एस0सी0 1389

8.(1984)4 एस0सी0 500

9.(1986) 2 एस0सी0सी0

10.दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय, पृष्ठ 125

11.ए0आई0आर 2005 एस0सी0 3226

12.ए0आई0आर0 1963 एस0सी0 540

13.ए0आई0आर0 1958 एस0सी0 956

14.ए0आई0आर0 1988 एस0सी0 37; (1988) 3 उम0नि0प0 46

15.ए0आई0आर0 1992 एस0सी0 1630

16.ए0आई0आर0 2003 एस0सी0 355

17.डा0 नरेश अगरवाल बनाम भारत

18.1994 एस0सी0 1918

19.(1994) 4 उम0नि0प0 239

20.अहमद बनाम शाहबानो, ए0आई0आर0 1985 एस0सी0 945

21.दुर्गाप्रसाद वसु, भारत का संविधान–एक परिचय, पृष्ठ 429

22.सरला मुदगल बनाम भारत संघ (1995) 3 एस0सी0सी0 635

अभ्यास प्रश्न

1.भारत का संविधान शिक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी अधिकार प्रदान करता है,

क.अनुच्छेद 29 के तहत

ख.अनुच्छेद 30 के तहत

ग.अनुच्छेद 29 एवं 30 के तहत

घ.उपरोक्त में से कोई नहीं।

2.समान सिविल संहिता का उपबंध किया गया है,

क.अनुच्छेद 41 के अधीन

ख.अनुच्छेद 42 के अधीन

ग.अनुच्छेद 43 के अधीन

घ.अनुच्छेद 44 के अधीन

3.संविधान के अनुसार भारत में अल्पसंख्यक हैं,

क.भाषायी अल्पसंख्यक

ख.सांस्कृतिक अल्पसंख्यक

ग.धार्मिक अल्पसंख्यक

घ.उपरोक्त सभी

4.भारत के संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षण–संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार दिया गया है,

क.अनुच्छेद 25 के अधीन

ख.अनुच्छेद 27 के अधीन

ग.अनुच्छेद 28 के अधीन

घ.अनुच्छेद 30 के अधीन

सत्य/असत्य कथनः–

5.राज्य को अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं के विनियमन का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। सत्य/असत्य

6.अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं में दूसरे वर्ग या समूह के छात्र प्रवेश नहीं ले सकते। सत्य/असत्य

7.किसी अल्पसंख्यक शिक्षण संस्था को सम्बन्धन एवं मान्यता का भी मूल अधिकार प्राप्त है। सत्य/असत्य

8.अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अल्पसंख्यक संस्थान नहीं है। सत्य/असत्य

9.अनुच्छेद 30 बहुसंख्यक वर्गों को भी अपनी रूचि की शिक्षण संस्थाएं स्थापित एवं प्रशासित करने का अधिकार प्रदान करता है। सत्य/असत्य

10.राज्य द्वारा पोषित अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में सभी वर्गों के छात्र प्रवेश ले सकते हैं। सत्य/असत्य

4.9 सारांश

भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ सभी नागरिकों को अन्तःकरण और धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रता प्राप्त है। भाषायी, सांस्कृतिक और धार्मिक अल्पसंख्यक अपनी संस्कृति एवं धर्म को बनाये रखने एवं उससे सम्बन्धित शिक्षा संस्थानों की स्थापना एवं उसके प्रशासन हेतु नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं एवं यह स्वतन्त्रता उन्हें संविधान के अन्तर्गत मूल अधिकारों द्वारा प्रदान की गयी हैं। मुख्य रूप से 'अल्पसंख्यक' अभिव्यक्ति को भाषा एवं धर्म पर आधारित भावों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। टी0एम0ए0 फाउन्डेशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक के मामले में उच्चतम न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने अल्पसंख्यकों के निर्धारण के प्रश्न पर अपना निर्णय देते हुए कहा कि चूंकि राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर किया गया। अतः पंथ और भाषा के आधार पर कौन अल्पसंख्यक हैं इसका निर्धारण अलग–अलग राज्यों में उनकी संख्या के आधार पर किया जाएगा। संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं, यथा– उपासना की स्वतन्त्रता, भाषायी एवं सांस्कृतिक अधिकार, मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं, भाषायी अल्पसंख्यकों हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति, राज्य द्वारा पोषित शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार, अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने का अधिकार आदि। अनुच्छेद 29 एवं 30 दोनों शिक्षा एवं संस्कृति संबंधी अधिकार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 30(1) धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं उसके प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है, लेकिन यदि कोई ऐसी संस्था राज्य द्वारा पोषित या राज्य–निधि से सहायता प्राप्त करती है तो वह धर्म या भाषा आदि के आधार पर छात्रों को प्रवेश देने में विभेद नहीं कर सकती है।

सैन्ट जेवियर कालेज के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि किसी भी अल्पसंख्यक संस्था को सम्बन्धन (affiliation) का अधिकार मूल अधिकार नहीं है। जब कोई शिक्षा–संस्था सम्बन्धन या मान्यता के लिए आवेदन करती है तो यह विवक्षित रहता है कि वह शिक्षा संस्था ऐसे विनियमों का पालन करेगी जो सम्बन्धन या मान्यता देने वाले प्राधिकारी द्वारा बनाए जाते हैं, किन्तु मान्यता या सम्बन्धन की ऐसी शर्तों को विहित करना जिसके परिणाम स्वरूप अल्पसंख्यक वर्ग की अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार न्यून होता है। अनुच्छेद 30 का उल्लंघन होगा। मैनेजिंग बोर्ड आफ मिली तालीमी मिशन बनाम बिहार राज्य के वाद में यह निर्धारित किया गया कि हालांकि सम्बन्धन का अधिकार एक मूल अधिकार नहीं है किन्तु बिना उचित और पर्याप्त आधार के सम्बन्धन या मान्यता देने से इन्कार करना अनुच्छेद 30 का अतिक्रमण है।

अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यक वर्गों को प्रदान किये गये अधिकार बहुसंख्यक वर्ग से केवल समानता सुनिश्चित करने के लिए हैं। राष्ट्रहित, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक कल्याण, लोक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य, स्वच्छता, कराधान, आदि से संबंधित देश की साधारण विधियाँ अल्पसंख्यक संस्थाओं को भी समान रूप से लागू होंगी। शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने और प्रशासन करने का अधिकार आत्यान्तिक नहीं है, न ही इसमें कुप्रशासन सम्मिलित होता है। शैक्षित स्वरूप और मानकों को सुनिश्चित करने और शैक्षिक उत्कर्ष बनाए रखने के लिए नियन्त्रण के उपाय किए जा सकते हैं। इस कोटि में साधारणतया विधार्थियों और अध्यापकों से सम्बन्धित विनियम, कर्मचारियों (अध्यापन एवं अध्यापनेत्तर) की नियुक्ति के लिए पात्रता के मानदंड और अहर्ताएं तथा सेवा की शर्ते अधिकथित करने के लिए विनियम ओर पाठ्यविवरण तथा अध्ययन पाठ्यक्रम विहित करने के लिए विनियम आते हैं। ऐसे विनियम किसी भी प्रकार से अनुच्छेद 30(1) के अधीन अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करते। अनुच्छेद 30 युक्तियुक्त विनियम बनाने से राज्य को नहीं रोकता है लेकिन विनियम अल्पसंख्यक शिक्षा–संस्था के हित में बनाये जाने चाहिए। क्रिश्चियन मेडिकल कालेज हास्पिटल एम्पलाइज यूनियन बनाम क्रिश्चियन मेडिकल कालेज, वेलूर एसोसिएशन के मामले में न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धाराएं 9.।ए 11.।ए 12 और 33 अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षा संस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होती हैं क्योंकि ये विनियात्मक प्रकृति की है और इनसे अनु0 30(1) में प्रदत्त अधिकारों पर कोई आघात नहीं पड़ता है। टी0एम0ए0 फाउन्डेशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक के महत्वपूर्ण वाद में न्यायालय ने सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं के बारे में स्पष्ट किया कि ऐसे संस्थान को संविधान के अनुच्छेद 30(1) के अन्तर्गत अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों को प्रवेश देने का अधिकार अनुच्छेद 29(2) की भावनाओं के अनुसार होगा अर्थात उन्हें गैर अल्पसंख्यक समुदाय के कुछ छात्रों को भी प्रवेश देना होगा एवं ऐसी व्यवसायिक एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के लिये योग्यता के मानकों में कमी नहीं की जा सकेगी। ऐसे व्यवसायिक संस्थानों में छात्रों का प्रवेश राज्य द्वारा आयोजित प्रवेश परीक्षा के आधार पर किया जायेगा। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अल्पसंख्यक संस्था की अपनी प्रवेश प्रक्रिया हो सकती है किन्तु वह प्रक्रिया उचित एवं पारदर्शी होनी चाहिए एवं व्यवसायिक और उच्चतर शिक्षा के कालेजों में छात्रों का प्रवेश योग्यता के आधार पर ही होना चाहिए। गैर सरकारी सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थानों को भी छात्रों को प्रवेश देते समय योग्यता की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अन्यथा संस्था उच्च स्तर प्राप्त करने में विफल हो जाएगी। अनुच्छेद 30 के उपबंध धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को अतिरिक्त संरक्षण प्रदान करते हैं किन्तु वे आत्यान्तिक अधिकार नहीं है। कुप्रबन्ध एवं शिक्षा का स्तर बनाए रखने आदि हेतु वे विनियमन के अधीन हैं। भारत के संविधान में किसी भी मत को राजकीय धर्म मानने का उपबंध नहीं है। उद्देशिका में विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का वचन दिया गया है। अनुच्छेद 25

से 28 धर्म स्वातन्त्रय का अधिकार सुनिश्चित करते हैं। उद्देशिका में संविधान (42वाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा ''पंथ निरपेक्ष'' शब्द अन्तःस्थापित किया गया। बोम्मई बनाम भारत संघ के वाद में न्यायालय ने कहा कि पंथ निरपेक्षता संविधान के आधारभूत लक्षणों में से एक हैं। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने कहा कि पंथनिरपेक्षता ईश्वर विरोधी नहीं है। भारतीय परिप्रक्ष्य में इसका सकारात्मक रूप है। राज्य न तो किसी धर्म का पक्ष लेता है और न ही किसी धर्म का विरोध करता है, वह धर्म के मामले में सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार कहता है। राज्य धर्म के मामले में निरपेक्ष व्यवहार करता है।

संविधान में धर्मनिरपेक्षता (पंथनिरपेक्षता) के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। पश्चिमी देशों में धर्मनिरपेक्षता के लक्षणों में आधुनिकता, ज्ञान–विज्ञान एवं सामाजिक क्रान्तिकारिता अनिवार्य है, जबकि भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक भेदभाव व धार्मिक साम्प्रदायिक टकराव के निषेध तक सीमित है। भारत का संविधान धार्मिक आस्था रखने की स्वतन्त्रता देता है न कि बाध्यता की। अतः संविधान भारतीय नागरिक को नास्तिक होने की स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय संविधान धर्म की निंदा का भी अधिकार प्रदान करता है। संविधान ने धर्मनिरपेक्षता के सकारात्मक रूप को अपनाया है। नकारात्मक रूप को नहीं। इस प्रकार भारतीय पंथनिरपेक्षता अपने संवैधानिक रूप में सकारात्मक रूप में सर्वधर्म समभाव का ही दूसरा नाम है। वह सहिष्णुता, शांति, अहिंसा, सामंजस्य, समन्वय, निरन्तरता एवं विकास का सम्मिलित रूप है। धार्मिक कट्टरता एक गंभीर समस्या है जिससे आज पूरी दुनिया चिंतित है। यही वह समस्या है जिसने पाकिस्तान को जन्म दिया। इसे धार्मिक अतिवाद भी कहा जाता है। इससे सम्बन्धित लोग आंख बंद करके यह विश्वास करते हैं कि पूरा सच केवल उनके स्वयं के धर्मशास्त्रों में दिया गया है। वे अन्य धर्म मतावलम्बियों एवं धर्म शास्त्रों को नफरत की नजर से देखते हैं। उनका एक मात्र लक्ष्य होता है पूरे विश्व में अपने धर्म का प्रसार करना एवं इसी अंधे धार्मिक उत्साह को धर्मयुद्ध या पवित्र युद्ध या जिहाद का नाम देकर मानवता से साथ क्रूरता पर उतर आते हैं। भारत में भी धर्मनिरपेक्षता पर धार्मिक कट्टरता समय–समय पर हावी होती नजर आती है। शाहबानों वाद में भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की सरकार एक विशेष धर्म के लोगों के आगे झुक गयी एवं उसने उच्चतम न्यायालय के निर्णय को बदलने के लिये मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किया एवं मुस्लिम स्त्रियों को उनके सामान्य अधिकार से वंचित कर दिया। आधुनिक सभ्य देश के लिए यह अधिनियम लज्जाजनक है। इस अधिनियम से संविधान की उद्देशिका में प्रकल्पित राष्ट्र की एकता को आघात पहुँचता है। इसके परिणामस्वरूप प्रगतिशील मुस्लिम राष्ट्रों की दृष्टि में भी भारत एक पिछड़ा और दरियाकनूसी राष्ट्र हो गया।

एक ही देश में धर्म के नाम पर लोगों पर अलग–अलग विधियों को लागू करना सभ्य और प्रगतिशील समाज के लिये कलंक के समान है। कोई धर्म जानबूझकर विकृति की अनुमति नहीं

देता है। अनेक इस्लामिक देशों में भी वैयक्तिक विधि का संहिताकरण किया जा चुका है। एक समान सिविल संहिता विचारों के आधार पर मत भिन्नता एवं कट्टरता को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता को सशक्त करने में सहायक होगी इससे भारत की पंथनिरपेक्षता और भी सुदृढ़ होगी।

4.10 महत्वपूर्ण शब्दावली

अल्पसंख्यकः– एक क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों का समूह जो उसी क्षेत्र में निवास करने वाले अन्य अन्य वर्ग के लोगों के समूह, जिसकी भाषा, धर्म या संस्कृति पृथक है, से संख्या में कम हो।

पोषितः– सहायता प्राप्त।

समान सिविल संहिताः– किसी राज्य में निवास करने वाले सभी, वर्गो, धर्मो के लोगों जिनकी भिन्न संस्कृतियां एवं उदगम हों, के लिये समान नागरिक विधि जो उन पर बिना किसी विभेद के लागू हों,

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (घ) 3. (घ) 4. (घ) 5. असत्य 6.असत्य 7. असत्य 8. सत्य 9. असत्य 10 सत्य

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

1-hi.wikipedia.org/wiki//keZfujis{krk

2.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी 3.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

4.वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

4.13 सहायक/उपयोगी सामग्री

1.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

2.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

4.14निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत के संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को कौन से अधिकार प्रदान किये गये हैं?

2.अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं को राज्य किस हद तक विनियमित कर सकता है?

3.क्या भारत सही मायनों में पंथ निरपेक्ष है? क्या धार्मिक कट्टरता राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिये खतरा है? अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–3. शक्तियों का पृथक्करण

इकाई–1. न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक अवरोध

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 न्यायिक सक्रियता की अवधारणा

1.4 न्यायिक सक्रियता – शब्द की उत्त्पत्ति एवं परिभाषा

1.5 न्यायिक सक्रियता के सिद्धान्त

1.5.1 शून्य पूर्ति का सिद्धान्त

1.5.2 सामाजिक आवश्यकता का सिद्धान्त

1.6 भारत में न्यायिक सक्रियता का मूल एवं विकास

1.7 न्यायिक सक्रियता– सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू

1.8 न्यायिक अवरोध

1.9 न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद

1.10 सारांश

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.12 महत्वूपर्ण शब्दावली

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

1.14 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

न्यायालय को संविधान के संरक्षक की संज्ञा प्रदान की गई है। संविधान का अनुच्छेद 13 न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। जिस शक्ति के माध्यम से उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32) एवं उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226) विधान मण्डलों द्वारा पारित किसी विधि की संविधान की दृष्टि से समीक्षा करके उसे असंवैधानिक भी घोषित कर सकते हैं। भारतीय संविधान द्वारा एक लोक कल्याणकाकरी राज्य की स्थपना की गयी है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाना सरकार का प्रथम कर्तव्य है। परन्तु विधायिक और कार्यपालिका द्वारा अपना यह कर्तव्य ठीक से न निभा पाने के कारण न्यायालय जनहित के अनेक मामलों में सरकार और प्राधिकारियों को संविधान और अन्य विधियों के अन्तर्गत उनके कर्तव्यों का पालन करने के लिये विवश कर रहा है। उच्चतम न्यायालय की यही कार्यवाही 'न्यायिक सक्रियता' को जन्म दे रही है। जिसके बारे में हम प्रस्तुत ईकाई में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे।

•न्यायिक सक्रियता की अवधारणा

•न्यायिक सक्रियता की उत्पत्ति के कारण।

•न्यायिक सक्रियता के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू

•न्यायिक अवरोध

•न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद

1.3 न्यायिक सक्रियता की अवधारणा

किसी भी लोकतन्त्र में तीन प्रमुख स्तम्भ होते हैं— न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका, जिनका एक दूसरे में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। अठारहवीं सदी में फ्रांसीसी दर्शनिक मांटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शाक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसार सरकार की तीनों शक्तियों (न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका) को एक में निहित न होकर अलग—अलग होना चाहिए। किसी एक के हाथ में सभी शक्तियां केन्द्रित होने से निरंकुशता उत्पन्न होने का खतरा रहता है और तानाशाही की प्रवृत्ति पनपने लगती है। अमेरिका का संविधान इसी सिद्धान्त पर कार्य करता है। वहॉ कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में, विधायी शक्ति

कांग्रेस में एवं न्यायपालिका शक्ति उच्चतम न्यायालय में निहित है। भारतीय संविधान में हालांकि शक्तियों का पृथक्करण तो किया गया है परन्तु इस नियम का कठोरता से पालन नहीं किया गया है। भारत में कार्यपालिका शक्ति मंत्रिमंडल में निहित होती है जिसका सदस्य होने के लिये विधानमण्डल का सदस्य होना आवश्यक है, राष्ट्रपति को न्यायिक कृत्य के अन्तर्गत अनुच्छेद 72 के अधीन क्षमादान की शक्ति है वहीं अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत अध्यादेश जारी करने की विधायी शक्ति भी प्राप्त है। संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका और विधायिका का पूर्णतः अलग होना सम्भव नहीं है इसलिये संविधान में इसका ध्यान रखा गया है कि सरकार का कोई अंग निरंकुश न हो जाये अतः कार्यपालिका को लोकसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है और न्यायपालिका को यह शक्ति दी गयी है कि कार्यपालिका या विधायिका के बेलगाम होने पर उनके सांविधानिक सिद्धान्तों के विरूद्ध क्रियाकलापों को अविधिमान्य घोषित करके उन्हें उनके दायित्वों का अहसास कराके सीमा के अन्दर कार्य करने को बाध्य कर सके। अनुच्छेद 105 एवं 194 जहाँ संसद और विधानमण्डल के सदस्यों के भाषण एवं मत देने की स्वतन्त्रता के संदर्भ में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप पर रोक लगाता है, वहीं अनुच्छेद 13, 32 एवं 226 न्यायपालिका को विधायिका द्वारा अतिक्रमण की स्थिति में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार भारतीय संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों के मध्य शक्ति संतुलन का पूरा प्रयास किया गया है। आज हमारी विधायिका और कार्यपालिका विभिन्न कारणों से अपने दायित्वों का निर्वाह करने में अक्षम साबित हो रही हैं, आये दिन उस पर भ्रष्टाचार के अनेकों आरोप लगते हैं, संविधान में वर्णित लोक कल्याणकारी राज्य की भावना, भ्रष्टाचार एवं स्वार्थ के चलते तिरोहित होती जा रही हैं। विधान मण्डल द्वारा संविधान के बारम्बार संशोधनों द्वारा जब संविधान के आधारिक लक्षणों[1] पर चोट की जाने लगी तो न्यायालय को संविधान का संरक्षक होने के नाते हस्तक्षेप करना ही पड़ा। इन्हीं सब कारणों से न्यायिक सक्रियता की अवधारणा ने जन्म लिया।

1.4 न्यायिक सक्रियता

<u>शब्द की उत्पत्ति एवं परिभाषा</u>

सर्वप्रथम आर्थर एम. शेलेसिंगर (Arthus Meier Schelsinger, Jr.) ने 'फारचून मेगजीन' में 'जीम ैनचतमउ ब्वनतज' नाम के आर्टिकिल में न्यायिक सक्रियता शब्दावली का उपयोग किया। हालांकि उन्हें उस समय (1947) इस शब्दावली को लेकर काफी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा था। Black's Law Dictionary के अनुसार जब न्यायाधीश अपने निर्णय को देते समय दूसरे विषयों के साथ–साथ लोक नीति पर अपने निजी विचार भी व्यक्त करने लगते हैं, तब उसे न्यायिक सकियता का नाम दिया जाता है। लोक प्रशासन के प्रोफेसन ब्रेडली केनन

(Bradley Canon) ने वे छः आयाम बताये हैं जिनके अन्तर्गत न्यायालय को सक्रियतावादी माना जा सकता है। वे छः आयाम हैंः–

1.बहुमतवाद (Majoritarianism)

2.व्याख्यात्मक स्थिरता (Interpretive Stability)

3.व्याख्यात्मक सच्चाई (Interpretive Fidelity)

4.तात्विकध्लोकतान्त्रिक प्रक्रिया (Substance/demucratic Processes)

5.नीति की विशिष्टिता (Specificity of Policy) एवं

6.वैकल्पिक नीति निर्माता की उपलब्धता (Availability of an alternative Policymaker)

जार्ज बुश के सोलिसिटर जनरल रहे थियोडोर आलसन ने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि बहुत से लोग न्यायिक सक्रियता शब्द का उपयोग उन निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में करते हैं जिन्हें वे पसंद नहीं करते। अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के जज एन्थोनी न्यायिक सक्रियता को सही नहीं मानते उनके अनुसार यह व्यक्तिपरक निर्णयों पर आश्रित होता है।

1.5 न्यायिक सक्रियता के सिद्धान्त

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा से सम्बन्धित दो सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैंः–

1.5.1 शून्य पूर्ति का सिद्धान्त (The Theory of Vacuum filling)

इस सिद्धान्त के अनुसार जब सरकार के किसी अंग की अक्रमण्यता एवं आलस के कारण व्यवस्था में शून्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो यह देश के लिये अहितकारी होती है और यह लोकतन्त्र के अन्य स्तम्भों को भी नुकसान पहुँचा सकती है। यह शून्यता उत्पन्न होने के कई कारण है, उदाहरण के तौर पर अकर्मठता, विधि का सम्मान न करना, अनदेखी, भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति, चारित्रिक हनन आदि। जब ये सब बीमारियाँ सरकार के दो अंगों विधायिका और कार्यपालिका में पैर पसारने लगती हैं तो तीसरे अंग न्यायपालिका के पास और कोई विकल्प नहीं शेष रहता सिवाय इसके कि वह अपने आयामों में विस्तार लाये और बाकी दोनों अंगों में विस्तारित शून्य की भरने का प्रयास करे।

अतः इस सिद्धान्त के अनुसार न्यायिक अतिसक्रियतावाद इसी शून्य को भरने की कोशिश में जन्म लेता है, अर्थात कार्यपालिका एवं विधायिका की निष्क्रियता की परिणीति न्यायिक सक्रियता के रूप में सामने आती है।

1.5.2. सामाजिक आवश्यकता का सिद्धान्त (Theory of Social want)

इस सिद्धान्त के अनुसार न्यायिक सक्रियता की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब वर्तमान विधयिका देश की मौजूदा समस्याओं का सामना करने में असफल साबित होती है। ऐसे में न्यायपालिका का कर्तव्य होता है कि वह स्वयं सामने आये और समस्याओं को हल करने का रास्ता तलाश करे। इसे प्राप्त करने में मौजूदा विधि की अपारम्परिक व्याख्या की जाती है। इस तरह न्यायिक सक्रियता पनपती है। इस सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार सामाजिक बदलाव में न्यायिक सक्रियता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। न्यायपालिका ही मृतपाय विधि में नये प्राण फूँकती है। इस तरह न्यायिक सक्रियता के माध्यम से न्यायपालिको परिवर्तन में उत्प्रेरक का काम करती है।

1.6 भारत में न्यायिक सक्रियता का मूल एवं विकास

अगर भारत में न्यायिक सक्रियता का इतिहास देखें तो 1883 का वाकया मिलता है, जब न्यायमूर्ति महमूद ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में विचाराधीन एक मामले में विसम्म्त निर्णय दिया था। उस विचाराधीन मामले में प्रार्थी वकील का खर्चा नहीं उठा सकता था। तब प्रश्न यह था कि क्या सिर्फ वाद के तथ्यों को कागजों पर पढ़कर ही निर्णय दे दिया जाये, तब न्यायमूर्ति महमूद ने संबंधित विधि की व्यापक संभव व्याख्या दी थी एवं पढ़ने का विरोध किया था कि किसी भी वाद में पहली शर्त यह है कि मामले को सुनकर ही निपटारा किया जाये। तब उन्होंने न्यायिक सक्रियता के बीज बोये थे। भारत में न्यायिक सक्रियता के संदर्भ में हम सामाजिक आवश्यकता के सिद्धान्त को लागू कर सकते हैं। आधुनिक रूप में भारत में न्यायिक सक्रियता का जन्म बहुत बाद में तब हुआ जब कार्यपालिका की ज्यादतियों और अधिकार हनन के मामलों में न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना पड़ा। नौकरशाही की प्रवृत्ति जनता के लिये काम करने की न होकर अपने लिये काम करने की हो गयी। राजनीतिक प्रणाली में भ्रष्टाचार एवं शोषण सन्निहित हो गया। धन बल एवं बाहुवल से प्रजा का शोषण अपनी सीमाएं पार करने लगा, ऐसे में कुछ इस प्रकार की परिस्थितियां बनकर उभरी जिसमें न्यायपालिका का यह कर्तव्य हो गया कि वह आम जनता को कुछ राहत पहुँचायें। सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[2] वाद में न्यायमूर्ति वी0आर0 कृष्णा ने परिस्थिति को निम्न शब्दों में व्याख्यित किया,

''हालांकि कानून सबसे अच्छा समाधान था परन्तु जब विधि निर्माता बहुत वक्त लेने लगे और सामाजिक धैर्य पीड़ित होने लगे तो न्यायालयों को दूर संगमरमर की प्रतीक्षा किये बिना लकड़ी पर वक्र एवं पत्थर पर खोदकर ही व्याख्या लिखनी पड़ेगी।'' मेनका गांधी बनाम भारत संघ[3] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 को एक नया आयाम प्रदान किया। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त ''प्रक्रिया'' का अर्थ कोई प्रक्रिया नहीं है बल्कि ऐसी प्रक्रिया है जो ऋजु, न्यायपूर्ण और युक्तियुक्त हो। न्यायाधीश श्री भगवती ने बहुमत से निर्णय सुनाते हुए कहा कि अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त ''दैहिक स्वतन्त्रता पदावली का सामान्य एवं स्वभाविक अर्थ लगाना चाहिए और उकसा ऐसा सीमित अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे दैहिक स्वतन्त्रता के वे तत्व उसमें से निकल जायें जिनका अनुच्छेद 19 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि आवश्यक नहीं है कि किसी अधिकार का उल्लेख किसी अनुच्छेद में किया जाये तभी वह मूल अधिकार की श्रेणी में आयेगा। यदि कोई अधिकार किसी अधिकार के प्रयोग के लिए आवश्यक है तो वह मूल अधिकार होगा भले ही उसका स्पष्ट उल्लेख संविधान के किसी अनुच्छेद में नहीं किया गया हो।

गोपालन के मामले में दिये गये अपने निर्णय को उच्चतम न्यायालय ने मेनका गांधी वाद में उलट दिया। इसी प्रकार अनेकों उदाहरण हैं जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक सक्रियता का उदाहरण देश दिया गया। मुरली एस0 देवरा बनाम भारत संघ[4] में न्यायालय ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान रोकने का निर्देश दिया। 23 सितम्बर 2006 को उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में देश के विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में होने वाले छात्र संघ के चुनावों को स्वच्छ रूप से कराने के लिये अनेक प्रभावकारी निर्देश दिये हैं। इसी प्रकार अपने एक दूसरे ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने देश के पुलिस संगठन में व्यापक सुधार का आदेश दिया है। 2 मई, 2002 को उच्चतम न्यायालय ने अपने महत्वपूर्ण निर्णय में निर्वाचन आयोग को निर्देश दिया कि वह चुनाव में खड़े होने वाले प्रत्याशियों के बारे में अपराधिक रिकार्ड, शिक्षा सम्पत्ति और देनदारी आदि का विवरण जनसंचार एवं समाचार के माध्यमों पर मतदाताओं को दें। न्यायालय ने कहा कि मतदाता को अपने प्रत्याशियों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करना उनका संवैधानिक अधिकार है। चुनावों में भ्रष्टाचार रोकने की दिशा में यह एक सराहनीय कदम था। दिल्ली डेमोक्रेटिक वाकिंग वूमेन्स फोरम बनाम भारत संघ[5] के मामले में महिलाओं के साथ बढ़ते यौन अपराधों के प्रति गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय ने ऐसे मामलों के शीघ्र परीक्षण तथा उन्हें प्रतिकर प्रदान करने एवं उनके पुनर्वास के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त विहित किया। इसी प्रकार कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण दिलाने के लये विशाखा बनाम राज्यस्थान राज्य[6] के मामले विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त विहित किया एवं निर्धारित किया कि जब तक विधान मण्डल

इस विषय में समुचित विधि नहीं बनाता तब तक न्यायालय द्वारा विहित निर्देश लागू रहेंगे। कुछ समय पहले तक आम जनता यह मानती थी विधायिका सर्वोच्च अंग है एवं यह कार्यपालिका एवं न्यायपालिका दोनों को ही नहीं बल्कि संविधान से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। परन्तु उच्चतम न्यायालय द्वारा नितीश कटारा काण्ड, अति चर्चित तंदूर काण्ड, मामलों में उच्च राजनीतिक रसूख एवं धन–बल एवं बाहुवल वाले अपराधियों को न्यायिक सक्रियता के माध्यम से सजा देकर न्यायालय ने न केवल आम जन में न्यायालय के प्रति पुनः विश्वास जागृत कर दिया है बल्कि स्वयं को कार्यपालिका एवं विधायिका से ऊपर संविधान एवं आम जनता के संरक्षक के रूप में स्थापित किया है।

1.7 न्यायिक सक्रियता–सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू

सबसे ज्वलंत प्रश्न जो उठता है, वह यह है कि न्यायिक सक्रियता सही है या गलत, समय समय पर इसकी आलोचना भी होती रही है।

1.एक धारणा के अनुसार न्यायिक सक्रियता हमारे लोकतन्त्र के लिये हानिकारक है, इसके कारण जनता का विश्वास नौकरशाह और सरकारी तन्त्र से उठता जा रहा है। कोई भी संदेह के घेरे से बाहर नहीं यहाँ तक देश का प्रधानमंत्री भी।

2.पिछले दशक के दौरान हमारे उच्चतम न्यायालय ने अनेकों नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जैसे– ''आधारिक लक्षण'', ''आधारिक संरचना'', ''भविष्यलक्ष्मी आरोहण'' या ''अप्रमाणित मूल अधिकार'', इनके लिये संविधान में कोई स्पष्ट आधार नहीं है, यदि यह प्रवृत्ति रोकी नहीं गई तो इसके गलत परिणाम होंगे।[7]

3.इसके कारण भ्रम और अनिश्चितता उत्पन्न होगी, लिखित संविधान का उद्देश्य राजनीतिक प्रणाली में निश्चितता और व्यवस्था लाना होता है किन्तु इतने सारे संविधान संशोधनों और उस पर न्यायालय द्वारा नवीन सिद्धान्तों के प्रतिपादन से अनिश्चितता और भ्रम बढ़ते जा रहे।

4.संशोधनों और न्यायिक सक्रियता से जब विधान मण्डल और न्यायपालिका के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो कड़वाहट बढ़ती है जो देश के लिए सही नहीं है।

5.न्यायिक अतिरेकवाद न्यायपालिका का सूर्खियों में आने के आवेश का परिणाम है। दूसरे प्रशासनों की खामियाँ न्यायिक प्रशासन में भी है। न्यायमूर्ति पी0बी0 सावंत की टिप्पणी भी इसी ओर इशारा करती है, ''न्यायपालिका नेताओं की तुलना में अधिक खतरनाक है, क्योंकि इसके खिलाफ कोई सहारा नहीं है, बचाने वाला ही मारने वाला, रक्षक ही कैदी बनाने वाला बन जाता है।

6.आलोचक लोकहितवाद के दुरूपयोग की आशंका व्यक्त करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने भी विधिक समुदाय को इसके प्रति आगाह किया है उन्होंने इन मामलों के उचित विनियमन की जरूरत पर बल दिया।

7.यह कोई नहीं कह सकता कि न्यायिक सक्रियता द्वारा किन–किन क्षेत्रों में नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जायेगा, क्योंकि इनमें अंतिम वचन उच्चतम न्यायालय का ही होगा, इसका परिणाम यह होगा कि संविधान का संशोधन न्यायपालिका के द्वारा होगा जबकि संविधान का अनुच्छेद 368 विनिर्दिष्ट रूप से यह शक्ति विधायी तन्त्र को सौंपता है। इसका उदाहरण उच्चतम न्यायालय का यह निर्देश है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन होना चाहिए। अनुच्छेद 312 यह अधिकथित करता है कि अखिल भारतीय सेवा के सृजन के लिए राज्य सभा के उपस्थिति सदस्यों के 2/3 बहुमत संकल्प पारित करना चाहिए और उसके वह बाद विधि बनाकर उस सेवा का उपबंध कर सकती है। न्यायालय का निर्देश संविधान के स्पष्ट उपबंध का स्थान नहीं ले सकता। निर्वचन के नाम पर वास्तव में यह संविधान का संशोधन है।[8]

न्यायिक सक्रियता के अनेक सकारात्मक पहलू भी हैं–

1.न्यायिक सक्रियता द्वारा अनेक घोटालों का पता लग पाया है, जैसे– हवाला घोटाला, चारा घोटाला, सेंट किट्स घोटाला, सरकारी घरों एवं पेट्रोल पम्पों का विधि विरूद्ध आवंटन, उर्वरक घोटाला आदि।

2.न्यायपालिका, विधायिका की तरह ही मनुष्य द्वारा ही संचालित की जाती है। अतः मानव जनित गलतियां होनी स्वभाविक है।

3.सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही अनेकों वादों में लोकहित वाद के दुरूपयोग की तरफ ध्यान दिलाते हुए चेताया है अर्थात वह कमजोरियों को दूर करने में प्रयासरत है न कि गलतियाँ दोहराने में।

4.संविधान द्वारा न्यायालय को संरक्षक की भूमिका प्रदान की गयी है, इसके अतिरिक्त आज विधायिका एवं कार्यपालिका राजनीतिक कारणों से नागरिक समस्याओं का निपटारा करने में अत्यन्त अक्षम एवं असहाय हो गये हैं। आज सामान्य जनता के लिये लोकहित वाद के माध्यम से न्यायिक सक्रियता वरदान सिद्ध हुई है, देश के बड़े पदों पर आसीन लोगों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश उच्चतम न्यायालय ने ही किया है। न्यायपालिका को स्वतन्त्रत एवं निष्पक्ष बनाए रखने का हम सभी का उत्तरदायित्व है, इसी में लोकतन्त्र की सफलता निहित है।

5.आज साधारण नागरिक अपने अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायपालिका का दरवाजा खटखटाने को विवश है। महानगरों में जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह न्यायालय जा रहा है। चाहे वह पीने के लिये स्वच्छ जल की समस्या हो, आधुनिक जीवन में बढ़ते हुए भयंकर प्रदूषण का मामला हो, वीरप्पन जैसे अपराधियों को पकड़ने की समस्या हो, उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव कराने का मामला हो, राजनीति में भ्रष्टाचार का मामला हो, महिलाओं व बच्चों के शारीरिक शोषण का मामला हो, सभी मामलों में न्यायालय ने सरकार

को समुचित कदम उठाने के निर्देश दिये हैं, ऐसा जनहितवाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा ही सम्भव हो पाया है।[9]

1.8 न्यायिक अवरोध

इसे न्यायिक संयम भी कहा जाता है। न्यायिक सक्रियता के उलट इसमें विधि की सीमित व्याख्या की जाती है। न्यायिक अवरोध या संयम न्यायिक व्याख्या का एक सिद्धान्त है, जिसमें न्यायाधीशों को अपनी शक्ति का सीमित उपयोग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है कि जहाँ तक हो सके विधि को ही सर्वोपरि रखना चाहिए। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत न्यायाधीश स्टेयर डिसाइसिस (Stare decisis) के सिद्धान्त का पूर्णतः पालन करने पर जोर देते हैं एवं न्यायिक पूर्ण निर्णयों को पूर्णतः मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें सर्वोपरि रखते हैं। जस्टिस ओलिवर वेन्डेल होम्स (oliver wendell Holmes) इस सिद्धान्त के मुख्य समर्थकों में से एक माने जाते हैं जिन्होंने अपनी कई पुस्तकों में न्यायिक संयम के महत्व का वर्णन किया है।

1.9 न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद

इसे हम न्यायिक अतिरेकवाद का विलोम भी कह सकते हैं। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत न्यायाधीश न्यायिक पूर्व निर्णयों एवं ेजंतम कमबपेपे पर पूर्णतः अमल करते हैं एवं इस बात पर जोर देते हैं कि न्यायाधीशों को, संवैधानिक विधि की स्थिरता बनाये रखने के लिये उनमें बहुत कम वृद्धि सम्बन्धी परिवर्तन करने चाहिए। न्यायिक अतिसूक्ष्मवादियों का मानना है कि एक स्थिर संवैधानिक विधि सभी के लिये लाभकारी है।

निर्देश

1.केशवानन्द भारत केस

2.AIR 1978 SC 1675

3.AIR 1978 SC 597

4.AIR 2002 SC 40

5-(1995) 1 SCC 14

6.AIR 1997 SC 3011

7.आचार्य डा0 डी0डी0 वसु भारत का संविधान एक परिचय पुनमुद्रण नौवा संस्करण, पृष्ठ 426

8.उच्चतम न्यायालय अधिवक्ता बनाम भारत संघ (1993) 4 ैब्ब 441

9.डा0 जय नारायण पाण्डे, भारत का संविधान, 44वां संस्करण, पृष्ठ 358–359

<u>अभ्यास प्रश्नः–</u>

1.जनहित वाद को जन्म दिया है–

क.न्यायिक अतिरेकवाद ने

ख.न्यायिक अवरोध ने

ग.न्यायिक सक्रियता ने

घ.न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद ने

2.संविधान के अनुच्छेद .... के द्वारा न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है।

क.12

ख.13

ग.32

घ.226

3.न्यायिक सक्रियता का जन्म होता है–

क.विधायिका की अक्षमता से

ख.कार्यपालिका की अक्षमता से

ग.उपरोक्त दोनों

घ.उपरोक्त में कोई नहीं,

4.अमेरिकी संविधान शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का .... पालन करता है।

5.न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक अवरोध एक दूसरे के .... हैं।

6.किसी भी लोकतन्त्र में न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका, तीन प्रमुख स्तम्भ होते हैं। **सत्य/असत्य**

7.उच्चतम न्यायालय को संविधान के संरक्षक की भूमिका प्राप्त है। **सत्य/असत्य**

8.भारत में न्यायिक सक्रियता का जन्म सामाजिक आवश्यकता के सिद्धान्त से माना जा सकता है। **सत्य/असत्य**

9.न्यायिक अवरोध एवं न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद एक ही हैं। **सत्य/असत्य**

1.10 सारांश

भारतीय संविधान के अन्तर्गत एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गयी है। जिसके अन्तर्गत नागरिकों को जीवन की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाना सरकार का प्रथम कर्तव्य

है। सरकार द्वारा अपने दायित्व का वहन ठीक से न कर पाने के कारण आम जनता त्रस्त होकर न्यायालय का द्वार खटखटाने को बाध्य हो गयी है। जिसके कारण न्यायालय सरकार को निर्देश जारी करने के लिये बाध्य हो गया है। न्यायालय की यही भूमिका न्यायिक सक्रियता कहलाती है। फ्रांसीसी विद्वान मांटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी लोकतन्त्र के तीनों अंगों–न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका में शक्तियों का बंटवारा होना चाहिए एवं तीनों की कमान अलग–अलग व्यक्तियों/निकाय के हाथों में होनी चाहिए, ताकि शक्तियों का केन्द्रीयकरण न हो, केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति निरंकुशता को जन्म देती है।

भारत के संविधान में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का पूर्णतः पालन नहीं किया गया है। भारत में न्यायपालिका संविधान के संरक्षक की भूमिका में हैं। न्यायिक सक्रियता से संबंधित दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। प्रथम शून्य पूर्ति का सिद्धान्त, जिसके अन्तर्गत कार्यपालिका एवं विधायिका की अकर्मण्यता के कारण उसमें शून्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसकी भरपाई करने हेतु न्यायपालिका को अपने क्षेत्र में विस्तार करना पड़ता है। द्वितीय सिद्धान्त है– सामाजिक आवश्यकता का सिद्धान्त, जिसके अनुसार जब कार्यपालिका एवं विधायिका समाज की आकांक्षाओं की पूर्ति करने हेतु अक्षम सिद्ध होती है जो जनसाधारण की दृष्टि न्यायालय की ओर उठ जाती है जिसकी पूर्ति हेतु न्यायिक सक्रियता का जन्म होता है। भारत में न्यायिक सक्रियता ने इसी सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में जन्म लिया है। न्यायालय ने प्रत्येक क्षेत्र में सक्रियता दिखाते हुए हालांकि आमजन को बेहद राहत का अनुभव कराया है, परन्तु इसकी आलोचना भी होती रही है। न्यायिक सक्रियता से कई बार इसकी बाकी अंगों से टकराव की स्थिति भी बन जाती है जो देश के लोकतन्त्रात्मिक ढाँचे के लिये सही नहीं है। अतः इसमें न्यायालय को भी कदम फूँक कर रखने की जरूरत है। न्यायिक अवरोध, न्यायिक सक्रियता का विरोधाभाषी शब्द है जिसमें न्यायाधीशों को अपनी शक्ति का सीमित उपयोग का पाठ पढ़ाया जाता है। इसी से मिलता जुलता न्यायिक अतिसूक्ष्मवाद है जिसके अन्तर्गत वर्तमान विधि की स्थिरता पर बल दिया जाता है।

1.11 महत्वपूर्ण शब्दावली

निरंकुशता–एक ऐसी स्थिति जिसमें अपार शक्तियों को पाने पर व्यक्ति/निकाय मनमानी पर उतर आता है।

विधायिका– विधि का निर्माण करने वाली संस्था। कार्यपालिका– विधि को कार्यरूप प्रदान करने वाली संस्था।

संविधान –देश का सर्वोच्च कानून।

1.12 संदर्भ ग्रन्थ–

1. वसु आचार्य डा. दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा मागपुर।

2. पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी

3. भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

4. en.wikipedia.org

5. www.scribd.com

1.13 सहायक/उपयोगी सामग्री

1.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

2.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत में न्यायिक सक्रियवाद की उत्पत्ति का वर्णन करें।

2.न्यायिक अतिरेकवाद क्या है? इसके नकारात्मक पहलू कौन से हैं?

3.न्यायिक अवरोध से आप क्या समझते हैं? यह किस तरह न्यायिक सक्रियता से भिन्न है।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–3. शक्तियों का पृथक्करण

इकाई–2. लोकहित वाद; कार्यान्वयन

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 लोकहित वाद का उद्गम

2.4 लोकहित वाद – अधिकारिता का विस्तार

2.5 लोकहित वाद – उद्देश्य एवं क्षेत्रविस्तार

2.6 लोकहितवाद संबंधी कुछ महत्वपूर्ण वाद

2.6.1 असम में बंगलादेशी धुसपैठियों का मामला

2.6.2 अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण

2.6.3 न्यायपालिका की गरिमा और प्रतिष्ठा की रक्षा

2.6.4 सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान का प्रतिषेध

2.6.5 बालक कल्याण

2.6.6 सार्वजनिक हित के मामले

2.6.6.1 विश्वविद्यालय और विद्यालयों में चुनावों के विनियमन का निर्देश

2.6.6.2 पुलिस संगठन में सुधार का आदेश

2.6.6.3 शिक्षण संस्थाओं में रैगिग पर रोक

2.6.6.4 चुनाव सुधार

2.6.7 चिकित्या सहायता पाने का अधिकार

2.6.8 पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण निवारण

2.6.9 देश के रक्त बैंकों में व्याप्त कुरीतियों के निवारणार्थ आदेश

2.6.10 महिलाओं का यौन उत्पीड़न प्रतिकर एवं पुनर्वास के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त

2.7 लोकहित वाद के दुरुपयोग एवं उसे रोकने के सिद्धान्त

2.8 उपचारात्मक याचिका

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 शब्दावली

2.12 संदर्भ ग्रन्थ

2.13 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

लोकहित वाद या जनहित याचिका, भारतीय विधि में, समाज के हित की रक्षा के लिए मुकदमे का प्रावधान है। अन्य सामान्य अदालती याचिकाओं से अलग, इसमे यह आवश्यक नहीं की पीडित पक्ष स्वयं अदालत में जाए, यह किसी भी नागरिक या स्वयं न्यायालय द्वारा स्वतः सज्ञान द्धारा पीडितों के पक्ष में दायर किया जा सकता है। लोकहित वाद के अबतक के मामलों ने बहुत व्यापक क्षेत्रों, कारागार और बन्दी, सशस्त्र सेना, बालश्रम, बंधुआ मजदूरी, शहरी विकास, पर्यावरण और संसाधन, ग्राहक मामले, शिक्षा, राजनीति और चुनाव, लोकनीति और जवाबदेही, मानवाधिकार और स्वयं न्यायपालिका को प्रभावित किया है। न्यायिक सक्रियता और लोकहित वाद का विस्तार बहुत हद तक समांनान्तर रूप से हुआ है और लोकहित वाद या जनहित याचिका का मध्यम–वर्ग ने सामान्यतः स्वागत और समर्थन किया है। लोकहित वाद या जनहित याचिका भारतीय संविधान या किसी कानून में परिभाषित नहीं है, यह उच्चतम न्यायालय के संवैधानिक व्याख्या से उत्पन्न हुई है, इसका कोई अंतर्राष्ट्रीय समतुल्य नहीं है और इसे एक विशिष्ट भारतीय संप्रल्य के रूप में देखा जाता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगें.

•लोकहित वाद की उत्पत्ति

•लोकहित वाद द्वारा अधिकारिता का विस्तार

•लोकहित वाद का उद्देश्य

•लोकहित वाद संबंधी सिद्धान्त

•लोकहितवाद संबंधी महत्वपूर्ण वाद

2.3 लोकहित वाद का उद्गम

लोकहित वाद या जनहित याचिका आजकल भारतीय कानून व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बन गया है, आरम्भ में भारतीय कानून व्यवस्था में इसे यह स्थान प्राप्त नहीं था। इसका विकास

कई राजनैतिक और न्यायिक कारणों से धीरे–धीरे हुआ। 70 के दशक से शुरुआत होकर 80 के दशक में इसकी अवधारणा पक्की हो गयी थी। ए0 क0 गोपालन और मद्रास राज्य (ए0 आइ0 आर0 1952 एस0 सी0 27) वाद में उच्चतम न्यायालय ने संविधान की धारा 21 की शाब्दिक व्याख्या करते हुए यह फैसला दिया कि धारा में व्याख्यित 'विधिसम्मत प्रक्रिया' का मतलब सिर्फ उस प्रक्रिया से है जो किसी विधान में लिखित हो और जिसे विधायिका द्वारा पारित किया गया हो। न्यायालय ने यह भी माना कि धारा 21 की विधिसम्मत प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय या तर्कसंगतता शामिल नहीं है। अमरीकी संविधान के उलट भारतीय संविधान में न्यायालय विधायिका से हर दृष्टिकोण में सर्वोच्च नहीं है और विधायिका अपने क्षेत्र (कानून बनाने) में सर्वोच्च है। इस फैसले की काफी आलोचना भी हुई लेकिन यह निर्णय 25 साल से भी ज्यादा समय तक बना रहा। ये उच्चतम न्यायालय के आरंभिक वर्ष थे जब इसका रुख सावधानीभरा और विधायिका समर्थक था। यह काल हर तरह से, आज के माहौल, जब न्यायिक समीक्षा की अवधारणा स्थापित हो चुकी है और न्यायालय को ऐसी संस्था के रूप में देखा जाता है जो नागरिकों को राहत प्रदान करता है और नीति–निर्माण भी करता है जिसका राज्य को पालन करना पडता है, से भिन्न था। बाद के फैसलों में, न्यायालयों की सर्वोच्चता स्थापित हुई, और इस बीच विधायिका और न्यायपालिका के बीच मतभेद और संघर्ष भी हुआ। गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य (ए0 आइ0 आर0 1967 एस0 सी0 1645) केस मे 11 जजों की खंडपीठ ने 6–5 के बहुमत से माना कि संसद ऐसा संविधान संशोधन पारित नहीं कर सकता जो मौलिक अधिकारों का हनन करता हो। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य ((ए0 आइ0 आर0 1973 एस0 सी0 146) केस में उच्चतम न्यायालय ने गोलक नाथ निर्णय को रद्द करते हुए यह दूरगामी सिद्दांत दिया कि संसद को यह अधिकार नही है कि वह संविधान की मौलिक संरचना को बदलने वाला संशोधन करे और यह भी माना कि न्यायिक समीक्षा मौलिक संरचना का भाग है। आपातकाल के दौरान नागरिक स्वतंत्रता का जो हनन हुआ था, उसमें उच्चतम न्यायालय के ए डी एम जबलपुर और अन्य और शिवकांत शुक्ला (1976) वाद, जिसके फैसले में न्यायालय ने कार्यपालिका को नागरिक स्वतंत्रता और जीने के अधिकार को प्रभावित करने की स्वछंदता दी थी, का भी योगदान माना जाता है। इस फैसले ने अदालत के नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षक होने की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। आपातकाल के पश्चात् न्यायालय के रुख में गुणात्मक बदलाव आया। मेनका गाँधी बनाम भारतीय संघ (1978) केस में न्यायालय ने ए के गोपालन केस के निर्णय को पलटकर जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों को विस्तारित किया।

2.4 लोकहित वाद – अधिकारिता का विस्तार

उपचारों पर ही अधिकारों का अस्तित्व आधारित है। इसके अभाव में अधिकारों का अस्तित्व ही संभव नहीं। भारतीय संविधान में जहाँ अधिकारों का विस्तृत उललेख किया गया है, वहीं इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपचारों का भी समावेश किया गया है ।

अनु० 32 के अधीन अनुतोष पाने का अधिकार उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है। किन्तु अब उच्चतम न्यायालय ने इस नियम में परिवर्तन कर दिया है और अनु० 32 का` क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत कर दिया है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनु० 32 के अधीन कोई संस्था या लोकहित से प्रेरित कोई नागरिक किसी ऐसे व्यक्ति के संवैधानिक या विधिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट फाइल कर सकता है जो निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण सेे न्यायालय में रिट फाइल करने में सक्षम नहीं है। अखिल भारतीय रेलवे शोषित कर्मचारी संघ बनाम भारत संघ[1] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि एक अपंजीकृत संघ भी अनु० 32 के अधीन रिट के लिए आवेदन दे सकता है, यदि वह किसी सार्वजनिक हित के संरक्षण के लिए ऐसा करना चाहता है। मुख्य न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अययर ने कहा कि वाद–कारण और पीड़ित व्यक्ति की संकुचित धारणा का स्थान अब वर्ग कार्यवाही एवं लोकहित वाद ने ले लिया है।

न्यायाधीश स्थानान्तरण के वाद[2] में उच्चतम न्यायालय की 7 न्यायाधीशों की पीठ ने इस विषय से संबंधित विधि को पूरी तरह से सुनिश्चित कर दिया। न्यायमूर्ति श्री पी० एन० भगवती ने न्यायालय का निर्णय सुनाते हुए लोकहित वाद के सिद्धान्त का निमलिखित शब्दों में वर्णन किया है–

'यदि कोई व्यक्ति या समाज का वर्ग, जिसको विधिक क्षति पहुँचायी गयी है या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है, अपनी निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण से अपने संवैधानिक या विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय में जाने में असमर्थ है तो समाज का कोई अन्य व्यक्ति या संघ न्यायालय में उसको पहुँची विधिक क्षति के निवारण के लिए अनु० 32 के अधीन आवेदन दे सकता है । उक्त परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति 'पत्र लिखकर' भी उच्चतम न्यायालय से उपचार माँग सकता है और उसे रिट–पिटिशन की तकनीकी बारीकियों का पालन करना आवश्यक नहीं होगा । न्यायाधिपति श्री भगवती ने घोषणा की कि प्रक्रियात्मक तकनीकियाँ न्यायालय को ऐसे पीड़ित व्यक्तियों को न्याय प्रदान करने के मार्ग में अवरोध नहीं बन सकती हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई भी व्यक्ति न्यायालय की इस उदारता का अनुचित लाभ उठाये । प्रत्येक मामले में न्यायालय उपचार तभी देगा जब उसे समाधान हो जायेगा कि उसके समक्ष आने वाले व्यक्ति का पर्याप्त हित है और वह दुर्भावना से अथवा राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित होकर रिट–अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर रहा है।

समय–समय पर लोकहितवाद पर न्यायालय की शक्ति पर विरोध के स्वर उठते रहते हैं कि लोकहित वाद के माध्यम सेे न्यायपालिका कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है। इसके

उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि कार्यपालिका विधान मण्डल द्वारा बनायी गई विधियों को लागू नं कर उनकी उपेक्षा करती है तो यह न्यायपालिका का संवैधानिक दायित्व है कि वह नागरिकों कै मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए आगे आए। किंतु कभी–कभी न्यायपालिका के निर्णय इसके विरुद्ध होते हैं तब इस पर भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और सरकार भी इसमें मुखर हो जाती हे । अभी हाल में उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों न्यायाधीश एच० एस० सेमा और मार्कडेय काटजू ने कामन काज (रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम भारत संघ[3] के मामले में यह निर्णय दिया है कि अनु0 21 ब्रम्हास्त्र नहीं है जो प्रत्येक कठिनाइयों से लोगों को छुटकारा दिला दे। किंतु न्यायाधीश श्री एच० के० सेमा ने इस निर्णय से अपना विसंगत मत दिया है । उक्त मामले में दुर्घटनाओं को रोकने के लिए सरकार को ट्रेफिक नियमों को लागू करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी करने के लिए निवेदन किया गया था। किंतु इसके तुरंत बाद् एक अन्य मामले में न्यायाधीश श्री के० जी० बालाकृष्णन ने तीन न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उच्चतम न्यायालय. का उपर्युक्त निर्णय न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। यह उचित है क्योंकि लोकहितवाद गरीबों तथा असहाय नागरिकों की सहायता करने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।[4]

2.5 लोकहित वाद – उद्देश्य एवं क्षेत्र विस्तार

लोकहित वाद का प्रयोग प्रमुख रूप से निर्बल एवं निर्धन व्यक्तियों के अनु० 21 के अधीन प्रदान किये गए मूल अधिकारों कै संरक्षण के लिए किया जाता रहा है।

पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ[5] के अपने ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने लोकहित–वाद के क्षेत्र एवं महत्व को स्पष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि लोकहित वाद महत्व समाज के निर्धन और कमजोर वर्ग के लागों के संवैधानिक और विधिक अधिकारों की संरक्षा मैं है। लोकतव में लोकहित–वाद विधि–शासन का एक आवश्यक तत्व है । विधि–शासन केवल धनी और सुविधा संपन्न वर्ग के अधिकारों को नहीं बल्कि निर्बलतम वर्ग के लोगों के अधिकारों की संरक्षा कर उन्हें न्याय प्रदान करता है । न्यायाधिपति श्री भगवती ने इस तर्क को कि इस प्रकार के मामले से न्यायालय में वादों कीं संख्या में वृद्धि होगी इसलिए उन्हें बढावा नहीं देना चाहिए, को अस्वीकार कर दिया। मुख्य न्यायमूर्ति श्री भगवती ने कहा कि–

'किसी राज्य को अपने नागरिकों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि श्चूंकि हमारे न्यायालय में धनी व्यक्तियों के अनेक मामले लम्बित हैं; अतः हम निर्धनों को न्यायालय में न्याय पाने के लिए तब तक नहीं आने देंगे जब तक कि उनके मुकदमों का, जो धनी वकीलोँ की सहायता प्राप्त कर सकते हैं, निपटारा न कर दिया जाय।श न्यायालय में वादों में वृद्धि इस बात का कोई

उत्तर नहीं कि समाज के निर्बल और कमजोर वर्गों के लोगों के लिए न्याय पाने का रास्ता ही बन्द कर दिया जाए।'

प्रस्तुत वाद में पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स नामक संस्था ने एक पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय को सूचित किया कि एशियाड खेल योजना में काम करने वाले श्रमिकों के मूल अधिकारों और विधिक अधिकारों का एवं विभिन्न श्रमिक–विधियों का उल्लंघन किया गया है और श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नहीं दी गयी है । न्यायालय ने इस पत्र को अनु० 32 के अधीन एक् रिट के रूप में सुनवायी के लिए स्वीकार किया और यह निर्णय दिया कि देश के प्रत्येक क्षेत्र के श्रमिक वर्ग सीधे या किसी संगठन के माध्यम से अपने सांविधानिक एवं विधिक अधिकारों की संरक्षा के लिए उच्चतम न्यायालय में आवदेन दे सकते हैं । उन्हें न्यायालय के प्रक्रियात्मक नियमों का भी पालन करना आवश्यक नहीं है। वे न्यायालय को अपने अधिकारों के उल्लंघन के बारे में पत्र द्वारा सूचित कर सकते हैं और न्यायालय का यह कर्त्व्य है कि वह श्रमिकों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहारों को रोकने के लिये संबंधित प्राधिकारियों (भारत सरकार, दिल्ली प्रशासन और ठेकेदारो) को समुचित निर्देश दें ताकि विभिन्न श्रमिक विधियों को लागू कर श्रमिकों का शोषण रोका जा सके ।

उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय उस पुरानी संकीर्ण विचारधारा को छोड़ देता है जिसके अनुसार केवल वही व्यक्ति न्यायालय में आवेदन दे सकता था जिसके स्वयं के मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हो। अब जनहित के मामले में समाज का कोई भी व्यक्ति या संस्था न्यायालय में आवेदन दे सकता है। इस निर्णय द्वारा न्यायालय ने न्याय को जनता के दरवाजे तक पहुँचा दिया है जिसका आव्हान हमारे संविधान के अनु० 39 (क) में किया गया है। यह लोकताविक परंपरा को ठोस और सुदृढ़ु बनाने की दिशा में शुभ कदम है । न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती बधाई के पात्र हैं जिन्होंने यह ऐतिहासिक निर्णय दिया है।[6]

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ[7] के मामले में एक सामाजिक संस्था ने पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय को सूचित किया कि हरियाणा राज्य के फरीदकोट जिले की पत्थर की खानों में काफी संख्या में श्रमिक जिनमैं अनेक बंधुआ श्रमिक भी हैं अमानवीय दशा में कार्यरत हैं। न्यायालय ने पत्र को रिट मानकर दो अधिवक्ताओं का एक आयोग नियुक्त किया जिसने जाँच करके न्यायालय को रिपोर्ट दी कि संस्था का आरोप सत्य है। न्यायाधिपति श्री भगवती ने अपनी तथा श्री पाठक और अमरेन्द्रनाथ की ओर से बहुमत का निर्णय सुनाते हुए अभिनिर्धारित किया कि लोकहित वाद के ऐसे मामले में सरकार को आपत्ति करने के बजाय स्वागत करना चाहिये जिससे सरकार समुचित कदम उठाकर बंधुआ मजदूरों को मुक्त कर उनकी स्थिति में सुधार कर सके । न्यायालय ने सरकार की श्रम–विधियों और बंधुआ श्रमिक विधि को कार्यान्वित करनै के लिए और उसकी स्थिति सुधारने के लिए निदेश भी दियैं।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति में मूल अधिकारों के उत्वंघन की जाँच करने के लिए आयोग नियुक्त करने की शक्ति भी शामिल है । न्यायमूर्ति श्री पाठक और अमरेन्दनाथ यद्यपि इस बात से श्री भगवती से सहमत हैं कि पत्र द्वारा लोकहित वाद चलाया जा सकता है किंतु उनका विचार है कि ऐसे आवेदन स्वीकार करते समय न्यायालय को काफी सतर्कता बरतनी चाहिये ताकि उसका दुरुपयोग न किया जा सके । न्यायमूर्तियों ने सुझाव दिया कि ऐसे पत्र न्यायालय को संबोधित होने चाहिये किसी विशेष न्यायाधिपति को नहीं और दूसरे इसे पिटिशनर द्वारा दी गयी सामग्री पर विचार करके स्वीकार किया जाना चाहिये।[8]

एम० सी० मेहता बनाम भारत संघ[9] के अपने दूसरे ऐतिहासिक निर्णय में मुख्य न्यायमूर्ति श्री भगवती ने लोकहित वाद के विषय में उठायी गयी शंकाओं को दूर कर दिया। यह निर्णय विशेष रूप से बंधुआ मुक्ति मोर्चा के मामले में न्यायाधीश श्री पाठक और अमरेन्द्रनाथ द्वारा इसके दुरुपयोग के बारे में उठाई आशंका को ध्यान में रखकर दिया गया है। मुख्य न्यायमूर्ति श्री भगवती ने लोकहित वाद के प्रयोग के लिए निम्नलिखित नियमों को प्रतिपादित किया है[10]–

(1) कोई भी निर्धन व्यक्ति किसी भी न्यायाधीश को पत्र लिख सकता है । ऐसा व्यक्ति केवल उस न्यायाधिपति का ही नाम जान सकता है जो उसके प्रान्त से आया हो। पत्र के साथ शपथ–पत्र होना भी आवश्यक नहीं है। न्यायाधिपति श्री पाठक ने कहा था कि उसे न्यायालय के नाम पत्र लिखना चाहिये, किसी न्यायाधीश के नाम नहीं ।

(2) अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालय को उचित मामलों में जहाँ निर्धन व्यक्ति के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है, प्रतिकर प्रदान करने की भी शक्ति है । अनुच्छेद 32 सिविल न्यायालय द्वारा प्रतिकर प्राप्त करने का स्थानापन्न नहीं हो सकता है। इसका प्रयोग केवल उन मामलों में किया जाएगा जहाँ किसी निर्धन व्यक्ति के मूल अधिकार का भयंकर एवं स्पष्ट उल्लंघन किया जाता है और वे अपनी निर्धनता के कारण सिविल न्यायालय से उपचार पाने में असमर्थ हैं। इसी आधार पर न्यायालय ने रूदल शाह और भीम सिंह के मामलों में पिटिशनरों को नुकसानी प्रदान किया है ।

(3) अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालय निर्धन और सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उपेक्षित लोगों के मूल अधिकारों के अतिक्रमण को पता लगाने के लिये आयोग नियुक्त कर सकता है; जैसा कि बंधुआ मुक्ति मोर्चा में किया था या कोई अन्य निदेश, आदेश या रिट जारी कर सकता है, जो उनके मूल अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिये न्यायालय की शक्ति असीमित है । यही उसका सांविधानिक कर्त्तव्य है।

लोकहित वाद की इस अवधारणा को स्वीकार करने के फलस्वरूप उच्चतम न्यायालय ने अनु० 32 अधीन अपनी अधिकारिता संबंधी क्षेत्र को अत्यन्त विस्तार रूप प्रदान कर दिया है। अब न्यायालय अनु ० 32 के अन्तर्गत उन भी मामलों में हस्तक्षेप कर सकेगा जब कहीं भी राज्य या

उसके सेवकों द्वारा किसी निर्धन असहाय व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों का हनन होगा। फलस्वरूप सरकारी अधिकारीगण अब और सचेत होकर अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करेंगे और नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों के साथ खिलवाड़ करने से डरेंगे[11]।

2.6 लोकहितवाद संबंधी कुछ महत्वपूर्ण वाद

2.6.1 असम में बंगलादेशी धुसपैठियों का मामला

सरवानन्द सोमवाल बनाम भारत संघ[12] के मामले प्रार्थी ने लोकहित वाद दायर करके असम में बगलादेशी घुसपैठियों के निर्धारण एवं निष्कासन के लिए पारित अवैध प्रवासी (अभिकरण द्वारा निर्धारण) अधिनियम, 1983 की विधिमान्यता को चुनौती दी। सरकार की ओर से यह तर्क प्रस्तुतत किया गया कि उक्त मामला राजनीतिक लाभ के लिंए लाया गया था अतः वाद लाने योग्य नहीं है। उच्चतम न्यायालय नै यह अभिनिधार्रित किया कि अनु० 355 के अंतर्गत केन्द्र सरकार का यह कर्त्व्य है कि वह देश की सीमाओं की सुंरक्षा करे तथा प्रत्येक राज्य को 'आक्रमण' से बचाए । अनु० 51क (घ) यह कहता है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्व्य होगा कि वह देश को सुरक्षा करे और आव्हान करने पर राष्ट्र की सेवा करे। यदि विधानमण्डल द्वारा बनाया गया अधिनियम जो असंवैधानिक है देश में अवैध रूप से आने वाले बांग्लादेशी घुसपैठियों को शरण और संरक्षण देता है जिसका गम्भीर परिणाम होता है तो अनु० 32 के अधीन देश के प्रत्येक नागरिक का यह अधिकार हौगा कि वह लोकहित वाद के माध्यम से इसकी सूचना न्यायालय को दे।

2.6.2 अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[13] के मामले में एक आजीवन कारावास का दण्ड भुगत रहे कैदी के साथ जेल–रक्षक द्वारा कूर एवं अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध एक दूसरे कैदी ने पत्र द्वारा न्यायालय को इस अमानवीय घटना की सूचना भेजी। न्यायालय ने इस पत्र को बन्दी–प्रत्य क्षीकरण रिट. मानकर जेल प्राधिकारियों के विरुद्ध निर्देश जारी किया कि उक्त कैदी के साथ अमानवीय व्यवहार न किये जायँ और अपराधी व्यक्ति को दण्ड देने की उचित कार्यवाही की जाये। बन्दी–प्रत्यक्षीकरण रिट का प्रयोग केवल अवैध कारावास से मुक्ति के लिए ही नहीं वरन जेल में कैदियों के विरुद्ध किये गये सभी प्रकार के .अमानवीय व्यवहारों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है।

2.6.3 न्यायपालिका की गरिमा और प्रतिष्ठा की रक्षा

दिल्ली न्यायिक सेवा संघ बनाम गुजरात राज्य[14] वाद में अधिवक्ता संघ दिल्ली और न्यायाधीश संघ ने अनु० 32 के अधीन लोकहित वाद संस्थित करके न्यायपालिका की प्रतिष्ठा और गरिमा बनाए रखने के लिए समुचित कार्यवाही की प्रार्थना की। गुजरात के तहसील नादियाड़ में पुलिस अधिकारियों ने झूठे आरोप लगाकर वहाँ के मुख्य न्यायिक जज श्री पटेल को गिरफ्तार कर हथकड़ी लगाकर सडक पर घुमाया । उच्चतम न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों को न्यायालय के आपराधिक अवमान के लिए दोषी पाते हुए उन्हें कारावास का दण्ड दिया।

2.6.4 सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान का प्रतिषेध

मुरली एस० देवरा बनाम भारत संघ[15] के मामले में महाराष्ट्र राज्य के कांग्रेसी नेता श्री मुरली देवरा ने जनहित वाद के माध्यम से उच्चतम न्यायालय के समक्ष इस समस्या को उठाया कि धूम्रपान से सर्वसाधारण के स्वास्थ पर बहुत गम्भीर प्र भाव पड़ रहा है अत न्यायालय उसे रोकने के संदर्भ में कदम उठाए। न्यायालय ने सभी राज्यों और संघ क्षेत्रों को यह निदेश दिया कि वे सार्वजनिक स्थानों, सार्वजनिक यातायात के सभी साधनों स्वास्थ्य संस्थाओं, शैक्षिक संस्थाओं, पुस्तकालयों, न्यायालय भवनों, सरकारी कार्यालयों आदि में धूम्रपान पर रोक लगाए। धूम्रपान से धूम्रपान करने वाले को तो हानि होती ही है उन लोगों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जो धूम्रपान नहीं करते हैं।

2.6.5 बालक कल्याण

लक्ष्मीकान्त पाण्डेय बनाम भारत संघ[16] के मामले में एक अधिवक्ता ने पत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय को सूचित किया कि कुछ सामाजिक और स्वैच्छिक संस्थाएँ भारतीय बालकों को विदेशियों के गोद लिए जाने के लिए उन्हें विदेश भेजने का काम कर रही हैं और इस प्रकार उनका शोषण कर रही हैं । यह आरोप लगाया गया कि गोद लेने के बहाने किशोरावस्था के बालक या तो भीषण विदेश यात्रा के दौरान देखभाल के अभाव में मृत्यु के मुख में चले जाते हैं और यदि किसी प्रकार जीवित बच भी जाते हैं तो बिना उचित देख– भाल के उन्हें भिक्षुक या वेश्या बनकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। न्यायाधिपति श्री भगवती ने बहुमत का निर्णय देते हुये उन सिद्धान्तों को विहित किया जिसके अनुसार विदेशियों द्वारा भारतीय बच्चों को गोद लिया जा सकता है और सरकार तथा अन्य संस्थाओं को निर्देश दिया कि वे न्यायालय द्वारा विहित नियमों का पालन कराए। संविधान के अनुच्छेद 15(3) और 39 (स) और (फ) के

अधीन बालकों के कल्याण के लिये कार्य करना उनका सांविधानिक कर्त्व्य है। इससे संबंधित अन्य वाद हैं–
शीला बारसे बनाम भारत संघ[17], एम० सी० मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य[18] ,गौरव जैन बनाम भारत संघ[19] आदि।

2.6.6 सार्वजनिक हित के मामले

जीवनमल कोचर बनाम भारत सघ[20] के वाद में प्राथी ने लोकहित वाद संस्थित करके न्यायालय से प्रार्थना की कि वह रेल सेवा में समुचित सुधार करने के लिए सरकार को निदेश दे । इस संबंध में उसे पर्याप्त धन व्यय करना पड़ा था । न्यायालय ने निदेश. दिया कि वह उक्त धन को रेलवे मंत्रालय से पाने का हकदार है ।

2.6.6.1 विश्वविद्यालय और विद्यालयों में चुनावों के विनियमन का निर्देश

23 सितम्बर, 2006 को उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में देश के विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में होने वाले छात्र संघ चुनावों को स्वच्छ रूप से कराने के लिये अनेक प्रभावकारी निर्देश दिये हैं । विश्वविद्यालयों में छात्र संघ चुनावों के दौरान होने वाली अराजकता और धन के दुरुपयोग को रोकने के लिये केरल विश्वविद्यालय ने न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल की थी । इस पर सुझाव देने के लिये न्यायालय ने पूर्व चुनाव आयुक्त श्री लिगदोह की अध्यक्षता में एक समिति गठित किया । न्यायालय ने लिगदोह समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और छात्र संघ के चुनावों के विषय में निर्देश जारी किए।

2.6.6.2 पुलिस संगठन में सुधार का आदेश

22 सितम्बर, 2006 को उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में देश के पुलिस सगठन में व्यापक सुधार का आदेश दिया है । इसके परिणामस्वरूप देश का पुलिस सगठन राजनीतिक प्रभाव से मुक्त होकर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से कार्य करने में सक्षम होगा और देश की कानून व्यवस्था में पर्याप्त सुधार हो सकेगा। पूर्व सीमा सुरक्षा बल के पूर्व पुलिस महानिरीक्षक प्रकाश सिंह ने उच्चतम न्यायालय में लोकहित वाद दायर करके निवेदन किया कि वह राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशों को लागू करे जिससे पुलिस देश के कानून के और लोगों के प्रति जवाबदेह हो सके।

2.6.6.3 शिक्षण संस्थाओं में रैगिग पर रोक

उच्चतम न्यायालय ने 21 मई, 2007 को अपने एक मूहत्वपूर्ण निर्णय केरल विश्वविद्यालय बनाम काउन्सिल, प्रिन्सिपिल आफ कालेजेज, केरल एवं अन्य[21] में देश की सभी शिक्षण संस्थाओं में रैगिग पर रोक लगा दी है और सरकार को इस मामले में आवश्यक विधि बनाने का निर्देश दिया है। न्यायालय का निर्णय आर० के० राघवन की, जो सी० बी०आई० के निदेशक थे, की रिपोर्ट पर दिया गया था। इस समिति की नियुक्ति केन्दीय सरकार ने न्यायालय के निर्देश पर. किया था।

2.6.6.4 चुनाव सुधार

भारत संघ बनाम एसोसिएशन फार डेमोक्रेटिक रिफार्मस में भारत संघ बनाम एसोसिएशन फार डेमोक्रेटिक रिफार्मस[22] में उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में किए गए संशोधनों को असवैधानिक घोषित कर दिया और अपने 2 जून, 2002 के पूर्व निर्देशों को यथावत रखा जिसमें प्रत्याशियों के लिए नामांकन पत्र भरते समय अपना आपराधिक रिकार्ड, अपनी सव्यत्ति, देनदारी और शैक्षणिक योग्यता की जानकारी देने को अनिवार्य .करने की बात कही गई थी। उच्चतम न्यायालय की तीन सदस्यीय खण्ड पीठ के निर्णय के अनुसार मतदाता का सूचना का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अन्तर्गत एक मूल अधिकार है और उक्त संशोधन उसका अतिक्रमण करता है अतः असंवैधानिक है।

2.6.7 चिकित्सा सहायता पाने का अधिकार

परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ[23] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 के अधीन दोनों सरकारी और निजी डाक्टरों का यह कर्तव्य है कि घायल व्यक्ति को तुरन्त चिकित्या सहायता प्रदान कर और उसके पश्चात् दण्ड विधि के अधीन कानूनी प्रक्रिया का पालन करें। कोई भी कानून किसी घायल व्यक्ति को चिकित्सा सहायता के अभाव में मरने की अनुमति नहीं दे सकता है । मानव जीवन की रक्षा करना सभी डाक्टरों का कर्तव्य है । प्रस्तुत मामले में प्राथी ने हिन्दुस्तान टाइम्स समाचार–पत्र में प्रकाशित एक रिपोर्ट को उद्धत करते हुए जिसका शीर्षक था– 'कानून घायल व्यक्ति की मृत्यु में सहायक है' न्यायालय में याचिका फाइल की। रिपोर्ट के अनुसार एक स्कूटर चालक सड़क दुर्घटना में घायल हो गया था। एक यात्री उसे एक पास के अस्पताल में ले गया किन्तु

डाक्टर ने उपचार करने से इन्कार कर दिया और उसे मेडिको–लीगल केस के लिए निर्धारित अस्पताल में ले जाने को कहा जो वहाँ से करीब 20किलोमीटर दूर स्थित था । वहाँ ले जाते समय घायल व्यक्ति की मृत्यु हो गई।

2.6.8 पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण निवारण

2.6.8.1 रूरल लिटिगेशन ऐण्ड एन्टाइटिलमेंन्ट केन्द्र,

देहरादून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[24] के मामले में न्यायालय द्वारा नियुक्त एक समिति ने रिपोर्ट दी कि कुछ पत्थर की खानों की खुदाई के कारण आसपास का पर्यावरण दूषित हो रहा था और लोगों को हानि हो रही थी। फलतः न्यायालय ने इन पत्थर की खानों की खुदाई का काम रोकने. का आदेश दिया।

एम० सी० मेहता बनाम भारत संघ[25] के मामले में न्यायालय ने कानपुर के निकट जाजमऊ में स्थित चर्मशोधन शालाओं को तत्काल बन्द करने का आदेश दिया क्योंकि इनसे निकलने वाले मलवे से गंगा का पानी प्रदूषित हो रहा था । याची जो एक समाजसेवी है ने उक्त याचिका न्यायालय में लोकहित वाद के रूप में फाइल की थी।

एम० सी० मेहता (2) बनाम भारत संघ[26] के मामले में प्रार्थी ने गंगा–जल प्रदूषण के विरुद्ध लोकहित वाद संस्थित किया और न्यायालय से सम्बंधित प्राधिकारियों को उचित आदेश देने की सिफारिश की। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि गंगा–जल प्रदूषण एक सार्वजनिक उपताप हैं जिसके विरुद्ध लोकहित वाद संस्थित किया जा सकता है । पिटिशनर को जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंखण) अधिनियम, 1974 के उपबंधों द्वारा नगर निगम एवं प्रदूषण बोर्ड पर अधिरोपित विधिक कर्तव्यों के पालन हेतु न्यायालय में लोकहित वाद संस्थित करने का अधिकार है।

2.6.8.2 सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य[27]

के मामले में यह निर्धारित किया गया है कि प्रदूषण रहित जल और वायु के उपभोग का अधिकार अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत एक मूल अधिकार है। उसे सुरक्षित रखने के लिए लोकहितवाद संस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य मामले[28] में न्यायालय ने

दिल्ली प्रशासन को केन्दीय मोटर यान अधिनियमय, 1989 को कड़ाई से लागू करने का निर्देश दिया ।

2.6.8.3 ध्वनि प्रदूषण परं रोक

इन री ध्वनि प्रदूषण[29] के अपने महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने सरकार को देश भर में व्याप्त ध्यनि प्रदूषण को रोकने के लिये उससे संबंधित कानूनों को सख्ती से लागू करने का निर्देश। इस मामले में निवेदक, अनिल कुमार मित्तल, जो पेशे स इन्जीनियर थे, लोकहित वाद फाइल करके अनेक घटनाओं का हवाला देते हुये यह दिखाया कि किस प्रकार धार्मिक समारोहों, राजनीतिक दलों द्वारा बजाये गये लाउडस्पीकरों तथा विवाह के अवसरों पर आधुनिक ध्वनि विस्तारक यन्त्रों के बजाने के कारण समाज के सभी वर्गों, छात्रों, नवजात, शिशुओं, बुजुर्गों तथा मरीजों को भीषण कष्ट पहुंचता है और उनका जीवन कष्टमय हो जाता है । न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ (मुख्य न्यायमूर्ति लाहोटी और श्री अशोक मान) ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को मानव गरिमा से जीने का मूल अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक .व्यक्ति को अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत ध्वनि प्रदूषण रहित वातावरण में जीवन बिताने का अधिकार है जिसको अनुच्छेद 19 (1) (ए) में प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करके विफल नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 19 (1) (ए) में प्रदत्त अधिकार .आत्यन्तिक नही है उस पर अनुच्छेद 19 (2) के अन्तर्गत युक्तियुक्त निर्बंधन लगाए जा सकते हैं।

2.6.9 देश के रक्त बैंकों में व्याप्त कुरीतियों के निवारणार्थ आदेश

कामन काज बनाम भारत संघ[30] के मामले में न्यायालय ने देश के रक्त बैंकों के संचालन में व्याप्त अनेक कुरीतियों को दूर करने के लिए केन्दीय सरकार, राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र की सरकारों को समुचित आदेश पारित किया है। इस मामले में सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री अरुण शौरी ने अनु० 32 के अधीन एक लोकहित वाद फाइल करके देश के रक्त बैंकों में रक्त के एकत्र करने, रखने और उसकी आपूर्ति में व्याप्त अनेक त्रुटियों की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया था।

2.6.10 महिलाओं का यौन उत्पीड़न प्रतिकर एवं पुनर्वास के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त

उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली डेमोक्रेटिक वर्किंग बुमेन्स फोरम बनाम भारत संघ[31] के मामले में महिलाओं के साथ बढ़ते हुए यौन अपराधों के प्रति गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हुए ऐसे मामलों में उन्हें शीघ्र परीक्षण तथां प्रतिकर प्रदान करने एवं उनके पुनर्वास के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त विहित किया।

2.6.11 श्रमजीवी महिलाओं को काम के स्थान पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य[32] के मामले में महिलाओं के अनु० 14, 19 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए विशाखा नामक एक गैर सरकारी संस्था में लोक हित वाद याचिका न्यायालय में फाइल किया और उच्चतम न्यायालय से समुचित निर्देश देने का निवेदन किया । याचिका दायर करने का तत्काल कारण राजस्थान राज्य में एक सामाजिक महिला कार्यकर्ता के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना थी । न्यायालय ने कहा कि जब तक विधान मंडल समुचित विधि नहीं बनाता तब तक न्यायालय द्वारा विहित निर्देश ही लागू रहेंगें।

2.7 लोकहित वाद के दुरुपयोग एवं उसे रोकने के सिद्धान्त

न्यायाधीश स्थानान्तरण के मामले में न्यायमूर्ति श्री भगवती ने लोकहितवाद के दुरुपयोग को रोकने के लिए भी पर्याप्त मार्गदर्शक सिद्धान्तों की घोषणा की। उन्होंने कहा कि–
'हमें इस मामले में सचेत होकर यह देखना चाहिए कि जो लोग इस प्रकार के मामले में न्यायालय में आते हैं क्या वे सद्भावनापूर्वक कार्य कर रहे हैं या अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए या निजी लाभ या राजनीति से प्रेरित हैं या किसी अन्य कुटिल विचार से प्रेरित हैं। न्यायालय को अपनी प्रक्रिया को राजनीतिज्ञों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग की अनुमति नहीं देना चाहिए।'
जनता दल बनाम एच० एस० चौधरी[33] का मामला लोकहित वाद के दुरुपयोग का एक अच्छा उदाहरण है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रार्थी को वाद चलाने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि इसमें पिटिशन में आपराधिक मामले के लोकहित वाद के कोई तत्व विद्यमान नहीं थे। प्रार्थी को अभियुक्तों के व्यक्तिगत हित की अधिक चिन्ता थी इसमें लोकहित की कोई बात दिखाई नहीं देती थी। अत प्रार्थी को लोकहित वाद्र चलाने का विधिक हक नहीं था ।
इसी प्रकार के निर्णय न्यायालय ने सिमरन सिंह मान बनाम भारत संघ[34] एवं कृष्णा स्वामी बनाम भारत संघ[35] के मामलों में दिया।

वाल्को कर्मचारी संघ (पंजीकृत) बनाम भारत संघ[36] का मामला लोकहित वाद के दुरुपयोग का ज्वलन्त उदाहरण है। इस मामले में वाल्को के कर्मचारियों ने केन्दीय सरकार के भारत एलूमीनियम कम्पनी लि० (वाल्को) के अंशों के विनिवेश करने और उसे निजी व्यक्तियों को बेचने की नीति. की विधिमान्यता को न्यायालय में चुनौती दी। श्री वी० एल० वाडैरा नामक व्यक्ति ने सरकार के इस. निर्णय के विरुद्ध अनु० 226 के अधीन दिल्ली उच्च न्यायालय में एक लोकहित याचिका फाइल किया । वाडेरा न तो कम्पनी के कर्मचारी थे न ही वे बोली लगाने वालों में से थे । उनका अभिकथन था कि वे सार्वजनिक. उपक्रमों से अभिन्न रूप से जुड़े थे अतः उन्हें लोकहित याचिका फाइल करने का अधिकार था । उच्चतम न्यायालय ने उनके तर्क को अस्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उन्हें सरकार के निर्णय को लोकहित याचिका के माध्यम से चुनौती देने का अधिकार नहीं है । न्यायालय ने कहा कि लोकहित वाद का प्रयोग मुख्य रूप से अनु० 21 में प्रदत्त मूल अधिकारों या मानवाधिकारों के उत्ल्लंघन के मामलों में .किया जाता है या जहाँ निर्धन और ऐसे सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रयोग किया जाता है जो न्यायालय में अपनी असमर्थता या निर्योग्यता के कारण जानै में असमर्थ हैं। ऐसे मामलों में भी न्यायालय उनके विंधिक अधिकारों का ही संरक्षण करता हैं। लोकहित वाद सरकार द्वारा अपने प्रशासनिक शक्ति के प्रयाग में लिए गए वित्तीय या आर्थिक–नीतियों को चुनौती देने के लिए नहीं किया जा सकता है । नि सन्देह रूप से यदि कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से ऐसे निर्णय से पीड़ित है जो उसे अवैध मानता है उसे न्यायालय में चुनौती दे सकता है, किंतु एक बाहरी व्यक्ति द्वारा लोकहित वाद को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । ऐसा वाद स्पष्टतः एक निर्धन या पददलित की ओर से किया गया वाद नहीं है, जब तक कि न्यायालय को यह समाधान हो जाता है कि अनु० 21 का उल्लंघन हुआ है और ऐसे व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जो न्यायालय में आने में असमर्थ हैं । वाल्को के अंशों का विनिवेश का निर्णय राज्य की आर्थिक नीति से संबंधित विशुद्ध प्रशासनिक मामला है और इसको ऐसै व्यक्ति द्वारा चुनौती देना जो कम्पनी का न तौ कर्मचारी है या भावी बोली लगाने वाला हैं वह लोकहित वाद करने वाले व्यक्तियों में नहीं आता है । पिटीशनर केवल इस आधार पर कि वह सार्वजनिक उपक्रमों से घनिष्ट रूप से संबंधित है लोकहित वाद संस्थित करने का हकदार नहीं है। न्यायालय ने कहा कि लोकहित वाद का प्रयोग सभी अनुचित कार्यो को ठीक करने के लिए नहीं किया जा सकता है। आजकल लोकहित वाद के दुरुपयोग के अनेक मामले आ रहे हैं। इसी कारण न्यायालय ने इसके उद्देश्य और इसके प्रयोग की परिसीमा को पुनः स्पष्ट करना उचित समझा है।[37]

वी० सिंह बनाम भारत संघ[38] के मामले में न सिर्फ न्यायालय ने याचिकाकर्ता की याचिका को खारिज किया वरन् उस पर 10,000 का उदाहरणात्मक खर्चों का दण्ड अधिरोंपित किया जिससे कोई अन्य व्यक्ति इसका दुरुपयोग न कर सके।

2.8 उपचारात्मक याचिका (उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने अन्तिम आदेश का पुनर्विलोकन)

अपने ऐतिहासिक एवं दूरगामी महत्व के निर्णय रूपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा[39] के मामले में उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों (मुख न्यायामूर्ति एस० पी० भरुचा, श्री ए० एस० कादरी, एस० एम० मरीयावा, श्री शिवराज वी० पाटिल और श्री यु० सी० बनर्जी) की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय अनु० 32 के अधीन अपने अन्तिम निर्णय को जिसकी रिट याचिका द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है, गम्भीर अन्याय के निवारण हेतु पुनर्विलोकन कर सकता है । इस नए फार्मूले को न्यायालय ने उपचारात्मक याचिका का नाम दिया है। मुख्य न्यायमूर्ति श्री भरुचा ने यह अवलोकन किया कि–

'हमारा मत है कि यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशगण मानव सुलभ कमजोरियों की परिसीमा के अधीन रहते हुए उत्तम कार्य करते हैं। किन्तु, ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जिसमें विरल से विरलतम मामलों में अन्तिम निर्णय में गम्भीर अन्याय को ठीक करने की हमसे अपेक्षा की जा सकती है।'

निर्देश

1. ए0 आई0 आर0 1981 एस0 सी0 298
2. एस0 पी0 गुप्ता और अन्य बनाम राष्ट्रपति और अन्य, ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0 149
3. ए0 आई0 आर0 2008 एस0 सी0 2920
4. डा0 जयनारायण पाण्डे, भारत का संविधान, 44 वॉ संस्करण, पृष्ठ 353, 354
5. ए0 आई0 आर0 1980 एस0 सी0 1579
6. डा0 जयनारायण पाण्डे, भारत का संविधान, 44 वॉ संस्करण, पृष्ठ 352
7. ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0 803
8. डा0 जयनारायण पाण्डे, भारत का संविधान, 44 वॉ संस्करण, पृष्ठ 352
9. ए0 आई0 आर0 1987 एस0 सी0 1087
10. डा0 जयनारायण पाण्डे, भारत का संविधान, 44 वॉ संस्करण, पृष्ठ 352,353
11. प्झपक
12. ए0 आई0 आर0 2005 एस0 सी0 2920
13. ए0 आई0 आर0 1982 एस0 सी0
14. (1991) 4 एस0 सी0 सी0 406
15. ए0 आई0 आर0 2002 एस0 सी0 40
16. (1985) 2002 एस0 सी0 2920

17. (1986) 3 एस0 सी0 सी0 596
18. ए0 आई0 आर0 1991 एस0 सी0 417
19. ए0 आई0 आर0 1990 एस0 सी0 292
20. (1984) 1 एस0 सी0 सी0 200
21. 2007 (7) स्केल 390
22. ए0 आई0 आर0 2002 एस0 सी0 2113
23. ए0 आई0 आर0 1989 एस0 सी0 2039
24. (1985) 2 एस0 सी0 सी0 431
25. (1988) 2 उम0 नि0 प0 229
26. (1988) 1 एस0 सी0 471
27. ए0 आई0 आर0 1991 एस0 सी0 420
28. एम0 सी0 मेहता बनाम भारत संघ (1991) 2 एस0 सी0 सी0 137
29. ए0 आई0 आर0 2005 एस0 सी0 3036
30. (1996) 1 एस0 सी0 सी0 753
31. (1995) 1 एस0 सी0 सी0 14

<u>अभ्यास प्रश्न</u>

1.लोकहित वाद के अन्तर्गत वाद दायर करने का अधिकारी है –

(क) पीड़ित
(ख) पीड़ित की ओर से अन्य व्यक्ति
(ग) पीड़ित की ओर से कोई संस्था
(घ) उपरोक्त सभी

2.केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपने निम्न वाद के निर्णय को उलट दिया था –

(क) ए0 क0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य
(ख) गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य
(ग) एल0 चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ
(घ) मेनका गाँधी बनाम भारतीय संघ

3. मेनका गाँधी बनाम भारतीय संघ वाद में निम्न अनुच्छेद को नए आयाम प्रदान किए गए –

(क) अनुच्छेद 13
(ख) अनुच्छेद 19
(ग) अनुच्छेद 21

(घ) अनुच्छेद 32

4.इस वाद में उच्चतम नयायालय ने उपचारात्मक याचिका के नए फार्मूले को ईजाद किया था –

(क) परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ

(ख) विशाखा बनाम राजस्थान राज्य

(ग) पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ

(घ) रूपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा

5.न्यायिक सक्रियता और लोकहित वाद का विस्तार बहुत हद तक समांनान्तर रूप से हुआ है। **सत्य/असत्य**

6.जनता दल बनाम एच० एस० चौधरी[28] का मामला लोकहित वाद के दुरुपयोग का उदाहरण है। **सत्य/असत्य**

7.लोकहित वाद का प्रयोग अनु० 21 में प्रदत्त मूल अधिकारों या मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों में . किया जाता है। **सत्य/असत्य**

8.लोकहित वाद विकास कई राजनैतिक और न्यायिक कारणों से धीरे–धीरे हुआ। **सत्य/असत्य**

9.सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन का मामला चिकित्या सहायता पाने के अधिकार से संबंधित है। **सत्य/असत्य**

10.लोकहित वाद या जनहित याचिका को भारतीय संविधान में परिभाषित किया गया है। **सत्य/असत्य**

2.9 सारांश

लोकहित वाद हमारे देश के सार्वजनिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार का भण्डाफोड़ करने और इसके लिए दोषी व्यक्तियों को दण्डित करने में सबसे सशक्त साबित हुआ है । इसी के कारण, हवाला काण्ड, बिहार का चारा काण्ड, यूरिया काण्ड, सेन्टस किट्स काण्ड, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सांसदों द्वारा पूर्व प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव से धन प्राप्त कर संसद में उनके बहुमत को सिद्ध करने का काण्ड, उत्तर प्रदेश में आयुर्वेदिक घोटाला, दिल्ली में सरकारी भवनों के आवंटन का घोटाला, पेट्रोल पम्पों के आवटन का घोटाला आदि काण्डों को न्यायालय के समक्ष उठाया गया और उनकी जाँच हो रही है।

यद्यपि यह कार्य कार्यपालिका का है कित्त अनेक कारणों से उसमें भ्रष्टाचार से लड़ने की इच्छा शक्ति नहीं रह गई है । हमें न्यायपालिका को इस मुद्दे पर पूर्ण समर्थन देना चाहिए। वोट की राजनीति के कारण ये दोनों संस्थाएँ पंगु हो गई हैं। विधायिका ने जिन विधियों को बनाया है उसे कार्यपालिका लाग करने में आनाकानी कर रही है। ऐसी दशा में इस कार्य को न्यायालय ने अपने हाथ में लिया है क्योंकि संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक का यह मूल अधिकार है

कि वह न्यायालय से न्याय प्रदान करने के लिए आवेदन कर सकता है और साथ ही साथ न्यायालय का यह सांविधानिक कर्तव्य है कि वह न्याय प्रदान करे।

उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि भ्रष्टाचार के मामले में मुखमंत्रियों और मंत्रियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों पर मुकदमा चलाने से पूर्व किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है । भ्रष्टाचार जो हमारे सरकारी तंत्र में महामारी की तरह फैल गया है उससे निबटने मे लोकहित वाद महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

2.10 शब्दावली

विधिसम्मत प्रक्रिया – कानून में स्पष्ट रूप से विहित प्रक्रिया

पुनर्विलोकन – उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं के अन्तिम निर्णय की पुनः जॉच

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1क 2घ 3.ख 4. घ 5. सत्य 6. सत्य7. सत्य 8.सत्य 9.असत्य 10. असत्य

2.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2009, लेक्सिस नेक्सिस बटरबर्थ वाधवा नागपुर

2. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी

3. सीरबाई, एच0एम0 कान्स्टीट्यूषनल लॉ ऑफ इंडिया, 4वॉ संस्करण वोल्यूम–1 युनीवर्सल बुक ट्रेडर्स

4. भारत का संविधान, (बेयर एक्ट) द्विभासी संस्करण कानून प्रकाषक, संस्करण 2008

2.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री –

1. दुर्गा दास बसु, षार्टर कंस्टिट्यूषन ऑफ इंडिया

2. डा0 जे0 जे0 आर0 उपाध्याय, भारत का संविधान

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनहित याचिका से आप क्या समझते हैं?

2. हमारे सार्वजनिक जीवन में लोकहितवाद का क्या महत्व है?

3. लोकहितवाद द्वारा उच्चतम न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का किस तरह विस्तार किया है?सोदाहरण समझाएं

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–3. शक्तियों का पृथक्करण

इकाई–3. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, न्यायाधीशों की नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदच्युति

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 न्याय पालिका की स्वतन्त्रता

3.3.1 न्याय पालिका की स्वतन्त्रता का अर्थ

3.3.2 न्याय पालिका की स्वतन्त्रता की आवश्यकता

3.3.3 संवैधानिक प्रावधान

3.4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति

3.4.1 एस0पी0 गुप्ता बनाम भारत संघ का वाद

3.4.2 एस0सी0 एडवोकेट्स आन रिकार्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ का वाद

3.4.3 वर्तमान स्थिति (इन री प्रसीडेन्सिल रिफरेंस)

3.5 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए अर्हताएं

3.6 कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्तिः

3.7 तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति

3.8 उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति

3.8.1 अवर और कार्यकारी न्यायाधीश की नियुक्ति

3.8.2 भारत संघ बनाम प्रतिभा बनर्जी का वाद

3.9 उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए अर्हताएं एवं पदत्यागं

3.10 न्यायाधीशों के वेतन एवं विशेषाधिकार

3.11 अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति

3.12 न्यायाधीशों का स्थानान्तरण

3.13 महाअभियोग– न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया।

3.14 राष्ट्रीय न्यायिक समिति की आवश्यकता

3.15 राष्ट्रीय विधिक परिषद की स्थापना का प्रस्ताव

3.16 सारांश

3.17 शब्दावली

3.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.19 संदर्भ ग्रन्थ
3.20 सहायक/उपयोगी सामग्री
3.21 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

हमारे संविधान द्वारा देश में परिसंघात्मक प्रणाली की स्थापना की गयी है, जिसके अन्तर्गत संघ एवं राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा किया गया है। लिखित संविधान के अन्तर्गत संवैधानिक प्रावधानों की सही व्याख्या बहुत आवश्यक है ताकि शक्तियों के विभाजन में संतुलन बरकरार रहें एवं संघ एवं राज्य की सरकारें संविधान द्वारा प्रदत्त जिम्मेदारियों का सही तरीके से वहन कर सकें। इन संवैधानिक प्रावधानों की निष्पक्ष व्याख्या केवल स्वतन्त्र एवं समर्थ न्यायपालिका द्वारा ही की जा सकती है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिए उसका कार्यपालिका एवं विधायिका के नियन्त्रण से मुक्त होना आवश्यक है ताकि वे उस पर अनावश्यक दबाव न बना सकें एवं न्यायपालिका के निर्णयों को प्रभावित न कर सकें। न्यायाधीशों के नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पद से हटाने की प्रक्रिया भी निष्पक्ष एवं पारदर्शी होनी चाहिए, तभी न्यायपालिका अपना कार्य संविधान के उपबंधों के अनुरूप कर पायेगी न्यायपालिका के सर्वोच्च पर उच्चतम न्यायालय स्थित है जो न केवल संविधान वरन नागरिकों के मूल अधिकारों का भी संरक्षक है। इसके द्वारा दी गयी संविधान की व्याख्या सभी पर आबद्धकर होती है। इससे पूर्व की इकाई में हमने जनहित याचिका एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा उसके क्रियान्वयन के विषय में पढ़ा। प्रस्तुत इकाई में हम न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एवं न्यायधीशों की नियुक्ति आदि से संबंधित प्रावधानों के बारे में जानेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे—

- न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के कारक एवं उसका महत्व
- उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रावधान एवं प्रक्रिया
- उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति
- तदर्थ एवं कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति

- अधीनस्थ न्यायालयों के गठन के बारे में
- न्यायाधीश पद हेतु अर्हताएं
- न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते आदि
- न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया
- न्यायाधीशों का स्थानान्तरण

3.3 न्यायपालिका की स्वतन्त्रता

हमारे संविधान के निर्माण के समय में भारतीय संविधान के निर्माता इस बात को लेकर चिंतित थे कि हमारे देश की न्यायपालिका को किस तरह का होना चाहिए। संविधान सभा के सदस्यों के समक्ष यह चिंता डॉ. बी0 अम्बेडकर द्वारा निम्नलिखित शब्दों में वयक्त की गयी–

'सभा में राय की कोई अंतर नहीं है कि हमारी न्यायपालिका को कार्य रूप में स्वतंत्र और अपने आप में सक्षम होना चाहिए और सवाल यह है कि इन दोनों उद्देश्यों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।'

समाज की स्थिरता और समृद्धि मौलिक अधिकारों में निहित है और उन मौलिक अधिकारों को भारत जैसे देश में लागू एवं संरक्षित सवतंत्र न्यायपालिका के माध्यम से ही किया जा सकता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता कानून के शासन के अधीन एक स्वतंत्र और निष्पक्ष समाज को सुनिश्चित करने के लिए बुनियादी अपेक्षा है। देश के अच्छे शासन के लिए जिम्मेदार कानून का शासन निष्पक्ष न्यायपालिका के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के अंर्तगत राज्य के तीनों अंगों– विधानमंडल, कार्यपालिका, और न्यायपालिका के कामकाज के लिए सीमाएं निर्धारित की गयी हैं। कार्यपालिका और विधायिका अपनी सीमाओं के भीतर संविधान के तहत कार्य करें और एक दूसरे के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करें यह जिम्मेदारी एक प्रहरी के रूप में न्यायपालिका को प्रदान की गयी है एवं यह कार्य एक स्वतंत्र न्यायपालिका न्यायपालिका द्वारा ही अंजाम दिया जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में प्रावधान हमारे संविधान में समाविष्ट किये गये है किंतु इन्हें कार्य रूप में तभी प्राप्त किया जा सकता है जब राज्य कें सभी अंग एक दूसरे के सहयोग से कार्यों को व्यावहारिक रूप प्रदान करें।

3.3.1 न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ अपने अस्तित्व के वर्षों के बाद अभी भी स्पष्ट नहीं है। हमारे संविधान के अंर्तगत कहीं भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता को परिभाषित नहीं किया गया है। न्यायपालिका की

स्वतंत्रता पर प्राथमिक बात शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित है। जो कार्यपालिका और विधायिका से एक संस्था के रूप में न्यायपालिका की स्वतंत्रता के अधिकार पर आधारित है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता न्यायाधीशों द्वारा कृत्यों का प्रयोग करने की स्वतंत्रता में निहित है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता को न्यायाधीशों की स्वतंत्रता के एक हिस्से के रूप में समझा जा सकता है। न्यायिक स्वतंत्रता का मूल मंत्र एक संस्था के रूप में न्यायपालिका की स्वतंत्रता और व्यक्ति न्यायाधीशों की स्वतंत्रता जिनसे मिलकर न्यायपालिका का निर्माण होता है, में निहित है।

3.3.2 न्यायपालिका की स्वतंत्रता की आवश्यकता–

न्यायपालिका की स्वतंत्रता की आधारिक जरूरत निम्नलिखित बातों पर निर्भर है–

1.सभी अंगों के कामकाज का परीक्षण–

न्यायपालिका एक प्रहरी के रूप में कार्य करती है कि सभी अंग अपने संबंधित क्षेत्रों के भीतर और संविधान के प्रावधानों के अनुसार कार्य करें। न्यायपालिका संविधान के अभिभावक के रूप में कार्य करती है और शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत का सही अनुसरण भी सुनिश्चित करती है।

2.संविधान के प्रावधानों की व्याख्या–

संविधान के प्रावधानों में किसी प्रकार का भ्रम एवं संदेह की स्थिति में न्यायपालिका द्वारा ही उसकी व्याख्या की जाती है। स्पष्ट एवं भ्रम रहित व्याख्या के लिए न्यायपालिका का स्वतंत्र और आत्मसक्षम होना आवश्यक है। यदि न्यायपालिका स्वतंत्र नहीं है, तो अन्य अंग न्यायपालिका पर दबाव डालकर उन के अनुसार संविधान के प्रावधान की व्याख्या करवा सकते हैं। न्यायपालिका द्वारा संवैधानिक दर्शन और संवैधानिक मानदंडों के अनुसार संविधान की व्याख्या का काम किया जाता है।

3.न्यायपालिका द्वारा विवादों का निराकरण–

न्यायपालिका से सदा यही उम्मीद की जाती है कि उसका न्याय आंशिक या प्रतिबद्ध नही होगा। प्रतिबद्ध न्याय से अर्थ है कि जब न्यायाधीश न्याय देते समय सभी पहलुओं पर विचार नहीं करके एक विशेष पहलू पर जोर देते है। न्यायपालिका को सदा निष्पक्ष ढंग से कार्य करना चाहिए।

3.3.3 संवैधानिक प्रावधान

न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने संबंधी कई प्रावधान हमारे संविधान में दिए गए हैं–

1.सुरक्षित कार्यकाल–

सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के कार्यकाल को संविधान के प्रावधानों के तहत सुरक्षा प्रदान की गई है। एक बार नियुक्ति के पश्चात वे सेवानिवृत्ति की आयु तक पद पर बने रहते हैं। जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में 65 वर्ष (अनूच्छेद 124 (2)) और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के मामले में 62 साल (अनूच्छेद 217 (1)) है। उन्हें कार्यालय से केवल 'साबित दुर्व्यवहार' और 'अक्षमता' के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश से द्वारा हीं हटाया जा सकता है। ऐसे आशय का संकल्प संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्यता के बहुमत के द्वारा और उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई से एक बहुमत से पारित किया जाना आवश्यक है। इस प्रावधान के तहत सुप्रीम कोर्ट या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया बहुत जटिल है।

2.वेतन और भत्ते–

न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भी एक कारक है जो न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित बनाता है। एक बार नियुक्ति के पश्चात उनके वेतन और भत्तों में किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं किया ता सकता है और यह विधायिका के वोट के विषय के अंतर्गत नहीं हैं। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की दशा में वे भारत की संचित निधि पर और हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के मामले में राज्य की संचित निधि पर भारित है। गंभीर वित्तीय आपात की स्थिति में छोड़कर उन्हें किसी भी दशा में कम नहीं किया जा सकता (अनुच्छंद 125 (2))।

3.सुप्रीम कोर्ट की शक्तियॉ और क्षेत्राधिकार–

संसद केवल सुप्रीम कोर्ट की शक्तियां और अधिकार क्षेत्र को बढ़ा सकती हैं, लेकिन उनमें कटौती नहीं कर सकती। सिविल मामलों में, संसद, सुप्रीम कोर्ट में अपील के लिए केवल आर्थिक सीमा में बदलाव कर सकती है। संसद उच्चतम न्यायालय के अपीलीय अधिकार क्षेत्र में वृद्धि कर सकती है। यह सुप्रीम कोर्ट को अनुपूरक शक्तियां प्रदान कर इसे और अधिक प्रभावी ढंग से काम करने के लिए सक्षम बना सकती है। संसद संविधान के अनुच्छेद 32 में उल्लिखित रिटों के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश, या रिट निकालने की शक्ति उच्चतम न्यायालय को प्रदान करने के लिए विधि बना सकती है। लंकिन सुप्रीम कोर्ट की शक्तियों में कमी नही कर सकती है। इससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है।

4.न्यायाधीश के आचरण पर राज्य विधानमंडल एवं संसद में चर्चा का निषेध –

न्यायालय के किसी न्यायाधीश के आचरण या अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए कार्यों पर उच्च न्यायालय के संबंध में राज्य के विधानमंडल में (अनुच्छेद 211) एवं उच्चतम न्यायालय के संबंध में संसद में (अनुच्छेद 121) कोई चर्चा नहीं होगी। केवल महाअभियोग की प्रक्रिया को छोड़कर (जज को हटाने के लिए)।

5.अवमानना के लिए सजा देने की शक्ति

सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट को उनकी अवमानना लिए किसी भी व्यक्ति को सजा की शक्ति है। अनुच्छेद 129 इस तरह की शक्ति उच्चतम न्यायालय को एवं अनुच्छंद 215 प्रत्येक उच्च न्यायालय को प्रदान करता है।

6.कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण–

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंर्तगत अनुच्छेद 50 यह प्रावधान करता है कि राज्य कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करने के लिए कदम उठाएगी। अनुच्छेंद 50 कहता है कि न्यायिक सेवा कार्यकारी नियंत्रण से मुक्त होगी। इस प्रावधान के पीछे न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत ही निहित है।

3.4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति

अनुच्छेद 124(2) के अनुसार 'उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात् जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझें, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा और वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक वह 65 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है'।

परन्तु मुख्य न्यायाधीश से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से सदैव परामर्श किया जायेगा।

हमारे संविधान के प्रावधानों के तहत राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान होता है एवं संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग वह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की सलाह पर करता है। अतः जहाँ तक संघ की कार्यकारी शक्ति का सवाल है वह राष्ट्रपति के नाम पर संघ के मंत्रिमण्डल द्वारा इस्तेमाल की जाती है।

संविधान सभा के कुछ सदस्यों द्वारा अनुच्छेद 124 में 'परामर्श' के स्थान पर 'सहमति' (Concurrence) शब्द के प्रयोग पर जोर दिया गया था परन्तु इस शब्द पर आम सहमति नहीं बन पायी।

3.4.1 एस0पी0 गुप्ता बनाम भारत संघ[1] (न्यायाधीश स्थानान्तरण मामला) के वाद

7 न्यायाधीशों की पूर्ण पीठ ने 4–3 के बहुमत से यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 124 में प्रयुक्त 'परामर्श' शब्द का अर्थ 'सहमति' नहीं है एवं उक्त परामर्श को मानने के लिये राष्ट्रपति

बाध्य नहीं है। न्यायालय का यह निर्णय कार्यपालिका के पक्ष में था अर्थात न्यायालय के अनुसार मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में सरकार को पूर्ण शक्ति प्राप्त है।

3.4.2 1993 में एस0सी0 एडवोकेट्स आन रिकार्ड ऐसोसिएशन बनाम भारत संघ[2]

के मामले में 9 न्यायाधीशों की पीठ ने 7–2 के बहुमत से एस0पी0 गुप्ता वाले अपने पूर्व निर्णय को पलट दिया एवं कहा कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के मत को सर्वोच्च महत्व देना चाहिए जो वह अपने सहयोगियों से परामर्श करके व्यक्त करता है। भारत के मुख्य न्यायाधिपति के पद पर उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश की ही नियुक्ति की जाएगी। अनुच्छेद 124 में परामर्श शब्द इस बात को स्पष्ट करने के लिए दिया गया है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में सरकार को नहीं बल्कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति के निर्णय को प्राथमिकता दी जाएगी। इस निर्णय द्वारा न्यायपालिका ने पुनः कार्यपालिका के दवाब से स्वयं मुक्त कर लिया एवं उसकी खोई हुई स्वतऩ्त्रता एवं निष्पक्षता हासिल की।

3.4.3 वर्तमान स्थितिः–

संक्षेप में कहें तो न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति न्यायपालिका के ही हाथों में है। कार्यपालिका की इसमें औपचारिक भूमिका ही है। राष्ट्रपति ने इन रि प्रेसीडेन्सिल रिफरेन्स[3] में अनुच्छेद 143 के तहत उच्चतम न्यायालय से 9 प्रश्नों पर सलाह देने को कहा था जिनमें एक प्रश्न यह था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में क्या वह मुख्य न्यायाधीश द्वारा अन्य न्यायाधीशों से परामर्श किए बिना भेजी गयी सिफारिशें मानने के लिए बाध्य हैं।

9 सदस्यों की संविधान पीठ का निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति एस0पी0 भरूचा ने परामर्श प्रक्रिया को अधिक विस्तृत करते हुए कहा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायमूर्तियों के समूह से परामर्श करके ही राष्ट्रपति को सिफारिश भेजनी चाहिए। 1993 के निर्णय में सिर्फ दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श की बाध्यता थी। अनु0 124 (7) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पद धारण किया है, भारत राज्य– क्षेत्र के भीतर किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य करने से वर्जित करता है । न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए यह आवश्यक है । किंतु उच्च न्यायालयों के सेवा निवृत्त न्यायाधीशों को

उच्चतम न्यायालय में तदर्थ (क ीवब) न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए कहा जा सकता है (अनु0 127)।

3.5 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद के लिए अर्हताएँ–

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति में निम्न अर्हताओं का होना आवश्यक है–

(1) भारत का नागरिक हो;

(2) किसी उच्च न्यायालय का लगातार कम–से–कम 5 वर्षों तक न्यायाधीश रहा हो;

(3) किसी उच्च न्यायालय में लगातार 10 वर्षों तक अधिवक्ता रहा हो;

(4) राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता हो ।

भारत सरकार में न0 (4) के अधीन आज तक किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हुई है । हालांके अमेरिका में इस तरह के उदाहरण देखने को मिलता है। हारवर्ड विश्वविद्यालय में कानून के प्रोफेसर मि० फेलिक्स फ्रेंकफर्टर को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया था । जिनका स्थान अमेरिका के योग्यतम न्यायाधीशों में है । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के लिए नियुक्त व्यक्ति पद ग्रहण करते समय राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान में विहित प्रपत्र के अनुसार शपथ ग्रहण करता है।

3.6 कार्यकारी मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति

अनुच्छेद 126 के अनुसार जब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का पद रिक्त हो या अनुपस्थिति के कारण या अन्यथा अपने पद के कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तब न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से ऐसा न्यायाधीश जिसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, मुख्य न्यायमूर्ति के कार्य को करेगा।

3.7 तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति

अनुच्छेद 127 के उपबंधों के तहत जब किसी समय उच्चतम न्यायालय के किसी सत्र को आयोजित करने या चालू रखने के लिए गणपूर्ति न हो (स्थायी न्यायाधीशों का अभाव हो) तो मुख्य न्यायमूर्ति राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से और संबंधित उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति से परामर्श .करके किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालयों की बैठकों में

उतनी अवधि के लिए जितनी आवश्यक हो तदर्थ न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अनुरोध कर सकता है।

3.8 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति–

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति वह उच्चतम न्यायालय के मुरव्य न्यायमूर्ति और राज्य के राज्यपाल के परामर्श से करता है । अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की दशा में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं संबंधित राज्य के राज्यपाल के अलावा सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से भी परामर्श कर सकता है। संविधान के 15 वें संशोधन अधिनियम के पश्चात उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अपना पद 62 वर्ष तक धारण करेगा ।

सेवा निवृत्ति के पश्चात् वकालत करने पर निर्बन्धन– अनु0 220 उच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीशों को भारत के किसी न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन करने का प्रतिषेध करता है, किंतु वह उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों में वकालत कर सकता है । यह उपबन्ध न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिये आवश्यक है।

3.8.1 अवर और कार्यकारी न्यायाधीश की नियुक्ति–

अनु० 223 के प्रावधानों के अन्तर्गत जब उच्च न्यायालय के मुख न्यायमूर्ति का पद रिक्त हो या जब अनुपस्थिति या अन्य कारण से वह अपने कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तो राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों में से एक को उस पद के कर्तव्यों के पालन करने के लिये नियुक्त करेगा । अनु0 224 के अन्तर्गत न्यायालय के बढ़े हुए कार्यों या बकाया कार्यों को निपटाने के लिए राष्ट्रपति अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति भी कर सकता है। ऐसे न्यायाधीश 2 वर्ष की कालावधि के लिए नियुक्त होते हैं।

अनुच्छेद 224(2) के अनुसार जब मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त न्यायालय का कोई अन्य न्यायाधीश अनुपस्थिति या अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो, या अस्थायीरूपेण मुख न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर दिया गया हो तो राष्ट्रपति सम्यक रूप से अर्ह किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त करेगा, जब तक कि स्थायी न्यायाधीश अपने कर्तव्यों को पुनः धारण नहीं कर लेता ।

अनु0 224 (क) के अधीन उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश किसी समय राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्त किसी न्यायाधीश को उसकी सम्मति के पश्चात न्यायालय में न्यायाधीश के रूपं में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना कर सकता है।

3.8.2 भारत संघ बनाम प्रतिभा बनर्जी[4]

के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और उसके अधिकारी सरकारी सेवक नहीं हैं । वे संवैधानिक पद धारण करते हैं जो कार्यपालिका के नियन्त्रण में नहीं है । उच्च न्यायालय के अधिकारी और सेवकगण तथा सरकार के बीच का स्वामी और सेवक का संबंध नहीं है अतः वे सरकार के अधीन पद धारण नहीं करते हैं ।

न्यायालय ने यह कहा कि संविधान के अनु0 50, 214, 217, 219, एवं 221 के प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश सरकार का तीसरा अंग है जो अन्य दो अंगों कार्यपालिका और विधान मण्डल से पूर्णतया स्वतंत्र है । संविधान के अधीन एक न्यायाधीश एक विशेष पद धारण करता है । वह अपने कर्तव्यों को भय और पक्षपात किए बिना सम्पादित नहीं कर सकता है जब तक कि वह कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतन्त्र न हो और यदि उसे सरकारी सेवक माना जायेगा तो ऐसा सम्भव नहीं है। इस प्रकार संविधान की योजना से यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माता यह सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक थे, कि न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र हो । संविधान के भाग 5 के अध्याय 6 के उपबंधों से यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माता अधीनस्थ न्यायपालिका को भी कार्यपालिका से स्वतंत्र रखना चाहते थे । इसीलिंए अनु0 233 एवं 237 के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायिक अधिकारियों (जिला जज तक) की नियुक्ति की प्रक्रिया सिविल पदों के धारण करने वाले सेवकों से पूर्णतया भिन्न है। यद्यपि प्रारम्भिक नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है किंतु उसके पश्चात् उनकी तैनाती, प्रोन्नति, अवकाश आदि के मामले उच्च न्यायालय के हाथ में हैं सरकार के हाथ में नहीं । न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को सशक्त बनाने में उक्त निर्णय एक मील का पत्थर है[5]।

3.9 उच्च न्यायालय न्यायाधीश पद के लिए अर्हताएँ एवं पदत्याग–

अनु0 217 के अनुसार किसी उरह न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए एक व्यक्ति में निम्नलिखित अर्हताएँ होनी चाहिये–

1.वह भारत का नागरिक हो ।

2.भारत राज्य– क्षेत्र में कम–से–कम 10 वर्ष तक कोई न्यायिक पद धारण कर चुका हो।

3.उच्च न्यायालय में कम–से–कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

अपना पद ग्रहण करने के पूर्व न्यायाधीश को राज्यपाल या उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान में विहित प्रपत्र के अनुसार शपथ ग्रहण करना पड़ता है ।

पदत्याग

1.एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर से अपना पद त्याग सकता है
2.उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने पर या किसी अन्य उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने पर।
3.अनुच्छेद 124 (4) के अधीन महाभियोग लगाकर हटा दिये जाने पर ।

श्री कुमार पद्य प्रसाद बनाम भारत संघ[6] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनु0 217 (क) के अधीन 'न्यायिक पद' की व्याख्या करते हुए कहा कि न्यायिक पद को धारण करने वाले से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो न्यायिक कार्य करता है, पक्षकारों के बीच मामलों का विनिश्चय करता है और न्यायिक क्षमता में विनिश्चय करता है । उसे कार्यपालिका से पृथक होना चाहिए। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को पद से हटाने में सारी प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय के समान है, अर्थात् वह उसी तरह और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिस रीति से और जिन कारणों से उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश हटाया जा सकता है । यदि उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की आयु के बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है तो मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से राष्टूपति द्वारा विनिश्चित किया जायेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा ।
भारत संघ बनाम गोपालचन्द मिश्रा[7] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भविष्य की तिथि से लागू होने के लिए दिया गया त्यागपत्र उस तिथि के आने पर ही प्रभावी होता है । ऐसा त्यागपत पद त्यागने के इरादे का प्रस्ताव मात्र होता है जो राष्ट्रपति की स्वीकृति या उस तिथि के बीत जाने पर प्रभावी होता है । यदि वह राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है तो त्यागपत्र में लिखित तिथि के पूर्व वापस लिया जा सकता है । अनुच्छेद 217 के खण्ड (क) में यह वर्जित नहीं किया गया है कि त्यागपत्र वापस नहीं लिया जा सकता है। राष्ट्रपति को भेजने मात्र से ही कोई त्यागपत्र प्रभावी नहीं माना जा सकता है।

3.10 न्यायाधीशों के वेतन एवं विशेषाधिकार

अनु० 125 यह उपबन्यित करता है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को इतना वेतन दिया जायेगा जितना संसद् विधि बनाकर अवधारित करे और जब तक ऐसा नहीं किया. जाता तब तक वही वेतन दिया जायेगा जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट है । प्रत्येक न्यायाधीश ऐसे भत्तों और विशेषाधिकारों का हकदार होगा जिसे संसद् विधि द्वारा समय–समय पर अवधारित करे और जब तक इस प्रकार अवधारित नहीं किये जाते हैं तब तक ऐसे विशेषाधिकारों, भत्तों और अधिकारों का हकदार होगा जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं । न्यायाधीशों के

विशेषाधिकारों और भत्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात् कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जायेगा जो उनके लिये अलाभकारी हो ।

उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं सेवा शर्तें (संशोधन) अधिनियम, 2009 द्वारा न्यायाधीशों के वेतन में तीन गुना वृद्धि कर दी गई है । अब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का वेतन प्रतिमास 1,00,000 रुपये और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों का वेतन 90,000 रुपये प्रतिमास कर दिया गया है ।

अनु0 221 यह उपबन्धित करता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जो संसद् विधि द्वारा निर्धारित करे । जब तक संसद् ऐसी कोई विधि पारित नहीं करती है, उन्हें संविधान की दूसरी अनुसूची में उल्लिखित वेतन और भत्ते मिलेंगे । उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते राज्य की संचित निधि पर भारित होंगे और उनमें उनकी नियुक्ति के पश्चात् कोई अलाभकारी परिवर्तन न किया जायेगा। प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे भत्ते तथा अनुपस्थिति छुट्टी और पेंशन प्रदान किए जाएंगे जिसे संसद विधि बनाकर अवधारित करे । जब तक ऐसी कोई विधि नहीं बनाई जाती है उनके भत्ते आदि वही होंगे जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं । उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं सेवा शर्तें (संशोधन) अधिनियम, 2009 द्वारा अब उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को 90,000 रुपये प्रतिमास और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों को 80,000 रुपये प्रतिमास वेतन मिलेगा ।

3.11अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायधीशों की नियुक्ति

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के नीचे अनेक अधीनस्थ न्यायालय कार्य करते हैं। कार्यपालिका के हस्तक्षेप से इन न्यायालयों को मुक्त रखने के लिए संविधान में पर्याप्त उपबन्धों के अनुसार अनुच्छेद 235 में इन न्यायालयों के निरीक्षण एवं नियन्त्रण का पूर्ण अधिकार उच्च न्यायालयों को प्रदान किया गया है । अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति, छुट्टियों आदि के बारे में राज्यपाल को उच्च न्यायालय परामर्श से कार्य करना होता है ।

अनुच्छेद 233 के अनुसार किसी राज्य में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति. पद–स्थापना और पदोन्नति उस राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्य का राज्यपाल करता है । अतः राज्य में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति उच्च न्यायालय के परामर्श से ही की जा सकती है । जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त राज्य की न्यायिक सेवा में अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श के पश्चात् उसके द्वारा इस विषय को शासित करने वाले नियमों के अनुसार ही की जायेगी।[8] कोई भी व्यक्ति, जो संघ–राज्य की सेवा में पहले से सेवारत नहीं है, जिला न्यायाधीश नियुक्ति के लिए तभी पात्र

होगा जब वह कम से कम 7 वर्ष तक अधिवक्ता या वकील रह चुका हो तथा उच्च न्यायालय ने उसकी नियुक्ति की सिफारिश की है ।.

ए0 एम0 जैन बनाम हरियाणा[9] राज्य के मामले में यह निर्धारित किया गया कि अनु0 233 के अधीन जिला न्यायाधीशों की प्रारम्भिक नियुक्ति उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्यपाल करता है, किंतु राज्यपाल उच्च न्यायालय की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है । उच्च न्यायालय केवल नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करता है, किंतु राज्यपाल इसे मानने के लिए बाध्य नहीं है, न ही वह इसके लिये कारण बताने के लिए बाध्य है ।

असम राज्य बनाम रंगा मोहम्मद[10] के अधीन यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जिला न्यायाधीशों के स्थानान्तरण का अधिकार केवल उच्च न्यायालय को ही प्राप्त है, सरकार को नहीं । अनु0 233 के अधीन राज्यपाल की शक्ति जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति और स्थान तैनात करने आदि विषयों तक ही सीमित है। पहले से नियुक्त जिला न्यायाधीशों के स्थानान्तरण की शक्ति उसे नहीं है ।

3.12 न्यायाधीशों का स्थानान्तरण

अनु0 222 के अनुसार राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश का एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानान्तरण कर सकता है । इस स्थानान्तरित किये गये न्यायाधीश को वेतन के अतिरिक्त ऐसे प्रतीकात्मक भत्ते भी दिये जायेंगे जैसा कि संसद् विधि द्वारा निर्धारित करे ।

भारत संघ बनाम सांकलचन्द[11] के मामले में राष्ट्रपति की उस अधिसूचना को, जिसके द्वारा गुजरात उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय को स्थानान्तरित कर दिया गया था, इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि स्थानान्तरण आदेश संबन्धित न्यायाधीश की सहमति के बिना और भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बिना किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने 3–2 के बहुमत से सरकार के तर्क को स्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसकी सहमति के बगैर भी स्थानान्तरित किया जां सकता है । यदि न्यायाधीश की सहमति को अनु0 222 में निहित माना जाता है तो वह अपनी सहमति न देकर स्थानान्तरण के प्रावधान को ही शक्तिहीन बना देगा। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनु0 222 के अधीन राष्ट्रपति अपनी इस शक्ति का प्रयोग भारत के मुख्य न्यायाधिपति के परामर्श से करने के लिए बाध्य है। यह एक पूर्ववर्ती शर्त है जिसका पूरा होना आवश्यक है, क्योंकि स्थानान्तरण की शक्ति जनहित में प्रयोग करने के लिए प्रदान की गई है न कि किसी न्यायाधीश को, जो कार्यपालिका की इच्छानुसार निर्णय नहीं देता है, उसे दण्डित करने के लिए प्रदान की गई है । ऐसा हुआ तो न्यायपालिका की स्वतन्त्रता

प्रभावित हो सकती है। यही नहीं, परामर्श को प्रभावी होना आवश्यक है, अर्थात न्यायाधीशों से परामर्श करते समय राष्ट्रपति को सभी आवश्यक तथ्यों को, जो उसे उपलब्ध हैं समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये । निष्कर्ष के लिए आवश्यक तथ्य नहीं दिये जाने पर मुख्य न्यायाधीश उन्हें माँग सकता है । मुख्य न्यायाधिपति सभी तथ्यों पर विचार करके राष्ट्रपति को अपना परामर्श देगा । राष्ट्रपति द्वारा सम्पूर्ण तथ्यों को देना तथा मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनी राय के लिए आवश्यक तथ्यों को माँगना एक ही प्रक्रिया के अंग हैं और एक–दूसरे के पूरक हैं । अतः अनु0 222 के अर्थ में परामर्श प्रभावी होनी चाहिये, केवल शिष्टाचार मात्र नहीं ।

न्यायमूर्ति श्री भगवती एवं श्री उन्तावालिया ने उक्त मामले में अपना विसम्मत मत वयक्त किया था। एस० पी० गुप्त बनाम भारत संघ[12] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने साकलचन्द सेठ के मामले में दिए अपने निर्णय का अनुसरण करते हुए 4–3 के बहुमत से अपने पूर्वनिर्णय साकलचन्द सेठ में व्यक्त किये मत की पुष्टि करते हुए निर्णय दिया कि स्थानान्तरण के मामले में न्यायाधीश की सम्मति आवश्यक नहीं है । एस० सी० एडवोकेट्स आन रिकार्ड बनाम भारत संघ[13] के मामले में अपने ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने एस० सी० गुप्ता बनाम भारत संघ के निर्णय को उलट दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की 'नियुक्ति' और उनके 'स्थानान्तरण ' के मामले में भारत के मुख न्यायमूर्ति का निर्णय अन्तिम माना जायेगा, सरकार का नहीं ।. एस० पी० गुप्ता के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानान्तरण के संबंध में सरकार का निर्णय ही अन्तिम है । न्यायालय की 9 सदस्यीय पीठ ने 7–2 के बहुमत से (श्री वर्मा, श्री योगेक्ष्वर दयाल, श्री जी0 एन0 राय, श्री ए0 एस0 आनन्द, श्री एस0 पी0 वरूचा, श्री पंडियन और श्री कुलदीप सिंह) यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के मामले में अन्तिम निर्णय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का ही होगा इस मामले में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के मत को प्राथमिकता ही नहीं दी जायेगी, बल्कि वह निश्चयात्मक होगी । बहुमत द्वारा यह निर्णय भी दिया कि स्थानान्तरण के संबंध में संबंधित न्यायाधीश की सहमति आवश्यक नहीं है।

अतः इस निर्णय के पश्चात यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालयों में नियुक्ति के विषय में उच्चतम नयायालय के केवल दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों की सलाह लेना अनिवार्य है परन्तु स्थानान्तरण के विषय में उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श आवश्यक है। इसके अलावा संबंधित उच्च न्यायालयों (जिससे स्थानान्तरण किया गया है और जिसमें स्थानान्तरण किया गया है)के मुख्य न्यायाधीशों से परामर्श भी अनिवार्य है।

न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि परामर्श आम राय से होना चाहिए । परामर्श लिखित होना चाहिए तथा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अपनी सिफारिश के साथ अन्य न्यायाधीशों के

परामर्श को भी सरकार के पास भेजना चाहिए । न्यायालय ने कहा कि अनु0 217 (1) के अधीन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की व्यक्तिगत के सलाह नहीं मानी जायेगी ।

3.13 महाभियोग –न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया–

अनुच्छेद 124 (4) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है । इस प्रक्रिया को 'महाभियोग' कहा जाता है । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को केवल दो आधारों पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा उनके पद से हटाया जा सकता है –

- **सिद्ध कदाचार**
- **असमर्थता**

उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए समावेदन प्रत्येक सदन, लोक सभा और राज्य सभा दोनों की कुल सदस्य–संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन में उपस्थित . और मतदान करने वाले सदस्यों के कम–से–कम दो–तिहाई बहुमत द्वारा समर्थन प्राप्त होना चाहिये । इसके पश्चात् समावेदन राष्ट्रपति के समक्ष रखा जायेगा और आदेश दे देने पर उसके पद से हटा दिया जायेगा। ऐसा समावेदन संसद् के एक ही सत्र में प्रस्तावित और स्वीकृत होना चाहिये । ऐसे किसी प्रस्ताव के संसद् में रखे जाने तथा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने की प्रक्रिया संसद् विधि द्वारा विनियमित करेगी । इस प्रकार न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया बड़ी दुरूह है । कोई भी न्यायाधीश उस समय तक अपने पद से नहीं हटाया जा सकता है जब तक कि वह वास्तविक रूप से अयोग्य और दुराचारी न हो और ये आरोप उसके विरुद्ध साबित न कर दिये गये हों । संविधान इस उपबन्ध द्वारा न्यायाधीशों की पदावधि को संरक्षण प्रदान करता है दूसरे अर्थों में कहें तो संविधान का यह उपबन्ध न्यायपालिका की स्वतंत्रता भी सुनिश्चित करता है। अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश जीवन–पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं । उन्हें केवल महाभियोग लगाकर उनके पद से हटाया जा सकता है ।

शसिद्ध कदाचारश शब्दावली की व्याख्या– के ० वीरास्वामी बनाम भारत संघ[14] के महत्वपूर्ण निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1947 के अधीन अपराधों के लिए अभियोजन चलाया जा सकता है। सिद्ध कदाचार शब्दावली का क्षेत्र में भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम, 1947 की धारा 5 (1) में वर्णित आपराधिक दुराचरण भी सम्मिलित है ।

न्यायाधिपति वी० रामास्वामी का मामला– श्री रामास्वामी 1971 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे । 1987 में उन्हें पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में स्थानान्तरित कर दिया गया । 6 अक्टूबर, 1989 को उन्हें उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया । उन पर यह आरोप था कि जब वे पंजाब और हरियाणा राज्य के उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश थे तो उन्होंने वित्तीय अनियमिततायें कीं और अपने पद का दुरुपयोग किया । दसवीं लोक सभा के 108 सांसदों ने लोक सभा स्पीकर श्री रवि राय को उक्त न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए महाभियोग की कार्यवाही करने की नोटिस दी । स्पीकर ने नोटिस के संकल्प को स्वीकार कर लिया और जाँच के लिए न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1988 के अधीन एक 3 न्यायाधीशों की समिति का गठन किया । श्री रामास्वामी की पत्नी ने न्यायालय में रिट फाइल करके समिति द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को चुनौती दिया । न्यायाधीश श्री रामास्वामी इस समिति के समक्ष उपस्थित नहीं हुए। इन मामलों में भी उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि श्री रामास्वामी जाँच समिति के निर्णय को चुनौती नहीं दे सकते, जब तक कि वे राष्ट्रपति के आदेश द्वारा पद से हटा नहीं दिए जाते हैं । सावन्त समिति ने श्री रामास्वामी को उपर्युक्त आरोपों का दोषी ठहराया । समिति ने कहा कि श्री रामास्वामी ने जानबूझ कर अपने पद का दुरुपयोग किया और सरकारी धन को अपने निजी कार्यो में लगा कर नैतिक अधर्मता का कार्य किया । समिति का निष्कर्ष था कि उक्त कार्य अनु० 124 (4) के अधीन कदाचार है । परन्तु सत्ता पक्ष कांग्रेस पार्टी द्वारा मतदान में भाग नही लेने के कारण महाभियोग संकल्प पारित नहीं हुआ । महाभियोग संकल्प के गिर जाने से यह स्पष्ट हो गया कि भ्रष्ट न्यायाधीश को उसके पद से हटाने संबंधी उपबन्ध त्रुटिपूर्ण है और उसमें आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए । 2⁄3 बहुमत से महाभियोग पास करने का उपबन्ध संविधान निर्माताओं ने न्यायाधीशों की स्वाधीनता की सुरक्षा के लिए बनाया है, न कि एक भ्रष्ट न्यायाधीश को बचाने के लिए ।

न्यायाधीश श्री रामास्वामी ने अपना त्यागपत्र दे दिया किन्तु उन्होंने संसद, संविधान और न्यायपालिका तीनों संस्थाओं की प्रतिष्ठा पर गहरा आघात पहुँचाया।

सी० रवीचन्द्रन ऐययर बनाम न्यायाधीश ए० एम० भट्टाचार्य[15] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि केवल भारत का न्यायाधीश ही उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश या उसके मुख्य न्यायाधीश के विरुद्ध लगाए गए किसी आरोप, जो महाभियोग से कम है, के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है । इस मामले में एक अधिवक्ता ने अनु० 32 के अधीन एक लोकहित याचिका फाइल करके न्यायालय से यह निवेदन किया कि वह गोवा और महाराष्ट्र राज्य के अधिवक्ता संघों को बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री ए० एम० भट्टाचार्य को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए दबाव डालने से रोक दे । दबाव डालकर किसी न्यायाधीश को त्यागपत्र देने के लिए विवश करना असंवैधानिक है क्योंकिं इससे न्यायपालिका की

स्वाधीनता पर आघात पहुँचता है । इसी मध्य मुख्य न्यायाधीश श्री ए० एम ० भट्टाचार्य ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिवक्ता संघों द्वारा तथाकथित बुरे आचरण के आधार पर बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूति को प्रस्ताव पास करके त्यागपत्र देने के लिए बाध्य करने का कार्य संविधान सम्मत नहीं है और यह न्यायालय की अवमानना है तथा यह न्यायपालिका की स्वाधीनता पर आघात पहुँचाता है जो विधि शासन का एक आवश्यक तत्व है । न्यायालय ने कहा यह अत्यन्त आवश्यक है कि न्यायपालिका कार्यपालिका के दबाव से मुक्त रहे और न्यायपालिका की स्वतंत्रता केवल कार्यपालिका के दबाव से मुक्ति तक सीमित नहीं है । यह एक वृहत धारणा है और इसके अन्तर्गत अन्य दबाव और पूर्वाग्रह भी सम्मिलित है ।

3.14 राष्ट्रीय न्यायिक समिति (Judicial Commission) की आवश्यकता

9 सदस्यीय संविधान पीठ के निर्णय के पश्चात वर्तमान में उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानान्तरण सन्बन्धित विवाद हालांकि हल हो गया है किंतु इसमें न्यायाधीशों और विधायिका. के सदस्यों के दृष्टिकोण में पर्याप्त मतभेद देखने को मिला। न्यायमूर्ति श्री भगवती ने 1980 के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के मामले में आस्ट्रेलिया के समान भारत में भी एक न्यायिक समिति की स्थापना का सुझाव दिया था। उनके अनुसार यह शक्ति सरकार के किसी .एक अंग में अनन्य रूप में निहित नहीं होनी चाहिये ।

इसी संबंध में 1990 में नेशनल फ्रंट सरकार के विधि मंत्री श्री दिनेश गोस्वामी ने संसद में न्यायिक समिति की स्थापना के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया था लेकिन लोकसभा के भंग होने के कारण वह बिल व्यपगत (lapsed) हो गया ।

1987 में विधि आयोग ने भी राष्ट्रीय न्यायिक समिति की स्थापना का सुझाव दिया था । उसके गठन के संबंध में विधि आयोग ने यह सुझाव के अनुसार उस समिति का अध्यक्ष भारत का मुख्य न्यायमूर्ति होना चाहिए तथा तीन उच्चतम न्यायालय के तथा तीन उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, भारत के महाधिवक्ता, एक प्रतिष्ठित विंधिवक्ता तथा विधि एवं न्याय मंत्रालय के प्रतिनिधि होने चाहिए ।

3.15 राष्ट्रीय विधिक परिषद की स्थापना का प्रस्ताव

दिनांक 10–11–2006 को केन्द्रीय मंत्रि मण्डल ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध की गयी शिकायतों की जांच के लिये राष्ट्रीय विधिक न्यायिक परिषद की स्थापना के लिये विधेयक बनाने का प्रस्ताव पारित किया है । सरकार के अनुसार इससे

न्यायालयों के कार्यों में पारदर्शिता आयेगी और न्यायाधीशगणों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित होगा। राष्ट्रीय विधिक परिषद न्यायाधीशों के विरुद्ध कदाचार की जांच करेगा । इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति न्यायाधीशों के विरुद्ध, भारत के मुख्य न्यायाधीश के सिवाय, शिकायत कर सकेगा। राष्ट्रीय विधिक परिषद में भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के दो वरिष्ठतम मुख्य न्यायाधीश जिन्हें भारत का मुख्य न्यायाधीश नामजद करे, होंगे। किन्तु यदि. उच्चतम .न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत होगी तो उसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश, जिन्हें भारत का मुख्य न्यायाधीश नामजद करे, होंगे । इसके द्वारा न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 में संशोधन किया जाना प्रस्तावित है । प्रस्तावित विधेयक में शिकायत के लिये नई प्रक्रिया विहित की जायेगी । इसके अनुसार शिकायत की पहले न्यायिक परिषद द्वारा प्रारम्भिक जांच की जायेगी । यदि सभी आरोप सिद्ध हो जाते हैं तो परिषद उसे राष्ट्रपति को सौंपेगी जो उसे संसद को अग्रसारित कर देगा । जिन न्यायाधीशों के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो जायेंगे उनके ऊपर निंमलिखित कदम उठाये जायेंगे जैसे—सलाह दिया जाना, सेवानिवृत्ति का निवेदन, कुछ अवधि के लिए न्यायिक कार्यो से विरत रखना, चेतावनी देना आदि।

निर्देश

1. ए0 आइ0 आर0 1982 एस0 सी0 149
2. 1993 (4) एस0 सी0 सी0 441
3. ए0 आइ0 आर0 1999 एस0 सी0 1
4. 1995 (6) एस0 सी0 सी0 765
5. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 536
6. 1992 (2) एस0 सी0 सी0 428
7. ए0 आइ0 आर0 1978 एस0 सी0 694
8. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, पृष्ठ 558
9. ए0 आइ0 आर0 1977 एस0 सी0 276
10. ए0 आइ0 आर0 1967 एस0 सी0 903
11. ए0 आइ0 आर0 1977 एस0 सी0 2328
12. ए0 आइ0 आर0 1982 एस0 सी0 149
13. 1993 (4) एस0 सी0 सी0 441
14. 1991 (3) एस0 सी0 सी0 655
15. 1995 (5) एस0 सी0 सी0 457

अभ्यास प्रश्न –

1.निम्न वाद के निर्णय के माध्यम से न्यायपालिका ने अपनी स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता कार्यपालिका को सौंप दी थी।

क.एस0पी0 गुप्ता बनाम भारत संघ

ख.एस0सी0 एडवोकेट्स आन रिकार्ड बनाम भारत संघ

ग.इन री प्रेसीडेन्सियल रिफरेंस

घ.भारत संघ बनाम सॉकल चन्द

2.निम्न वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 124 में प्रयुक्त 'परामर्श' शब्द की विस्तृत व्याख्या प्रथम बार प्रस्तुत की गयी–

क.एस0पी0 गुप्ता बनाम भारत संघ

ख.एस0सी0 एडवोकेट्स आन रिकार्ड बनाम भारत संघ

ग.इन री प्रेसीडेन्सियल रिफरेंस

घ.भारत संघ बनाम सॉकल चन्द

3.संविधान के निम्न अनुच्छेद द्वारा राज्य को न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने का निर्देश दिया गया है।

क.अनुच्छेद 50

ख.अनुच्छेद 51

ग.अनुच्छेद 51।

घ.अनुच्छेद 49

4.महाभियोग की प्रक्रिया को शुरू किया जा सकता है–

क.केवल राज्य सभा में

ख.केवल लोक सभा में

ग.किसी भी सदन में

घ.उपरोक्त में से कोई नहीं

5.एक बार नियुक्ति के पश्चात न्यायाधीश के वेतन आदि में संसद विधि बनाकर कमी कर सकती है। **सत्य/असत्य**

6.संसद विधि बनाकर उच्चतम न्यायालय की शक्ति और अधिकारिता में कमी कर सकती है। **सत्य/असत्य**

7.उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में भारत का मुख्य न्यायाधीश चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह से परामर्श के पश्चात अपनी सिफारिश राष्ट्रपति को भेजगा। **सत्य/असत्य**

8.अमेरिका की भांति भारत में भी दोहरी न्याय प्रणाली का अस्तित्व है। **सत्य/असत्य**

3.16 सारांश

भारत में परिसंघ प्रणाली है। परन्तु अमेरिका की भांति हमारे संविधान द्वारा न्यायालयों की दोहरी प्रणाली की व्यवस्था नहीं है। संघ और राज्य दोनों के लिये ही एक न्याय प्रणाली है जिसके सर्वोच्च शिखर पर उच्चतम न्यायालय स्थित है, राज्यों के अन्दर उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय है।

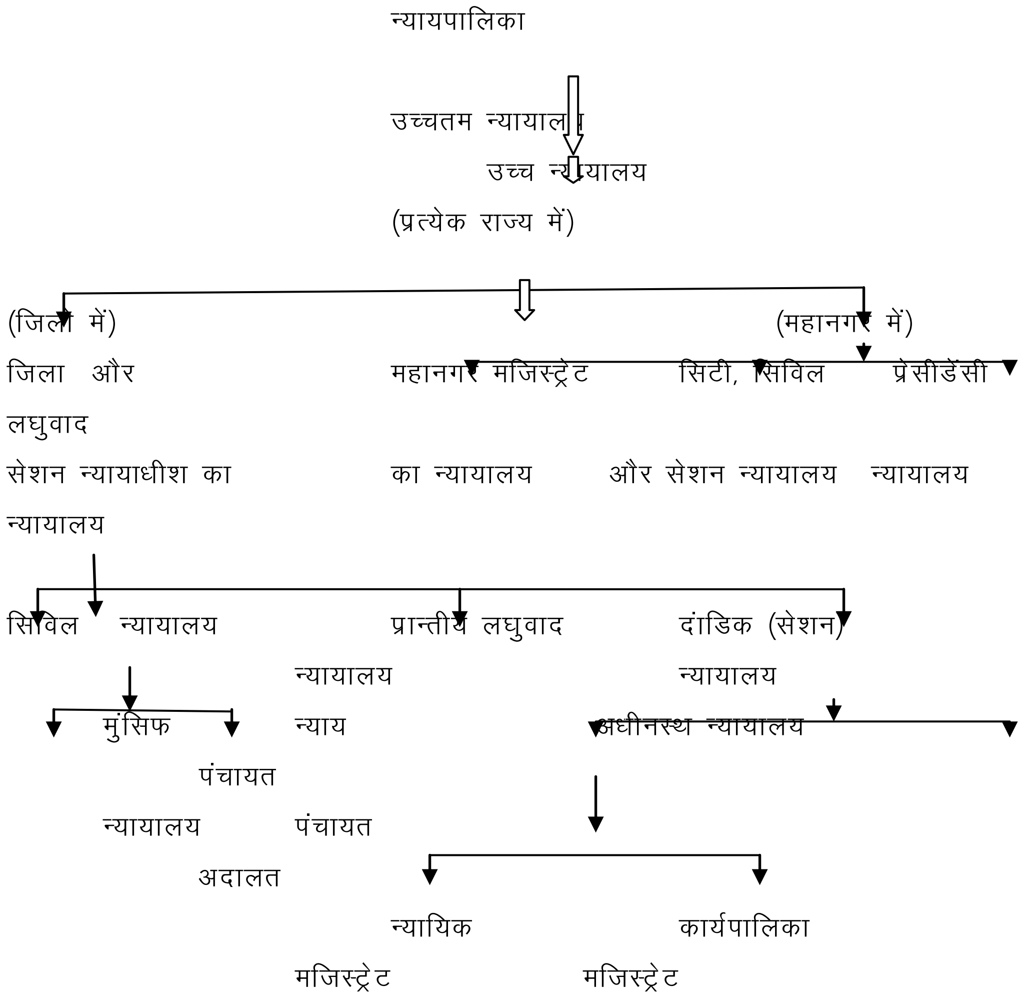

उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मूल अधिकारों का प्रहरी है एवं संविधान का संरक्षक है। संविधान के प्रावधानों में किसी भी प्रकार की भ्रम की स्थिति में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया

गया, विश्लेषण अंतिम माना जाता है। संविधान की निष्पक्ष एवं सही व्याख्या के लिए न्यायपालिका का स्वतन्त्र होना अतिआवश्यक है। भारत के संविधान के अन्तर्गत न्यायपालिका की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने हेतु अनेक उपबन्धों का समावेश किया गया है। अनुच्छेद 50 कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक करने का प्रावधान करता है। एक बार नियुक्ति के पश्चात किसी न्यायाधीश को महाभियोग की कठिन एवं दुरूह प्रक्रिया द्वारा ही केवल 'कदाचार' और 'असमर्थता' के आधारों पर ही पदच्युत किया जा सकता है एवं नियुक्ति के पश्चात उनके वेतन भत्तों आदि में भी कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। केवल वित्तीय आपात के समय ही ऐसा संभव है। संसद विधि बनाकर न्यायालय की शक्तियाँ और अधिकारिता में वृद्धि तो कर सकती है। परन्तु कम नहीं कर सकती। न्यायालय को अपने अवमान के लिये किसी भी व्यक्ति को दण्ड देने शक्ति अनुच्छेद 129 प्रदान करता है। न्यायाधीशों द्वारा अपने कर्तव्य पालन में किये गये किसी आचरण पर संसद में चर्चा नहीं की जा सकती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति का मामला सर्वाधिक विवाद ग्रस्त रहा है, अनुच्छेद 124 एवं 226 में स्पष्ट उपबन्ध के अनुसार राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से 'परामर्श' करेगा जिसे वह इस प्रयोजन के लिये उचित समझे, परन्तु नियुक्ति के मामलो में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण यह उपबन्ध अपनी शक्ति खोने लगा। तब इन री प्रेसीडेन्सियल रिफरेन्स के मामले उच्चतम न्यायालय ने सभी विवादों को दूर करते हुए निर्धारित किया कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में 4 वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह से परामर्श करके ही राष्ट्रपति को भारत का मुख्य न्यायाधीश अपनी सिफारिश भेजेगा।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श के पश्चात अपनी सिफारिश राष्ट्रपति को भेजेगा। वर्तमान स्थिति के अनुसार न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में पर्याप्त निष्पक्षता होगी और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता भी सुनिश्चित होगी।

3.17 शब्दावली

अवमान – जब कोई व्यक्ति न्यायालय के विषय में असम्मानजनक शब्दों का उपयोग करता है या न्यायालय के आदेश की अवहेलना करता है तो उसे न्यायालय का अवमान माना जाता है।

अधिकारिता– ऐसे क्षेत्र एवं विषय जिनसे संबंधित मामले स्वीकार कर न्यायालय अपना निर्णय दे सकता है।

3.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ख 3. क 4. ग 5. असत्य 6. असत्य 7. सत्य 8. असत्य

3.19 संदर्भ ग्रन्थ

1.बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2009, लेक्सिस नेक्सिस बटरबर्थ वाधवा नागपुर

2.पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी

3.सीरबाई, एच0एम0 कान्स्टीट्यूषनल लॉ ऑफ इंडिया, 4वॉ संस्करण वोल्यूम–1 युनीवर्सल बुक ट्रेडर्स

4.भारत का संविधान, (बेयर एक्ट) द्विभासी संस्करण कानून प्रकाषक, संस्करण 2008

5- www.scribd.com, Research, Law

6.legal seniceindia.com

3.20 सहायक/उपयोगी सामग्री

1.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

2.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

3.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1.न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये वर्तमान में क्या प्रक्रिया निर्धारित की गयी है? सम्बन्धित वादों द्वारा अपने उत्तर को स्पष्ट करें।

2.न्यायपालिका की स्वतन्त्रता से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करें।

3.निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्यायपालिका विधि का शासन स्थापित करने में किस प्रकार सहायक है?

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–3. शक्तियों का पृथक्करण

इकाई–4. उत्तरदायित्वः कार्यपालिकीय एवं न्यायपालिकीय; अधिकरण

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 उत्तरदायित्व – अवधारणा

4.4 कार्यपालिकीय उत्तरदायित्व

4.4.1 सामूहिक उत्तरदायित्व

4.4.2 व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

4.4.3 प्रधानमंत्री का उत्तरदायित्व

4.4.4 वित्तीय उत्तरदायित्व

4.4.4.1 लेखा परीक्षण

4.4.4.2 वित्तीय मामलों में संसदीय समितियाँ

4.4.4.2.1 लोक लेखा समिति

4.4.4.2.2 आकलन समिति

4.4.4.2.3 लोक उपक्रम समिति

4.5 न्यायालय के माध्यम से कार्यपालिकीय उत्तरदायित्व का निर्धारण

4.6 न्यायपालिका का उत्तरदायित्व

4.6.1 न्यायाधीशों के लिए आचार–संहिता की आवश्यकता

4.6.2 न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता

4.6.3 न्यायिक उत्तरदायित्व का अभाव

4.6.4 न्यायिक स्वतंत्रता का अर्थ न्यायिक उत्तरदायित्व से मुक्ति नहीं।

4.6.5 विधि के प्रति उत्तरदायित्व।

4.6.6 भ्रष्टाचार मुक्त न्यायिक प्रणाली

4.6.7महाभियोग की प्रक्रिया में बदलाव की आवश्यकता

4.6.8 सूचना का अधिकार अधिनियम एवं न्यायपालिका

4.6.9 न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010

4.7 अधिकरण

4.7.2 प्रशासनिक अधिकरण

4.7.3 अन्य विषयों के लिए अधिकरण

4.8 प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

4.8.1 संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार

4.8.2 न्यायाधिकरण और न्यायपीठों का गठन

4.8.3 पदावधि

4.8.4 अधिकरण का क्षेत्राधिकार, शक्तियां, और प्राधिकार

4.9 सारांश

4.10 महत्वपूर्ण शब्दावली

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

4.14 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक उत्तरदायित्व लोकतन्त्र में लोक प्रशासन को तानाशाही प्रणाली से अलग करता है। एक तानाशाह किसी के प्रति जवाबदेह नहीं होता। उत्तरदायित्व एक बहुत विस्तृत एवं व्यापक शब्द है। संसदीय सरकार का मुख्य आधार मंत्रिपरिषद की जवाबदेही या सामूहिक उत्तरदायित्व है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायित्व है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत संविधान के संरक्षक की भूमिका न्यायपालिका को सौंपी गयी है। संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या में उच्चतम न्यायालय का निर्णय सर्वोपरि होता है। हाल के वर्षों में भारत का उच्चतम न्यायालय बहुत शक्तिशाली होकर उभरा है। इसका एक कारण विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्यों में आयी गिरावट भी है। ऐसे में कई बार न्यायपालिका एवं विधायिका के मध्य टकराव की स्थितियां भी पैदा हुई हैं। जनहित याचिका के माध्यम से भी न्यायिक सक्रियता में बहुत गति आयी है। न्यायालय स्वतः संज्ञान लेकर भी कई मामलों में सरकार से जवाब मांगता है। ऐसे में उसकी उत्तरदायिता का निर्धारण भी अवश्य होना चाहिए। परन्तु हमारे संविधान में इससे संबंधित कोई प्रावधान नहीं है। संविधान के 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में दो गये अनुच्छेदों– 322क एवं 323ख को जोड़ा गया है। इन अनुच्छेदों के तहत विभिन्न मामलों के विनिश्चय हेतु संसद को विभिन्न प्रकार के अधिकरणों की स्थापना की शक्ति प्रदान की गयी है। जिनके

अन्तर्गत संघ एवं राज्यों के सेवकों की सेवा शर्तों से सम्बन्धित विवादों का निपटारा, कर–संबंधी विवाद, भूमि सुधार विधियाँ, संसद और राज्यों–विधानमण्डलों के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी विवाद आदि विषय आते हैं।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे।

- उत्तरदायित्व की अवधारणा।
- कार्यपालिका का उत्तरदायित्व।
- मंत्रिपरिषद का लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होना।
- वित्तीय उत्तरदायिता।
- न्यायपालिका का उत्तरदायित्व।
- विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना, उनका गठन एवं शक्तियां।

4.3 उत्तरदायित्व– अवधारणा

उत्तरदायित्व दो शब्दों से मिलकर बना है– उत्तर और दायित्व, किसी दायित्व के निर्वहन की जिम्मेदारी उसके प्रति उत्तर देने की भी बनती है। उत्तरदायित्व और नियन्त्रण शब्दों को समानार्थी के रूप में प्रयोग किया जाता है। सकारात्मक रूप में उत्तरदायित्व का अर्थ है परिणाम की प्राप्ति। लोकसेवकों के ऊपर भारी जिम्मेदारियां होती हैं। इसके लिये उन्हें स्थिर कार्यकाल एवं प्रशासनिक सहयोग प्राप्त होता है, ऐसे में अगर वे अच्छे परिणाम नहीं दे पाते हैं तो उनकी जवाबदेही तो बनती ही है। दूसरे शब्दों में कहें तो अगर प्रशासक के पास जिम्मेदारियां हैं तो उनके प्रति उत्तरदायित्व भी उसी का है। जिम्मेदारी और जवाबदेही दोनों एक ही सिक्के के दो पहलूं हैं एवं वे साथ–साथ चलते हैं। नकारात्मक अर्थों में उत्तरदायित्व का मतलब है कमियों के लिये जिम्मेदार होना। व्यवहारिक रूप से उत्तरदायित्व का निर्धारण बहुत कठिन कार्य है। इसके मुख्य कारण हैं– सामूहिक निर्णय, व्याप्त उत्तरदायित्व एवं लगातार स्थानान्तरण किसी भी कार्य के लिये उत्तरदायित्व का निर्धारण इसलिये कठिन होता है क्योंकि किसी भी निर्णय में कई व्यक्तियों की भागीदारी होती है। मौखिक आदेश पर किये गये कार्यों में उत्तरदायित्व का निर्धारण और भी कठिन कार्य हैं। लेकिन इस यह अर्थ कदापि

नहीं है कि उत्तरदायित्व लागू नहीं हो सकता। एक भुक्तभोगी नागरिक इसके लिये न्यायालय की शरण ले सकता है।

4.4 कार्यपालिकीय उत्तरदायित्व

संसदीय प्रणाली की सरकार में जैसा कि भारत में है राजनीतिक कार्यकारिणी (मंत्रिपरिषद) सामूहिक रूप से निरंतर संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। अपने कार्यों का लेखा–जोखा संसद को देना उनका प्रथम कर्तव्य होता है।

राजीनतिक कार्यकारिणी से अलग एक स्थायी कार्यपालिका भी होती है जिसे नौकरशाही या अधिकारी–तन्त्र कहा जाता है। उसका उत्तरदायित्व सीधे न होकर परोक्ष होता है। वे राजनीतिक कार्यकारिणी के जरिये उत्तरदायी होते हैं।

प्रत्येक मंत्री अपने निजी विभाग के कार्यों के लिये वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होता है। अपने क्रियाकलापों, उनकी कमियों और उन लोक सेवकों के कार्यों के लिये भी वह स्वयं उत्तरदायी होता है जो उसके अधीन कार्यरत होते हैं। अपने विभाग के कार्यों के लिये संबंधित मंत्री पूरी तरह से जिम्मेदार होता है चाहे वह कार्य उसके संज्ञान के बिना हुआ हो। उदाहरण स्वरूप अगर कोई रेल दुर्घटना घर जाती है तो जवाबदेही रेलमंत्री की भी बनती है चाहे इस कार्य में उसकी प्रत्यक्ष सहभागिता नहीं होती है। अगर कोई लोक सेवक मंत्री द्वारा निर्धारित नीति के तहत कार्य करता है तो मंत्री को उसे सुरक्षा प्रदान करनी चाहिये। यदि कोई लोक सेवक अपनी मर्जी से कोई ऐसा कार्य करता है जो नीति विरूद्ध हो तो भी मंत्री उसके कृत्य के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

4.4.1 सामूहिक उत्तरदायित्वः–

भारत ने इंग्लैण्ड की भांति संसदीय प्रणाली की सरकार को अपनाया है। इसका मुख्य आधार मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व है। इंग्लैण्ड में लिखित संविधान की अनुपस्थिति में यह सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण रूढ़ि पर आधारित है। भारत में स्पष्ट उपबन्ध के माध्यम द्वारा संविधान के अन्तर्गत इसे सुरक्षित किया गया है। अनुच्छेद 75(3) के अनुसार– 'मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी।' मंत्रीगण एक टीम के रूप में कार्य करते हैं। जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है, मंत्रिमण्डल के सभी निर्णय संयुक्त रूप से लिये जाते हैं। निर्णय लेते समय मंत्रियों के मध्य चाहे कितने भी मतभेद क्यों न उभरे एक बार निर्णय को अन्तिम मुहर लगने के पश्चात वे सभी को मान्य होते हैं एवं सभी उसके लिये सामूहिक रूप से उत्तरदायी भी होते हैं।

लार्ड सैलिसबरी के अनुसार – 'जो भी निर्णय मंत्रीमण्डल में लिया जाता है, सभी मंत्रीगण जो उससे इस्तीफा नहीं दे देते हैं, पूर्णरूप से उत्तरदायी होते हैं और बाद में वे यह नहीं कह सकते कि उन्होंने वहां अन्य लोगों के कहने से सहमति दी थीं, लेकिन वस्तुतः वे उससे सहमत नहीं है। यदि कोई मंत्री प्रधानमंत्री या मन्त्रिपरिषद की नीतियों से सहमत नहीं है तो उसके पास त्याग पत्र देने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रहता।' सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का अर्थ है कि यदि मंत्रिपरिषद लोकसभा में विश्वास खो देती है अर्थात किसी नीति के प्रश्न पर पराजित हो जाती है तो मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है।[1]

4.4.2. व्यक्तिगत उत्तरदायित्व :–

प्रत्येक मंत्री अपने विभाग के कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायित्व होता है। अपने विभाग की जिम्मेदारी उसे स्वयं लेनी होती है। वेड एण्ड फिलिप्स के अनुसार– यदि किसी मन्त्री ने मन्त्रिमण्डल के अनुमोदन पर कोई कार्य किया है तो सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू होता है परन्तु अगर कार्य मन्त्रिमण्डल के अनुमोदन के बिना किया गया है तो अगर मन्त्रिमण्डल उसके कार्य का अनुमोदन नहीं करता है तो दायित्व केवल उस मन्त्री पर होगा, पूरे मन्त्रिमण्डल पर नहीं।

राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि हमारे संविधान के अधीन भारत में ब्रिटिश संसदीय ढंग की सरकार की स्थापना की गयी है। जिसका मूल भूत सिद्धान्त यह है कि राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपाल सांविधानिक प्रधान होते हैं और वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मंत्री परिषद में निहित होती है।

4.4.3 प्रधानमंत्री का उत्तरदायित्वः–

प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद के निर्णयों के बारे में सूचित कराता है। अनुच्छेद 78 के अनुसार– 'प्रधानमंत्री मन्त्रीमण्डल के सभी 'निर्णयों' की सूचना राष्ट्रपति को देगा। राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल का निर्णय मानने के लिये बाध्य है।

प्रधानमंत्री चूंकि मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है अतः अपने मंत्रिपरिषद के निर्णयों एवं अन्य सभी क्रियाकलापों का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से उसी का होता है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है एवं दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है इसी तरह मंत्रियों के पदच्युति की वास्तविक शक्ति भी प्रधानमंत्री के पास ही होती है क्योंकि इस मामले में भी राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह मानने के लिए बाध्य होता है। अतः सामूहिक उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री के माध्यम से ही प्राप्त

किया जा सकता है। यदि प्रधानमंत्री को लगता है कि किसी मन्त्री की मंत्रिमण्डल में उपस्थिति सरकार की नीतियों एवं कार्यकुशलता के लिये अहितकर है तो वह उस मन्त्री को हटाने की सलाह राष्ट्रपति को दे सकता है। इस प्रकार किसी मंत्री की नियुक्ति एवं पदच्युति, दोनों ही अधिकार प्रधानमंत्री के पास ही होते हैं। डा0 अम्बेडकर के शब्दों में[3]–– ''सामूहिक उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। प्रधानमंत्री ही वास्तव में कैबिनेट रूपी मेहराब की आधारशिला है और अब तक कि हम उस पद का सृजन नहीं करते और पद के अधिकारी को मन्त्रियों की नियुक्ति और अपदस्थ करने का संवैधानिक अधिकार नहीं देते तब तक सामूहिक उत्तरदायित्व हो ही नहीं सकता।''

4.4.4 वित्तीय उत्तरदायित्व

यह उत्तरदायित्व का महत्वपूर्ण अवयव है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जो जनता के रूपयों को खर्च करता है उसे अपने कार्यों का हिसाब जनता को देना चाहिए जो कर का भार वहन करती है।

वित्तीय उत्तरदायित्व द्वारा विधायिका पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। जिसके ऊपर जनता के रूपयों के प्रबन्धन का दायित्व होता है। कर दाताओं के निमित्त विधायिका, कार्यकारिणी के ऊपर इसका नियन्त्रण रखती है। विधायिका के वित्त नियन्त्रण का बजट एक महत्वपूर्ण उपकरण है। संसदीय प्रणाली में अनुदान की मांग लोकसभा को प्रत्येक विभाग के क्रियाकलापों पर बहस करने का मौका प्रदान करती है। अनुदान तभी पास हो पाता है जब संसद के सदस्य दिये गये विवरण से संतुष्ट होते हैं। इस प्रकार कार्यकारिणी के वित्तीय दायित्व पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

वित्त मंत्रालय एवं सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों के प्रमुख द्वारा बजट द्वारा पास किये गये अनुदान राशियों के खर्चो पर निगरानी रखी जाती है एवं वे इसके लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इंग्लैण्ड में लोक निधि को बैंक आफ इंग्लैण्ड में एक्सचेकर के एकाउंट में रखा जाता है। सभी विभागों के प्रमुख सम्बन्धित खर्चों के लिये धन पोस्टमास्टर जनरल द्वारा जारी पेबिल आर्डर (payble order) द्वारा प्राप्त करते हैं। एक व्यवस्थित रजिस्टर द्वारा यह देखा जाता है कि पेबिल आर्डर जारी किये गये अनुदान से अधिक न हों।

4.4.4.1 लेखा परीक्षण

लेखा परीक्षण (**Audit**) वित्तीय उत्तरदायित्व का निहायत ही जरूरी भाग है। भारत में स्वतन्त्र लेखा परीक्षण बाहरी एजेन्सी द्वारा किया जाता है। जिसे भारत का नियन्त्रक–महालेखा–परीक्षक कहा जाता है।[4] भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के निम्न कार्य हैं–

1.एकाउन्टेन्ट के रूप में वह भारत की संचित निधि से निकाली जाने वाली सभी पूंजियों पर नियन्त्रण रखता है।

2.आडिटर के रूप में वह संघ और राज्यों के सभी खर्चों की लेखा परीक्षा करता है। नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक का पद सरकार से स्वतन्त्र संवैधानिक हैसियत का होता है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है एवं उसे उसी प्रक्रिया (महाभियोग) के तहत पदच्युत किया जा सकता है जिस तरह से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जा सकता है।

भारत के नियन्त्रक महालेखापरीक्षक के संघ के लेखाओं सम्बन्धी प्रतिवेदनों के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा एवं राज्य के लेखाओं सम्बन्धी प्रतिवेदनों को उस राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा जो क्रमशः संसद के प्रत्येक सदन एवं राज्य के विधानमण्डल के समक्ष रखवायेगा।[5]

4.4.4.2 वित्तीय मामलों में संसदीय समितियां

संसदीय प्रणाली में संसदीय समितियां, कार्यपालिकीय उत्तरदायित्व के निर्वाह में मुख्य भूमिका अदा करती है। राष्ट्रपति प्रणाली में उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कांग्रेस कमेटियाँ यह भूमिका अदा करती हैं।

1.4.4.2 लोकलेखा समितिः– (Public Account Committee)

इसमें 22 सदस्य होते हैं। 15 लोक सभा से एवं 7 राज्यसभा से। इसका अध्यक्ष परम्परा के अनुसार विपक्षी पार्टी का होता है। कोई मन्त्री इसका सदस्य नहीं हो सकता। इसका कार्य खर्च होने वाली रकम पर विचार करना है। यह नियन्त्रक–महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट पर भी विचार करती है और संसद को अपनी रिपोर्ट देती है। जिससे मंत्रियों द्वारा की गयी अनियमितताओं का पता चलता है। प्रत्येक राज्य में भी लोक लेखा समिति होती है।

4.4.4.2.2 आकलन समिति(The Estimate Committee)

इसे ब्रिटेन की Expenditure Committee की तर्ज पर बनाया गया है। आकलन समिति संघ के साथ साथ प्रत्येक राज्य में भी गठित की जाती है। इस समिति में 30 सदस्य (सभी लोकसभा से) होते हैं। इसका अध्यक्ष लोकसभा के स्पीकर द्वारा मनोनीत किया जाता है। आंकलन समिति का कार्य लोकसभा में प्रस्तुत किए जाने वाले आंकलन पर विचार करना है एवं यह सुझाव देती है कि खर्चे में कमी कैसे की जाये। लोकसभा में बजट में होने वाली रकम को कैसे रखा जाये, उसका प्रारूप भी आकलन समिति बताती है।

आकलन समिति का कार्य गहन जांच पड़ताल और अधिक उत्तरदायित्व तय करना है।

4.4.4.2.3 लोक उपक्रम समिति (Committee on public undertakings)

इनकी स्थापना सन् 1964 में की गयी थी। इसमें कुल 15 सदस्य (10 लोकसभा से + 5 राज्यसभा से) इनके कार्य निम्न हैंः–

1.लोक उपक्रमों के लेखाओं की रिपोर्ट देना।

2.लोक उपक्रमों के महालेखाकार पर प्रतिवेदन देना।

3.व्यापारिक सिद्धान्तों आदि के आधार पर स्वतन्त्रता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के सुझाव देना।

4.5 न्यायालय के माध्यम से कार्यपालिकीय उत्तरदायित्व का निर्धारण

अगर कार्यपालिका की कार्यप्रणाली में कमियाँ या अकार्यकुशलता पायी जाती है तो न्यायिक उपचारों के माध्यम से भी उनके उत्तरदायित्व का निर्धारण किया जा सकता है–

1.प्रशासनिक कार्यों एवं निर्णयों का न्यायिक पुनर्विलोकनः–

प्रोफेसर ई0एस0 कारविन के अनुसार– न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति न्यायालयों की वह शक्ति है जिसके अन्तर्गत वे विधान मण्डल द्वारा पारित अधिनियमों की संवैधानिकता की जांच करते हैं। वे ऐसी किसी भी विधि को प्रवर्तित करने से इन्कार कर सकते हैं जो संविधान के उपबन्धों से असंगत है। अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय एल0 चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ[6] के मामले में उच्च्तम न्यायालय ने कहा कि उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 32 एवं 226 के तहत प्राप्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान का आधार भूत ढांचा है और इसे अनुच्छेद 368 के अधीन संवैधानिक संशोधन द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

2.वैधानिक अपील (Statutory Appeal)

कुछ प्रशासनिक कार्यों और निर्णयों के मामले में कानून स्वयं पीड़ित पक्ष को न्यायालय या प्रशासनिक अधिकरणों में अपील का अधिकार देता है।

3.अपकृत्य या संविदा के मामलों में गैर सरकारी पक्ष द्वारा सरकार के खिलाफ वाद द्वारा।

4.**अशासकीय पक्ष द्वारा लोक अधिकारी के खिलाफ अपराधिक वाद एवं लोक अधिकारी के खिलाफ नुकसानी या संविदा सम्बन्धी वाद द्वारा।**

5.विभिन्न प्रकार की रिटों के माध्यम से संवैधानिक उपचार प्राप्त करना।

4.6 न्यायपालिका का उत्तरदायित्व

भारतीय संविधान के अन्तर्गत संविधान के संरक्षक की भूमिका न्यायपालिका को सौंपी गयी। किसी भ्रम एवं अनिश्चितता की स्थिति में संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या का अधिकार उच्चतम न्यायालय को है।

किसी भी लोकतान्त्रिक सरकार में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का पालन करते हुए सरकार के तीनों अंगों– विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका को एक दूसरे से स्वतन्त्र बनाया जाता है एवं अलग–अलग व्यक्तियों/निकायों के हाथों में उनकी कमान होती है। जिम्मेदारी और जवाबदेही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अतः जितनी बड़ी जिम्मेदारी उतनी ही उत्तरदायिता भी बनती है। विधायिका एवं कार्यपालिका में गिरावट के साथ ही न्यायपालिका सरकार का सबसे शक्तिशाली अंग बनकर उभरी है। न्यायपालिका न केवल संविधान का वरन नागरिकों के मूल अधिकारों का भी संरक्षक है। अतः एक भारी भरकम जिम्मेदारी उस पर है ऐसे में उसकी उतनी ही उत्तरदायिता भी बनती है। संविधान के अन्तर्गत न्यायालय की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने सम्बन्धी उपबंध तो है परन्तु न्यायालय की जवाबदेही को परिभाषित नहीं किया गया है।

4.6.1 न्यायाधीशों के लिये आचार–संहिता की आवश्यकता

भारत के मुख्य न्यायमूर्ति श्री कपाड़िया के अनुसार, जब हम नीति शास्त्र की बातें करते हैं तो सामान्यतः राजनेताओं, छात्रों एवं शिक्षकों आदि के विषय में नीति बनाने की बात जाती है, परन्तु मेरे अनुसार न्यायाधीशों के लिये आचार नीति होनी चाहिए..। इसी प्रकार अन्य कई न्यायमूर्तियों द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया है कि, जब समाज का प्रत्येक वर्ग अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी है तो न्यायालय को अलग करने का क्या कारण है। हमारा कार्य विधि के नियमों को लागू करवाना है तो हम भी इसके अनुसरण से बच नहीं सकते।

4.6.2 न्यायाधीशों के लिये आचार संहिता

1.**न्यायिक निर्णय पक्षपात रहित होने चाहिएः–**

न्यायालय की विश्वसनीयता के लिये सबसे जरूरी तत्व है न्यायिक निर्णयों का ईमानदार होना। इसके लिये न्यायाधीश का जीवन भी शुचितापूर्ण होना चाहिए तभी जनता का विश्वास उसमें बढ़ता है। न्यायिक निर्णय तभी पक्षपात रहित समझे जायेंगे जब वे युक्तिपूर्ण एवं न्यायपूर्ण हों।

2.अगर किसी वाद में न्यायाधीश स्वयं पक्षकार है या किसी पक्ष से उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध है तो उसे उस वाद में न्याय से परहेज करना चाहिये अर्थात किसी दूसरे न्यायाधीश को उस वाद में निर्णयाकार होना चाहिए। आचार संहिता का यह मूल तत्व है।

3.एक लैटिन उक्ति है – 'Fiat justita, ruat caelum' जिसका अर्थ है – "Let Justice be done thourgh the heaven fall" अर्थात न्याय को परिणाम की परवाह किये बिना करना चाहिए। न्यायाधीशें को इसी उक्ति का पालन करना चाहिए।

4.वाद के दोनों पक्षों को समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। वाद के पक्षों को विधि एवं साम्य के आधार पर परखा जाना चाहिए। उचित न्यायिक प्रशासन के लिये यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक पक्ष को सुनवाई का समान अवसर प्रदान किया जाये जिससे वह अपने विचारों के पक्ष में तथ्य प्रस्तुत कर सके एवं विपक्ष के तथ्यों का उत्तर प्रदान कर सके।

5.एक न्यायाधीश को न केवल व्यवसायिक जीवन में बल्कि अपने निजी जीवन में भी वाद के पक्षकारों, वकीलों आदि से भी किसी भी वाद के विचारण के समय दूरी बनाकर रखनी चाहिए। उसे अपने निजी जीवन की शुचिता भी बनाये रखनी चाहिए। उसे अपने सार्वजनिक जीवन में भी बहुत अधिक सक्रियता नहीं प्रदर्शित करनी चाहिए।

उच्चतम न्यायालय द्वारा राम प्रताप शर्मा और अन्य बनाम दयानन्द और अन्य[7] वाद में इस प्रकार का सतर्कता का नोट जारी किया था कि किसी न्यायाधीश के लिये किसी व्यापारिक या सार्वजनिक संस्थान एवं राजनीतिक दलों आदि से प्राप्त निमन्त्रण स्वीकार करना उचित नहीं है।

6.न्यायाधीशों को मीडिया आदि प्रचार माध्यमों से भी बचना चाहिए।

4.6.3 न्यायिक उत्तरदायिता का अभाव

पिछले चार दशकों के दौरान कई बार ऐसे मौके आये जब न्यायपालिका एवं विधायिका के मध्य टकराव की स्थिति बनी। सन् 1973 में केशवानन्द भारती वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368 की व्याख्या करते हुए कहा कि विधायिका ऐसा कोई संवैधानिक संशोधन नहीं कर सकती जिससे संविधान का आधारभूत ढाँचा नष्ट होता है। इस दौरान कई विधियों को न्यायालय द्वारा असंवैधानिक एवं अमान्य घोषित किया गया। अस्सी के दशक में न्यायिक सक्रियता[8] का एक नया हथियार जनहित याचिका[9] के माध्यम से सामने आया। जिसके अन्तर्गत अनुच्छेद 21 की अति उदार व्याख्या करके इसके प्रभाव क्षेत्र को बहुत विस्तृत किया

गया है। जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय ने पिछले 15 वर्षों में पर्यावरण की रक्षा के लिये अनेकों निर्णय दिये हैं। न्यायपालिका द्वारा दिल्ली में यमुना किनारे बसी बस्तियों को हटाने का आदेश दिया गया कि वे यमुना को दूषित करती हैं एवं सुचारू परिवहन के नाम पर हजारों लोगों को जो फुटपाथ पर सामान बेचकर आजीविका कमाते थे हटाने का आदेश दिया, कहने का तात्पर्य है कि जनहित याचिका के माध्यम से न्यायाधीशों द्वारा वे निर्णय दिये गये जिन्हें वह अपने विचार से लोक कल्याण के लिये सही समझते थे। परन्तु यह भी देखा गया जहाँ कारपोरेट के विकास की मसला आता है तो वहाँ पर्यावरण सुरक्षा का ध्यान नहीं रखा जाता। हाल ही के वर्षों में उच्चतम न्यायालय बेहद शक्तिशाली होकर उभरा है। इस शक्ति के लिये उसका उत्तरदायी होना बेहद जरूरी है। भ्रष्टाचार पर ज्प ;ज्तंदेचंतंदबल प्दकपंद्ध की हाल की रिपोर्ट दर्शाती है कि पुलिस के प्रशासन के बाद न्यायपालिका भ्रष्टाचार में दूसरे पायदान पर हैं।

4.6.4 न्यायिक स्वतन्त्रता का अर्थ उत्तरदायिता से मुक्ति नहीं

अपने कार्यों में निष्पक्ष होने के लिये न्यायालय की स्वतन्त्रता प्रथम शर्त है। उसे किसी राजनीतिक या आर्थिक दवाब के अन्तर्गत नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर उसके द्वारा दिये गये निर्णय प्रभावित हो सकते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि न्यायाधीश मनमाना कार्य करने के लिये स्वतन्त्र हैं सरकार के अन्य अंगों की भांति अपने कार्यों के प्रति न्यायपालिका की जवाबदेही भी जरूरी है ताकि उसकी पारदर्शिता बनी रहे एवं आम आदमी में न्याय पाने का विश्वास कम न हो।

4.6.5 विधि के प्रति उत्तरदायिता

न्यायपालिका को कानून के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये अर्थात उसके निर्णय विधि के मुताबिक होने चाहिए तानाशाही पूर्ण नहीं।

4.6.6 भ्रष्टाचार मुक्त न्यायिक प्रणाली

न्यायिक प्रणाली की पारदर्शिता में वृद्धि करनी चाहिए ताकि वह भ्रष्टाचार मुक्त हो सके। भ्रष्टाचार का मामला सामने आने पर किसी स्वतन्त्र संस्था द्वारा इसकी जांच की जानी चाहिए। न्यायाधीशों पर भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच हेतु पारित न्यायाधीश जांच अधिनियम–1968 भी अपने उद्देश्यों में कामयाब नहीं हो पाया।

4.6.7 महाअभियोग की प्रक्रिया में बदलाव की आवश्यकता

उच्च्तम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशें को महाभियोग[10] की कठिन प्रक्रिया द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है। उन्हें केवल 'सिद्ध कदाचार' या 'असमर्थता' के आधार पर ही हटाया जा सकता है। इसके लिये प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम 2/3 बहुमत जरूरी है। जो एक दुरूह प्रक्रिया है। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में अभी तक न्यायाधिपति वी0 रामास्वामी पर महाभियोग चलाया गया है।[11] परन्तु राजनीतिक कारणों के चलते जिस तरह से महाभियोग संकल्प लोकसभा में गिर गया उससे पता चलता है कि उक्त उपबंध त्रुटिपूर्ण है। अतः न्यायपालिका की प्रतिष्ठा एवं गरिमा बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि 'संविधान में आवश्यक संशोधन किया जाए ताकि भ्रष्ट न्यायाधीश अपने कृत्यों से बच न सकें।

न्यायमूर्ति एस0एम0 पंछी के मामले में भी इस उपबंध की कमियां सामने आयीं। सन् 1998 में श्री पंछी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त थे। Committee on Judicial Accountability (CJA) जो वकीलों का एक समूह है एवं न्यायाधीशों की जवाबदेही पर कार्य करता है, द्वारा उनके खिलाफ महाभियोग लाने के लिये राज्य सभा के 25 सांसदों द्वारा हस्ताक्षर लिये गये परन्तु इससे पहले कि लोकसभा के 50 सांसदों के हस्ताक्षर पूरे होते उन्हें भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्ति कर दिया गया। इसके पश्चात वस्तुतः यह नामुमकिन हो गया कि उनके महाभियोग के नोटिस पर सांसदों के हस्ताक्षर लिये जायें अतः स्पीकर के समक्ष नोटिस नहीं लाया जा सका।

उपरोक्त दोनों उदाहरण महाभियोग की प्रक्रिया में कमी की ओर ही इंगित करते हैं। जिसे दुरूस्त किया जाना समय की माँग है।

4.6.8 सूचना का अधिकार अधिनियम एवं न्यायपालिका

सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रति भी न्यायपालिका का सामान्यतः दोहरा चरित्र देखने को मिला। अधिकांश उच्च न्यायालयों में इस अधिनियम के तहत महीनों तक लोक सूचना अधिकारी (PIO) की नियुक्ति नहीं की गयी। उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार से सिफारिश की है कि न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल का निर्णय अंतिम और केन्द्रीय सूचना आयोग के लिये किसी भी स्वतन्त्र अपील का विषय नहीं होना चाहिए। भारत के मुख्य न्यायाधीश को किसी भी खुलासे से मुक्त होना चाहिए। न्यायाधीशों द्वारा आय एवं सम्पत्ति का खुलासा, या न्यायाधीशों पर किसी भी स्वतन्त्र अनुशासनिक प्राधिकारी का गठन, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता से समझौता होगा।

4.6.9 न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010

न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010 (The Judicial Standards And Accountability Bill, 2010) लोकसभा में 29 मार्च 2012 को पारित कर दिया गया। विधेयक में अधिकतम न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायधीशों की जवाबदेही बढ़ाने का प्रावधान है। इसमें किसी न्यायाधीश के दुराचार के बारे में शिकायतों की जांच के लिए एक विश्वसनीय तंत्र बनाने तथा जांच की प्रक्रिया के नियमन का भी प्रावधान किया गया है। यह विधेयक न्यायाधीश जांच अधिनियम–1968 का स्थान लेगा। न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010 में विधेयक न्यायाधीश जांच अधिनियम–1968 के कुछ प्रावधानों को यथावत रखा गया है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों के किसी न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग की शक्ति संसद के पास ही रखने का प्रावधान शामिल है।

न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010 की मंजूरी से पहले देश में कोई ऐसी विधिक व्यवस्था नहीं थी जिसके तहत सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के खिलाफ आम जनता की शिकायतों की सुनवाई हो सके। केंद्र सरकार ने न्यायाधीशों के लिए यह भी अनिवार्य करने का प्रस्ताव किया है कि वे समान अदालत में प्रैक्टिस करने वाले अधिवक्ताओं से घनिष्ठ संबंध या सामाजिक संपर्क रखने से बचें।

न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक, 2010 लोकसभा में 1 दिसंबर, 2010 को श्री एम. वीरप्पा मोइली, विधि और न्याय मंत्री (तत्कालीन) द्वारा पेश किया गया था। जिसके बाद इसे स्थायी समिति के पास भेजा गया था। संसदीय समिति ने अगस्त 2011 में अपनी सिफारिशें दी थीं। 2010 में लोकसभा में पेश इस विधेयक का मकसद न्यायाधीशों के लिए मानक और उनकी न्यायिक जवाबदेही तय तय करना है। साथ ही इसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के खिलाफ मामलों की जांच के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। यह विधेयक न्यायाधीश जांच कानून 1968 की जगह लेगा। जिसके प्रावधानों को इसमें शामिल कर लिया गया है। इसमें एक राष्ट्रीय न्यायिक निगरानी कमेटी और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में छानबीन समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है जो न्यायाधीशों के खिलाफ शिकायतों की जांच करेंगी

1.7 अधिकरण

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान के अंर्तगत दो नये अनुच्छेदों 323क और 323ख को जोड़ा गया। इसमें । इन अनुच्छेदों के अधीन संसद् को यह शक्ति प्रदान की

गयी कि विभिन्न मामलों के विनिश्चय के लिए विभ्निन प्रकार के अधिकरणों की स्थापना कर सकती है ।

4.7.1 प्रशासनिक अधिकरण :–

323.क. प्रशासनिक अधिकरण–

(1) संसद विधि द्वारा, संघ या किसी राज्य के अथवा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम के कार्यकलाप से संबंधित लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तो के संबंध में विवादों और परिवादों के प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध कर सकेगी ।

(2) खंड (1) के अधीन बनाई गई विधि–

(क) संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण और प्रत्येक राज्य के लिए अथवा दो या अधिक राज्यों के लिए एक पृथक प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना के लिए उपबंध कर सकेगी;

(ख) उक्त अधिकरणों में से प्रत्येक अधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता, शक्तियां (जिनके अंतर्गत अवमान के लिए दंड देने की शक्ति है) और प्राधिकार विनिर्दिष्ट कर सकेगी;

(ग) उक्त अधिकरणों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के लिए (जिसके अतर्गत परिसीमा के बारे में और साक्ष्य के नियमों के बारे में उपबंध हैं) उपबंध कर सकेगी;

(घ) अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता का खंड (1) में निर्दिष्ट विवादों या परिवादों के संबंध में अपवर्जन कर सकेगी;

(ड़) प्रत्येक ऐसे प्रशासनिक अधिकरण की उन मामलों के अंतरण के लिए उपबंध कर सकेगी जो ऐसे अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित हैं और जो, यदि ऐसे वाद हेतुक, जिन पर ऐसे बाद या कार्यवाहियां आधारित हैं, अधिकरण की स्थापना के पश्चात् उत्पन्न होते तो, ऐसे अधिकरण की अधिकारिता के भीतर होते;

(च) राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 371घ के खंड (3) के अधीन किए गए आदेश का निरसन या संशोधन कर सकेगी

(छ) ऐसे अनुपूरक, आनुषंगिक और परिणामिक उपबंध (जिनके अंतगर्त फीस के बारे में उपबंध हैं) अंतर्विष्ट कर सकेगी जो संसद् ऐसे अधिकरणों के प्रभावी कार्यकरण के लिए और उनके द्वारा मामलों के शीघ निपटारे के लिए और उनके आदेशों के प्रवर्तन के .लिए आवश्यक समझे।

(3) इस अनुच्छेद के उपबंध इस संविधान के किसी अन्य उपबंध में या तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।

इस अनुच्छेद के अधीन संसद् को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वह विधि द्वारा संघ एवं राज्य–सरकार के सेवकों की सेवा–शर्तों से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना कर सकती है । दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक अधिकरण की स्थापना की जा सकती है । ऐसी किसी विधि में अधिकरणों की अधिकारिता (जिसमें अवमान के लिए दण्ड देना भी शामिल है), शक्तियों और प्राधिकार और प्रक्रिया का भी विवरण होगा ।

4.8.2 अन्य विषयों के लिए अधिकरण

323ख. अन्य विषयों के लिए अधिकरण–

(1) समुचित विधान–मंडल विधि द्वारा, ऐसे विवादों, परिवादों या अपराधों के अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध कर सकेगा जो खंड (2) में विनिर्दिष्ट उन सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित हैं, जिनके संबंध में ऐसे विधान–मंडल को विधि बनाने की शक्ति है

(2) खंड (1) में निर्दिष्ट विषय निम्नलिखित हैं, अर्थात–

(क) किसीं कर का उद्ग्रहणं, निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन;

(ख) विदेशी मुद्रा, सीमाशुल्क, सीमांतों के आर–पार आयात और निर्यात;

(ग) औद्योगिक और श्रम विवाद;

(घ) अनुच्छेद 31क में यथापरिभाषित किसी संपदा या उसमें किन्हीं अधिकारों के राज्य द्वारा अर्जन या ऐसे किन्हीं अधिकारों के निर्वापन या उपातरण द्वारा या कृषि भूमि की अधिकतम सीमा द्वारा या किसी अन्य प्रकार से भूमि सुधार;

(ङ) नगर संपत्ति की अधिकतम सीमा;

(च) संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य विधान–मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचन, किंतु अनुच्छेद 239 और अनुच्छेद 239क में निर्दिष्ट विषयों को छोड़कर;

(छ) खाद्य पदार्थों का (जिनके अंतर्गत खाद्य तिलहन और तेल हैं) और ऐसे .अन्य माल का उत्पादन, उपायन, प्रदाय और वितरण, जिन्हें राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा, इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिए आवश्यक माल घोषित करे और ऐसे माल की कीमत का नियंत्रण;

(ज) किराया, उसका विनियमन और नियंत्रण तथा किराएदारी संबंधी विवाद्यक, जिनके अंतर्गत मकान मालिकों और किराएदारो के अधिकार हक, और हित हैं ।

(झ) उपखंड (क) से उपखंड (ज) में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध और उन विषयों में से किसी की बाबत फीस;

(ञ) उपखंड (क) से उपखंड (झ) में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी का आनुषंगिक.कोई विषय।

(3) खंड (1) के अधीन बनाई गई विधि–

(क) अधिकरणों के उत्क्रम की स्थापना के लिए उपबंध कर सकेगी;

(खं) उक्त अधिकरणों में से प्रत्येक अधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता, शक्तियां (जिनके अंतर्गत अवमान के लिए दंड देने की शक्ति है) और प्राधिकार विनिर्दिष्ट कर सकेगी;

(ग) उक्त अधिकरणों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के शलिए (जिसके अंतर्गत परिसीमा के बारे में और साक्ष्य के नियमों के बारे में उपबंध हैं) उपबंध कर सकेगी;

(घ) अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता का उन सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में अपवर्जन कर सकेगी जो उक्त अधिकरणों की अधिकारिता के अंतर्गत आते हैं;

(ड़) प्रत्येक ऐसे अधिकरण को उन मामलों के अंतरण के लिए उपबंध कर सकेगी जो ऐसे अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित हैं और जो, यदि ऐसे बाद हेतुक जिन पर ऐसे वाद या कार्यवाहियां आधारित हैं, अधिकरण की स्थापना के पश्चात उत्पन्न होते तो ऐसे अधिकरण की अधिकारिता के भीतर होते;

(च) ऐसे अनुपूरक, आनुषंगिक और परिणामिक उपबंध (जिनके अंतर्गत फीस के बारे में उपबंध हैं) अंतर्विष्ट कर सकेगी जो समुचित विधान–मडंल ऐसे अधिकरणों के प्रभावी कार्यकरण के लिए और उनके द्वारा मामलों के शीघ निपटारे के लिए और उनके आदेशों के प्रवर्तन के लिए आवश्यक समझे ।

(4) इस अनुच्छेद के उपबंध इस संविधान के किसी अन्य उपबंध में या तत्यमय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।

<u>**स्पष्टीकरण–**</u>

इस अनुच्छेद में, किसी विषय के संबंध में, समुचित विधान–मंडल से, यथास्थिति, संसद् या किसी राज्य का विधान–मंडल अभिप्रेत है, जो भाग 11 के उपबंधों के अनुसार ऐसे विषय के सबंध में विधि बनाने के लिए. सक्षम है। अधिनियम में संशोधन करके स्पष्ट कर दिया गया है कि उपर्युक्त विषयों पर अनु0 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता बनी रहेगी । यह मूल अधिकार है ।

4.8 प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

प्रशासनिक न्या्याधिकरण अधिनियम के 1985 में अधिनियमन ने पीड़ित सरकारी कर्मचारियों को न्याय देने के क्षेत्र में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। प्रशासनिक न्याकयाधिकरण का जन्म संविधान के अनुच्छेद 323क से हुआ है। जिसके अंतर्गत केंद्र सरकार को, केंद्र और राज्यों के कार्य संचालन के संबंध में लोक सेवा और पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तों

के संबंध में विवादों और शिकायतों के निपटारे हेतु संसद द्वारा पारित अधिनियम के अंतर्गत प्रशासनिक न्यायिाधिकरण स्थापित करने की शक्ति प्राप्त है। प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम 1985 में निहित प्रावधानों के अनुसरण में, स्थापित प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को इसके अंतर्गत आने वाले कार्मिकों की सेवा संबंधी मामलों पर मूल क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय के 18 मार्च 1977 के निर्णय के परिणाम स्वरूप, किसी प्रशासनिक न्यायाधिकरण के आदेश के खिलाफ संबंधित उच्चं न्यायालय में अपील की जाएगी।
प्रशासनिक न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले वादों के केवल सेवा संबंधी मामलों पर है। इस अधिनियम की प्रक्रियात्मक सरलता का सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके समक्ष शिकायतकर्ता स्वयं अपनी पैरवी कर सकता है। शासन अपने मामले विभागीय अधिकारियों अथवा वकील के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार न्यायाधिकरण का उद्देश्य पीड़ितों को तीव्र और सस्ता न्याय प्रदान करना है।
इस अधिनियम में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (कैट) और राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण स्थापित करने का प्रावधान है। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना नवम्बर 1985 में हुई थी। वर्तमान में इसकी 17 नियमित न्यायपीठ हैं जिनमें से 15 उच्च न्यायालयों के मुख्यालयों में कार्यरत हैं और शेष दो जयपुर और लखनऊ में। ये न्यायपीठ उच्च न्यानयालय की अन्य पीठिकाओं पर भी चल बैठकें करते हैं। इस न्यायाधिकरण में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यं होते हैं। सदस्य् न्यायिक और प्रशासनिक धाराओं से लिए जाते हैं ताकि न्यायाधिकरण को विधिक और प्रशासनिक दोनों हो क्षेत्रों की विशेषज्ञता प्राप्ति हो सके।

4.8.1 संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार

1. यह अधिनियम प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985. कहा जा सकेगा। इस अधिनियम का विस्तार सिवाय जम्मू और कश्मीर के, सम्पूर्ण भारत मे है।
2. इस अधिनियम के प्रावधान निम्न पर लागू नहीं होगे—
(क) नौसेना, सेना या वायु सेना के या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बलों के किसी भी सदस्य;
(ख) Industrial Dispute Act, 1947 के प्रावधानों द्वारा शासित व्यक्तियों के संबंध में;
(ग) उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी भी अधिकारी या कर्मचारी;
(घ) संसद् के किसी सदन के सचिवालय के कर्मचारी या किसी राज्य विधानमंडल के सचिवालय के कर्मचारी या संघ राज्यक्षेत्र के मामले में अगर उसकी अपना विधानमंडल है तो उसके सचिवालय के कर्मचारी ।

4.8.2 न्यायाधिकरण और न्यायपीठों का गठन

प्रत्येक अधिकरण में एक अध्यक्ष और इतने उपाध्यक्ष और न्यायिक और प्रशासनिक सदस्य होंगे जितना कि समुचित सरकार उचित समझे और इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन अधिकरण क्षेत्राधिकार और शक्तियों का उसके न्यायपीठों द्वारा प्रयोग किया जा सकेगा।[12]

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता[13]–

(1) एक व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य नहीं होगा जब तक कि वह –

(क) एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश, है, या रहा है; या

(ख) कम से कम दो साल के लिए, उपाध्यक्ष का पद धारण किया हो; या

(ग) कम से कम दो साल के लिए, केन्दीय सरकार का सचिव रहा हो या सचिव के बराबर वेतन पाने वाले किसी पद पर रहा हो ।

(2) एक व्यक्ति को उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य नहीं समझा जाएगा जब तक कि वह –

(क) एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहा हो;या

(ख) कम से कम दो साल के लिए, केन्दीय सरकार का सचिव रहा हो या सचिव के बराबर वेतन पाने वाले किसी पद पर रहा हो ।

(ग) कम से कम नहीं तीन साल, की अवधि के लिए एक सदस्य के रूप में पद पर आसीन रहा हो।

(3) एक व्यक्ति सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य नहीं समझा जाएगा जब तक कि वह–

(क) एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहा हो या अर्हता रखता हो; या

(ख) कम से कम दो साल के लिए, केन्दीय सरकार का अतिरिक्त सचिव रहा हो या अतिरिक्त सचिव के बराबर वेतन पाने वाले किसी पद पर रहा हो ।

(ग) कम से कम तीन साल के लिए, भारत सरकार के एक संयुक्त सचिव रहा हो या संयुक्त सचिव के बराबर वेतन पाने वाले किसी पद पर रहा हो ।

(4) केंद्रीय प्रशासनिक पंचाट के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और दूसरे सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा।

(5) राज्य के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और दूसरे सदस्यों की नियुक्ति संबंधित राज्य के राज्यपाल के साथ परामर्श के बाद राष्ट्रपति द्वारा की जाएगीं

(6) एक संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकारों के बीच समझौते की शर्तों के अधीन (धारा 4 की उपधारा (3) के अंतर्गत केंन्द्र एवं राज्यों के गजट में प्रकाशित) संबंधित राज्यों के राज्यपालों. के साथ परामर्श के बाद राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

4.8.3 पदावधि [14]

अधिकरण के सदस्य 5 वर्ष तक अपना पद धारण करेंगे या जब तक कि वह,
(क) अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के मामले में 65 वर्ष और
(ख) अन्य सदस्यों के मामले में 62 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है।
अधिकरण से सदस्यगण अपने पद से राष्ट्पति को लिख कर त्यागपत्र दे सकते हैं । उन्हें उनके पद से राष्ट्पति के आदेश द्वारा सिद्ध कदाचार और अक्षमता के आधार पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के परीक्षण के पश्चात् हटाया जायेगा । उन्हें उनके ऊपर लगाये गये आरोपों को संसूचित किया जायेगा और सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जायेगा । केन्दीय सरकार उनके विरुद्ध आरोपों की जाँच की प्रक्रिया को नियम बनाकर विहित करेगी।[15]

4.8.4 अधिकरण का क्षेत्राधिकार, शक्तियां, और प्राधिकार

केन्द्रीय अधिकरण[16] केन्द्रीय सरकार के सेवकों की सेवा शर्तों से संबंधित सभी मामलों में सभी न्यायालयों की अधिकारिता, शक्तियाँ और प्राधिकार, सिवाय उच्चतम न्यायालय का प्रयोग करेगा
(क) केन्द्र से संबंधित भर्ती और भर्ती के विषय से संबंधित मामले
(ख) केन्द्रीय सेवा से संबंधित मामले
(ग) सभी सेवाओं के विषय में संघ के मामलों के संबंध में सेवा से संबंधित मामले
राज्य अधिकरण[17] राज्य सरकार के सेवकों की सेवा शर्तों से संबंधित सभी मामलों में सभी न्यायालयों की अधिकारिता, शक्तियाँ और प्राधिकार, सिवाय उच्चतम न्यायालय का प्रयोग करेगा
एस० पी० सम्पत कुमार बनाम भारत संघ[18] के मामले में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि वह सरकारी सेवकों के मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता को समास करके न्यायिक पुनर्विलोकन को नष्ट करता है जो संविधान का 'आधारभूत ढाँचा' है । उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम को विधिमान्य घोषित किया और यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को पूर्णरूपेण समाप्त नहीं किया गया है और उसे अनु0 32 और 136के अधीन अक्षुण्ण रखा गया है । न्यायालय ने धारा 6 (1) (स) को असंवैधानिक घोषित कर दिया क्योंकि इसके अन्तर्गत सरकार को अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और प्रशासनिक सदस्य की नियुक्ति के मामले में अनियन्त्रित शक्ति प्रदान की गई थी । उक्त सदस्यों की नियुक्तियाँ भारत के न्यायाधिपति के परामर्श से ही की जा सकती हैं जो अर्थपूर्ण और प्रभावी होना चाहिए[19]।
एल० चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ[20] में न्यायालय ने अपने पूर्व के निर्णय को उलट दिया। उच्चतम न्यायालय के सात सदस्यीय संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से यह अभिनिर्धारित किया कि

अनु0 323क का खण्ड 2 (घ) और अनु0 323ख का खण्ड 3 (घ) जिस सीमा तक कि अनु0 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों तथा अनु0 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता समाप्त करते हैं, असवैधानिक है क्योंकि वे न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को नष्ट करते हैं जो संविधान का आधारभूत ढाँचा है न्यायालय ने कहा कि अन्य न्यायालय और अभिकरण अनु0 226, 227 और अनु0 32 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए पूरक भूमिका निभा सकते हैं । कित्त इन अभिकरणों के सभी निर्णय उच्च न्यायालयों की खण्ड पीठ की जाँच के अधीन होंगे । अभिकरण प्रथम न्यायालय की भांति कार्य करते रहेंगे, अतः वादकारी सीधे उच्च न्यायालय नहीं जा सकते हैं और अधिनियमित विधानों की विधिमान्यता की जाँच कर सकते हैं, अतः केन्दीय अभिकरण की धारा 5 (6) संवैधानिक है । प्रशासनिक अधिकरणों में सदस्यों की नियुक्ति के प्रश्न पर न्यायालय ने कहा कि केन्द्र सरकार को विधि आयोग और मलीयाथ समिति जैसी विशेषज्ञ समितियों की सिफारिशों के आधार पर कार्यवाही करना चाहिए । सभी अभिकरणों के प्रशासन को देखने के लिए एवं अभिकरणों के कार्यों की देखभाल करने के लिए विधि मंत्रालय के तहत एक माडल मंत्रिमण्डल की स्थापना की जानी चाहिए ।

मलीयाथ समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया है कि अभिकरणों की कार्य–प्रणाली से जनता के मन में इनके प्रति विश्वास की भावना नहीं पैदा हुई है क्योंकि न्यायिक दृष्टिकोण में सक्षमता और निष्पक्षता का इनमें अभाव रहा है । न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि उसके निर्णय का प्रभाव भविष्यलक्षी होगा अर्थात सभी पहले के निर्णीत फैसले विधिमान्य बने रहेंगे । इस निर्णय का प्रभाव यह पड़ा है कि उच्च न्यायालयों ने अपनी अधिकारिता को पुनः प्राप्त कर लिया है । पीड़ित व्यक्तियों को एक और वैकल्पिक उपचार मिल गया है । पहले अभिकरण में हारने के पश्चात् पीड़ित व्यक्ति केवल अनु0 32 एवं 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता था अब वह पहले उच्च न्यायालय में जा सकता है। इस प्रकार एक पीड़ित व्यक्ति को एक और उपचार मिल गया है और वह अभिकरण के निर्णय के पश्चात् उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है और तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय में जा सकता है ।

निर्देश

1. डा0 जे0एन0 पाण्डे, भारत का संविधान, 44वां संस्करण पृष्ठ 441

2.ए0आई0आर0 1955 एस0सी0 549

3.डा0 जे0एन0 पाण्डे, भारत का संविधान, 44वाँ संस्करण पृष्ठ 442

4.अनुच्छेद 148–151

5.अनुच्छेद 151

6.ए0आइ0आर0–1997 एस0सी0 1125

7.1977 ए0आई0आर0 809 एस0सी0 आर0–(1) 242, 1977 एस0सी0सी0

8.–9.जनहित याचिका एवं न्यायिक सक्रियता के बारे में पिछली ईकाइयों 9 वं 10 में विस्तारपूर्वक बताया गया है।

10.अनुच्छेद 124

11.देखें ईकाई– 11

12. धारा 5, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

13.धारा 6, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

14.धारा 8, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

15धारा 9, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

16.धारा 14, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

17.धारा 15, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985

18.(1987) 1 एस0 सी0 सी0 124

19.डा0 जे0एन0 पाण्डे, भारत का संविधान, 44वाँ संस्करण पृष्ठ 615

20.ए0आइ0आर0–1997 एस0सी0 1125

अभ्यास प्रश्नः–

रिक्त स्थानः–

1.नियन्त्रक–महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जांच .... द्वारा की जाती है।

2.......................... की स्थापना ब्रिटिश एक्सपेन्डीचर कमेटी की तर्ज पर की गयी है।

3.अनुच्छेद .... के अनुसार मन्त्रिमण्डल .... के प्रति उत्तरदायी होता है।

4.न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का .... है।

5.............................. अनन्य रूप से लोकसभा की समिति है।

सत्य/असत्य कथनः–

6.उच्च एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को पदच्युत करने की प्रक्रिया महाभियोग कहलाती है। सत्य/असत्य

7.42वें संविधान संशोधन, अधिनियम द्वारा संविधान में अनुच्छेद 323 क एवं 323 ख जोड़े गये। सत्य/असत्य

8.एल0 चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने एस0पी0 सम्पत कुमार बनाम भारत संघ में दिये निर्णय को दोहराया है। सत्य/असत्य

9.अधिकरणों को सौंपे जाने वाले विषयों पर उच्च न्यायालय की भी समान अधिकारिता है। सत्य/असत्य

10.1 नवम्बर, 1985 में विभिन्न राज्यों में प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना की गई है। सत्य/असत्य

4.9 सारांश

किसी दायित्व के निर्वहन की जिम्मेदारी उत्तरदायिता भी साथ लाती है। किसी भी लोकतन्त्रात्मक सरकार के तीनों अंग–कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं विधायिका होते हैं। विधायिका नीति निर्माण का कार्य करती है एवं कार्यपालिका का कार्य है उन नीतियों का क्रियान्वयन। अतः कार्यपालिका अपने कार्यों के लिये विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। संसदीय प्रणाली की सरकार में तीनों अंग पूरी तरह से पृथक नहीं होते, बल्कि एक दूसरे से संतुलन बनाकर रखते हुए अपने कार्यों को अंजाम देते हैं। अर्थात सभी एक दूसरे के प्रति एवं समन्वित रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संसदीय प्रणाली में राजनीतिक कार्यकारिणी अर्थात मंत्रिपरिषद जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। संविधान में स्पष्ट उपबन्ध (अनुच्छेद 75) द्वारा इसका प्रावधान किया गया है। मंत्रिपरिषद में शामिल प्रत्येक मंत्री अपने विभाग द्वारा किये गये कार्यों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तदायी होता है। भारत की संचित निधि में से निर्गत पूंजियां जो प्रत्येक विभाग को विकास आदि कार्यों के लिये आवंटित की जाती है, उसका हिसाब–किताब एवं लेखा–परीक्षा (Audit) का कार्य भारत के नियन्त्रक–महालेखा–परीक्षक द्वारा किया जाता है। यह एक संवैधानिक संस्था है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। अनेक संसदीय समितियां जैसे– लोक लेखा समिति, आकलन समिति, सार्वजनिक उपक्रम समिति आदि वित्तीय मामलों में संसदीय नियन्त्रण स्थापित करने में मददगार होती है। इसके अलावा न्यायिक पुनर्विलोकन, न्यायिक अपील आदि द्वारा न्यायालय के माध्यम से भी कार्यकारिणी उत्तरदायित्व का निर्धारण किया जा सकता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत संविधान के संरक्षक की भूमिका न्यायपालिका को सौंपी गयी है, संवैधानिक उपबन्धों की व्याख्या का अंतिम निर्धारण उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है। राजनीतिक चरित्र एवं कार्यपालिका में आयी गिरावट के साथ भारत का उच्चतम न्यायालय अधिक शक्तिशाली होकर उभरा है परन्तु उसकी जवाबदेही तय करने सम्बन्धी स्पष्ट प्रावधानों का सर्वथा अभाव है। एक लोकतन्त्र में कोई भी अपने कार्यों के प्रति जवाबदेही से नहीं बच सकता। न्यायिक स्वतन्त्रता के नाम पर न्यायपालिका अपनी उत्तरदायिता से बच नहीं सकती, वो भी ऐसे समय में जब ट्रांसपेरेन्सी इंडिया की रिपोर्ट में न्यायपालिका को भ्रष्टाचार के क्रम में पुलिस प्रशासन के बाद दूसरे पायदान पर स्थान दिया गया है। न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक–2010 लोकसभा में 29 मार्च 2012 को पारित कर दिया गया। 2010 में लोकसभा में पेश इस विधेयक का मकसद न्यायाधीशों के लिए मानक और उनकी न्यायिक जवाबदेही तय तय करना है। साथ ही इसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के खिलाफ मामलों की जांच के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। यह विधेयक न्यायाधीश जांच कानून 1968 की जगह लेगा। जिसके प्रावधानों को इसमें शामिल कर लिया गया है। इसमें एक राष्ट्रीय न्यायिक निगरानी कमेटी और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में छानबीन समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है जो न्यायाधीशों के खिलाफ शिकायतों की जांच करेंगी।

संविधान के 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान के अन्तर्गत दो नये अनुच्छेदों 323क एवं 323ख को जोड़ा गया। इनके द्वारा संघ एवं राज्यों में प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना की गयी है। अनुच्छेद 323क, यह उपबन्धित करता है कि संघ या किसी राज्य या भारत राज्य के भीतर सरकार के नियन्त्रण के अधीन किसी निगम के कार्यों से सम्बद्ध लोक–सेवाओं और पदों के लिए तथा उनकी सेवा शर्तों से सम्बन्धित विवादों और

परिवादों के न्याय–निर्णयन या विचारण के लिये संसद विधि द्वारा प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध कर सकेगी। अनुच्छेद 323 ख के अधीन समुचित विधान मण्डल खण्ड (2) में उल्लिखित विषयों से सम्बन्धित विवादों के लिए अधिकरणों की स्थापना का उपबन्ध कर सकेगी। संसद विधि द्वारा अधिकरणों की अधिकारिता शक्तियां तथा उनके द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया आदि विहित करेगी। एल चन्द कुमार बनाम भारत संघ में उच्चतम न्यायालय के सात सदस्यीय संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से यह निर्धारित किया कि अनु0 32 एवं अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन क्रमशः उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को नष्ट नहीं किया जा सकता क्योंकि वह संविधान का आधारभूत ढाँचा है। प्रशासनिक अधिकरण अपने उद्देश्य में पूरी तरह से कामयाब नहीं हो पाए हैं क्योंकि इनकी कार्यप्रणाली जनता का विश्वास नहीं जीत पायी है। इनके न्यायिक दृष्टिकोण में सक्षमता और निष्पक्षता का अभाव रहा है। (मलीयाथ समिति का प्रतिवेदन)

4.10 महत्वपूर्ण शब्दावलीः–

सामूहिक उत्तरदायित्वः– मंत्रिपरिषद, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है। उसके निर्णय सामान्यतः मंत्रिपरिषद की सामूहिक बैठकों में सम्मिलित रूप से लिये जाते हैं। इसीलिये उसकी लोकसभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायिता बनती है।

महाभियोग :– किसी उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाने की दुरूह प्रक्रिया।

समुचित या उपयुक्त सरकार :– का अर्थ है, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण या एक संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण के संबंध में केन्द्रीय सरकार एवं राज्य प्रशासनिक ट्रिब्यूनल के संबंध में राज्य सरकार।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.लोक लेखा समिति 2.आकलन समिति 3.75, लोकसभा 4.आधार भूत ढांचा 5.आकलन समिति 6.सत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.असत्य 10.सत्य

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी

2.भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, संस्करण 2008

3.www.egyanbonh.ac.in

4.indiankanoon.org/doc/1552242

5. ऐबतपइकण्बवउ

6.legalserviceindia.com

7.www.articlebase.com

8. http://bharat.gov.in/knowindia/profile.php?id=36

9.http://www.jagranjosh.com/current-affairs/

10- http://www.amarujala.com/national/Judicial-Accountability-Bill-approved-by-Parliament-25054.html

4.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

1.दुर्गा दास वसु, शार्टर कन्स्टीयूशन ऑफ इंडिया।

2.डा0 जे0जे0 आर उपाध्याय, भारत का संविधान

3.वसु आचार्य दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुदण 2009, लक्सिस नेक्सिस बटरवर्थ वाधवा नागपुर।

4.14 अभ्यास प्रश्न

1.मंत्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व से आप क्या समझते हैं? क्या मंत्रियों की व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी होता है?

2.भारत की न्यायपालिका में उत्तरदायिता के अभाव पर निबंध लिखिए।

3.उत्तरदायित्व की अवधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

4.प्रशासनिक अधिकरणों का गठन किस प्रकार किया जाता है? अधिकरणों की अधिकारिता का आलोचनात्मक परीक्षण करें।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–4. लोकतान्त्रिक प्रक्रिया

इकाई–1.राजनीति–अपराधी–व्यापार–गठजोड

इकाई संरचना

1.1प्रस्तावना

1.2 उद्‌देश्य

1.3 अपराध एवं व्यापार जगत के साथ राजनीति का गठबंधन

1.4 न्याय प्रणाली एवं विधि की अक्षमता

1.5 राजनीति का अपराधीकरण

1.5.1 अपराधीकरण के कारण

1.6 व्यापार–राजनीति गठजोड़– अर्थव्यवस्था के लिये घातक

1.7 सार्थक विधिक प्रयास

1.7.1 वोहरा कमेटी

1.7.2 उच्चतम न्यायालय द्वारा फैसला

1.7.3 सूचना का अधिकार अधिनियम

1.7.4 जन लोकपाल बिल

1.8 वर्तमान लोकसभा (15वीं) के आंकड़े

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.12 संदर्भ ग्रन्थ

1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत में चुनाव धन और बाहुबल से पूरी तरह प्रभावित हो चुका है। जिससे आगे चुनावी राजनीति के अपराधीरकण का मार्ग प्रशस्त हुआ। 14वीं लोकसभा में जहॉ अपराधिक पृष्ठाभूमि के कुल 128 सांसद पहुँचे थे वहीं 15वीं लोकसभा में इनका आंकड़ा बढ़कर 150 तक पहुँच गया है। जो एक चिंता का विषय है। यह राजनीतिक दलों द्वारा अलोकतान्त्रिक एवं निरंकुश तरीके से प्रत्याशियों के चुनाव को रेखांकित करता है। उम्मीदवारों द्वारा जीत की सुनिश्चितता को देखते हुए धन एवं बाहुबल के बदले ईमानदारी को नजरअंदाज किया जाता है क्योंकि हमारी संसदीय प्रणाली में संख्याबल का महत्व है। जिस पार्टी के सबसे अधिक सांसद जीतकर आते हैं उसी की सरकार बनती है।

राजनीति एवं अपराधी के बीच गठबंधन दो अर्थों में देखा जा सकता है। संकीर्ण रूप में यह सीधे विधानमण्डलों में एवं संसद में अपराधियों के प्रवेश को संदर्भित करता है वहीं व्यापक अर्थों में किसी भी राजनीतिक दल एवं प्रत्याशी को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वित्तपोषण कर राजनीति में हस्तक्षेप को संदर्भित करता है। इसके अन्तर्गत किसी चुनाव को जीतने हेतु समाज विरोधी जनशक्ति, मतदान केन्द्रों पर कब्जा, विरोधी उम्मीदवार की अनुबंध हत्या आदि भी आतें है। लगभग सभी राजनीतिक दल चाहे वे राष्ट्रीय स्तर के हों या क्षेत्रीय स्तर के, चुनाव जीतने के लिय अपराधियों का सहारा किसी न किसी रूप में लेते हैं। शुरू में अपराधियों ने बाहर से समर्थन प्रदान किया परन्तु फिर उनके हौंसले इतने बढ़ गये कि वे खुलकर सामने आकर चुनाव लड़ने लगे और जीतकर सरकार में मंत्री भी बन बैठे। जिन्हें मीडिया एवं राजनीतिक भाषा में दागी मंत्रियों की संज्ञा दी जाती है।

बड़े व्यापारिक घराने भी अब पर्दे के पीछे से राजनीति न करके सामने आकर ताल ठोंकने लगे हैं वे सीधे चुनाव न लड़कर राजनीतिक दलों के माध्यम से राज्यसभा में सांसद चुनकर पहुँचने लगे हैं एवं अपने हितों को साधते हैं। इस तरह व्यापारी वर्ग, अपराधी एवं राजनीति का गठजोड़ खूब फल–फूल रहा है जो हमारे लोकतान्त्रिक मूल्यों के लिये गम्भीर चुनौती बन गया है।

1.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के पश्चात आप समझ सकेंगे–

- राजनीति का अपराधीकरण

- व्यापार, अपराधी एवं राजनीतिक का गठजोड़
- इस गठजोड़ के मुख्य कारक
- गठजोड़ को उजागर करने एवं रोकने के प्रयास

1.3 अपराध एवं व्यापार जगत के साथ राजनीति का गठबंधनः—

राजनीति जो कभी समाजसेवियों का कार्य माना जाता था वह आज अपराध और व्यापारिक वर्ग (बड़े घरानों) के साथ इस तरह से मिश्रित हो गया है कि अपराधी और नेता एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं। 2जी स्प्रेक्टम घोटाला व्यापारिक वर्ग का राजनीति से नापाक गठजोड़ का ही परिणाम है। अगर गिनने बैठे तो कामवेल्थ घोटाला, आदर्श सोसाइटी घोटाला, चारा घोटाला आदि एक ऐसी फेरहिस्त सामने आयेगी जिसका कोई अन्त ही नजर नहीं आयेगा।

इस समस्या की अगर तह में जायें तो वोट की राजनीति सर्वोपरि कारण नजर आयेगा। भारत के क्षेत्र को राज्यवार चुनाव क्षेत्रों में बांटा गया है। संसदीय प्रणाली में जीतने वाले उम्मीदवार को अपने चुनाव क्षेत्र में सबसे अधिक मतों की आवश्यकता होती है एवं वह जीतने के उपरान्त संसद या संबंधित राज्य की विधानसभा का सदस्य नियुक्ति किया जाता है। अर्थात चुनाव केवल संख्या का ही खेल है, चाहे जिस भी तरीके से संख्या बल अर्जित किया जाये यह अब गौण विषय बन चुका है। इसी संख्या के खेल ने अपराध एवं व्यापारिक जगत को राजनीति से जोड़ दिया क्योंकि आज किसी उम्मीदवार को जीतने के लिये सेवाभाव नहीं बल्कि रूपया और ताकत चाहिए जो उसे उपरोक्त दोनों स्रोतों से ही प्राप्त हो सकती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात केन्द्रीयकरण की नीति के कारण लाइसेंस एवं कोटा प्रणाली पर जोर दिया गया। लालफीताशाही के कारण व्यापारिक वर्ग को व्यापार की स्वीकृति एक अनुमति प्राप्त करने में बहुत समय लग जाता था। जिन अधिकारियों के पास इससे सम्बन्धित शक्ति थी वे अपनी शक्ति का बेजा इस्तेमाल करने लगे जिससे भ्रष्टाचार को हवा पानी मिला।

सन् 1992 के बाद भारत की आर्थिक नीति में एक बड़ा परिवर्तन हुआ एवं शनै—शनैः परमिट एवं लाइसेंस राज का खात्मा किया गया। समाजवादी व्यवस्था के तहत ही हम पूंजीवादी आर्थिक नीति की ओर बढ़े, परन्तु जैसे—जैसे बड़े अन्तराष्ट्रीय व्यापारिक घरानों को देश में प्रवेश दिया गया वैसे ही रूपये का खेल छोटे खिलाड़ियों के हाथ से निकलकर बड़े खिलाड़ियों के पास चला गया और भ्रष्टाचार क्रमशः समाप्त होने के बजाय और विकराल रूप धारण करता गया। ऐसे समय में न्यायपालिका की शुचिता, जनहित याचिकाओं एवं सूचना का अधिकार अधिनियम ने इस बेलगाम भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के साथ इन घोटालों को प्रकाश में भी लाने का कार्य किया एवं न्यायपालिका की सक्रियता के कारण ही प्रधानमंत्री एवं केन्द्रीय

मन्त्रियों को भ्रष्टाचार के आरोपों के तहत सुनवाई से दो–चार होना पड़ा। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) ने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) एवं सुखराम मामले में सराहनीय काय किया अब दूरभाष, गैस कनेक्शन एवं हाल ही में पेट्रोल पम्प के आवंटन में सांसदों का स्वविवेकाधिकार कोटा समाप्त कर दिया है। जो भ्रष्टाचार के बेलगाम घोड़े पर लगाम लगाने की दिशा में एक कारगर कदम है। चुनाव को एन केन प्रकारेण जीतना आज एक मात्र ध्येय हो गया है। इसी कारण ने अपराध और व्यापार का राजनीति से गठबंधन को और मजबूत किया है। राजनेताओं को चुनाव लड़ने हेतु धन की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति वे अज्ञात स्रोतों से करते हैं एवं चुनाव जीतने के पश्चात वे उन स्रोतों के गैरकानूनी कार्य भी करते हैं। यही सबसे मुख्य समस्या है जिससे आज देश को दो–चार होना पड़ रहा है। जब तक यह नापाक गठजोड़ नहीं टूटेगा ये भ्रष्ट आचरण जारी रहेगा जो हमारी लोकतान्त्रिक संस्थाओं एवं उनके क्रियाकलापों पर कुठाराघात करता रहेगा। प्रारम्भ में इस गठजोड़ के तहत राजनेता अपराधियों की ताकत का इस्तेमाल चुनाव को प्रभावित करने के लिये करते थे, परन्तु अपराधी अब सामने आकर स्वयं चुनाव लड़ने लगे हैं और अनुचित साधनों द्वारा चुनाव जीतने में अपनी पूरी ताकत झोंक देते हैं। जिसके कारण मतदान केन्द्रों पर कब्जा, फर्जी मतदान एवं मतपेटियों को बदलना आम बात हो गयी है। सन 1993 में भारत सरकार द्वारा श्री एन0एन0 वोहरा (मन्त्रीमण्डलीय सचिव) को अध्यक्ष बनाते हुए एक कमेटी का गठन किया जिसका कार्य था उन अपराध सिंडीकेट/माफिया संस्थाओं से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित करना जिनका राजनेताओं के साथ सम्बन्ध है और जिन्हें सरकारी पदाधिकारियों एवं राजनेताओं का संरक्षण प्राप्त है। यह मुम्बई सीरियल ब्लास्ट के बाद किया गया जो अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वन्स के बाद हुआ था एवं जिसमें अन्डरवर्ल्ड डॉन की लिप्तता सामने आयी थी जिनमें से एक भारत के बाहर भी था। कमेटी द्वारा रिसर्च एवं एनालिसिस विंग (RAW) के सचिव की रिपोर्ट, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों के डाइरेक्टर के प्रतिवेदन एवं इंटेलीजेंस ब्यूरो (IB) की रिपोर्ट का मूल्यांकन किया गया एवं अनेक उपाय माफिया, राजनेताओं एवं नौकरशाह के अपराधिक गठजोड़ को तोड़ने के सुझाये। हालांकि कमेटी की रिपोर्ट में ऐसी कोई बात नहीं थी जो पहले प्रकाश में न आयी हो, न ही इस कमेटी के द्वारा कोई ठोस निष्कर्ष निकाला गया परन्तु इसके द्वारा इस नापाक गठजोड़ को सबकी जानकारी में लाने का एक सार्थक प्रयास किया गया। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रतिवेदन के अनुसार अपराध सिंडीकेट पूरे भारतवर्ष में अपने आप में एक कानून बन गया है। यहाँ तक कि छोटे गाँवों और शहरों में भी अपराधिक ताकतों का बोलबाला हो गया है एवं उनके खिलाफ कोई आवाज उठाने की हिम्मत नहीं कर पाता है। भाड़े के हत्यारे इन संस्थाओं का हिस्सा बन गये हैं। अपराधिक संघों, पुलिस, नौकरशाह एवं राजनेताओं का यह गठजोड़ देश के अधिकांश हिस्सों में जाहिर हो चुका है।

1.4 न्यायप्रणाली एवं विधि की अक्षमता

वर्तमान न्याय प्रणाली उन अपराधों एवं व्यक्तिगत अपराधियों से निबटने में अक्षम हैं जो माफियाओं की क्रियाविधियों से सम्बन्धित हैं। आर्थिक अपराधों के लिये भी कोई कारगर विधि वर्तमान में नहीं है। माफिया क्रियाकलापों द्वारा जबरन हथियाई गयी जमीनों से सम्बन्धित अपराधों से निपटने में भी दुस्तर कानूनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन अपराधों के सम्बन्ध में हमारे कानून या तो उस समय के हैं जिस समय इस प्रकार के अपराध नहीं थे और अगर है भी तो वे इतने कमजोर हैं कि चाहकर भी पुलिस एवं न्यायप्रणाली इन अपराधों के खिलाफ कोई ठोस कदम नहीं उठा पाती एवं उन कमजोर कानूनों का सहारा लेकर अपराधी आसानी से पुलिस एवं न्याय को चकमा दे जाते हैं।

1.5 राजनीति का अपराधीकरण

आज कड़वी सच्चाई यह है कि स्वतन्त्रता के साठ साल बाद भी आम आदमी का जीवन अंग्रेज़ी हुकूमत के समय से भी और दूभर हो गया है। राजनीति, अपराध एवं व्यापार के अनैतिक गठजोड़ ने सबसे अधिक नुकसान हमारे लोकतान्त्रिक मूल्यों का किया है। लगभग 20 प्रतिशत सांसदों के खिलाफ कोई न कोई अपराधिक मामला दर्ज है परन्तु आज तक किसी एक को भी सजा नहीं हुई है। अगर छोटी अदालतें ऐसा साहस कर भी लेती हैं तो बड़ी अदालतों से वे बाइज्जत बरी हो जाते हैं। आर्थिक अपराधों से निबटने में सक्षम जनलोकपाल बिल पिछले 4 दशकों से संसद में लंबित है। 'हमाम में सब नंगे' वाली कहावत को चरितार्थ करते हमारे राजनेताओं में इतना भी साहस नहीं है कि इस अधिनियम के लिये आवश्यक समर्थन जुटा पाये। इस अनुचित एवं अनैतिक गठजोड़ के मुख्य तत्व हैंः–

1–बाहुबल – चुनाव चाहे लोकसभा के हों, विधानसभा के या पंचायत के सभी जगह बाहुबलियों का ही बोलबाला है।

2–धनबल– चुनाव आज दिन पर दिन खर्चीले होते जा रहे हैं। धन का उपयोग बढ़ता ही जा रहा है। सच्चे अर्थो में समाजसेवी, जिसके पास पर्याप्त रूपया नहीं है चुनाव लड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

1.51 अपराधीकरण के कारण

1–**वोट बैंकः–**

चुनाव जीतना चूँकि संख्या का खेल है। इसीलिये सभी उम्मीदवार चाहे वे किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बन्धित हों या स्वतन्त्र उम्मीदवार चुनाव जीतने के लिये मत खरीदने से लेकर अन्य गैरकानूनी उपाय करने से भी नहीं चूकते हैं।

2–**भ्रष्टाचारः–**

प्रत्येक चुनाव में राजनीतिक पार्टियाँ कुछ अपराधियों को चुनाव लड़ने के लिये उम्मीदवार घोषित करती है। आम जनता मत देने के लिये उम्मीदवार को नहीं बल्कि पार्टी को चुनती है चाहे उसने किसी अपराधी को ही अपना उम्मीदवार घोषित किया हो।

3–**निर्वाचन आयोग की कार्यप्रणाली में कमियाँः–**

हाल में हुए सुधारों के बावजूद निर्वाचन प्रणाली में कई खामियाँ हैं, अगर उम्मीदवार के अपराधिक रिकार्ड के विषय में जानकारी सार्वजनिक रूप से उपलब्ध करायी जाये तो मतदाओं को अपने उम्मीदवारों के बारे में जानकारी होगी जिससे वह मतदान के विषय में सही निर्णय ले पायेंगे।

1.6 व्यापार – राजनीति गठजोड़– अर्थव्यवस्था के लिये घातक

व्यापार और राजनीति का गठजोड़ देश की अर्थव्यवस्था को बहुत हानि पहुँचा रहा है। आये दिन नये घोटालों के उजागर होने से जहॉ देश की राजनीति में उबाल आया हुआ वहीं दूसरी ओर सरकारी खजाने को अरबों–खरबों रूपयों का चूना लगा है। देश की तरक्की को एक तरह से विराम सा लग गया है। हाल ही में कर्नाटक में उजागर लौह–अयस्क खनन सम्बन्धी घोटाला जिसमें रेड्डी बंधुओं का नापाक व्यापारिक – राजनीति गठजोड़ उभर कर सामने आया। 2जी स्प्रेक्ट्रम घोटाला, जहाँ रिश्वत लेकर सस्ते में लाइसेंस व्यापारिक हस्तियों को दिये गये, स्टाम्प पेपर घोटाला आदि एक लम्बी फेहरिस्त है। जहाँ व्यापारिक हस्तियों को फायदा पहुँचाने के लिये या तो सरकारी नियमों की अनदेखी की गयी या उन्हें बदला गया। इन घोटालों की वजह से सरकारी खजाने की तो हानि होती ही है, वहीं दूसरी ओर आम नागरिक की गाढ़ी कमाई भी देश के विकास में न लगकर इस गठजोड़ की भेंट चढ़ जाती है। उच्च गुणवत्ता मानकों वाली कम्पनियां पीछे रह जाती है एवं ब्लैकलिस्ट कंपनियां सरकारी ठेके हासिल कर लेती है। भारत के बारे में इस तरह की बातें जानकर विदेशी निवेशकों के मन में खटास की भावना उत्पन्न होने लगती है जिसका असर सीधे देश की साख एवं आर्थिक विकास पर पड़ता है।

1.7 सार्थक विधिक प्रयास

1.7.1 वोहरा कमेटी

मार्च 1993 को मुम्बई में हुए श्रृंखलाबद्ध विस्फोटों से पूरा देश हिल गया था। इसमें मुम्बई के दाऊद गिरोह के लिप्त होने की पुष्टि हुई थी। राजनेताओं, नौकरशाह एवं अपराधियों की सांठ–गांठ का पता लगाने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा एन0एन0 बोहरा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट में कहा– ''बड़े शहरों में आय का मुख्य स्रोत अचल सम्पत्ति के लिए संबंधित जबरन कब्जा भूमि इमारतों; किराये पर रहने वाले लोगों को ताकत के बल पर मकानों से बेदखल करके उनको सस्ते दामों में हासिल करना है। इस प्रकार अर्जित रूपये का उपयोग नौकरशाहों एवं राजनेताओं से संबंध निर्माण में एवं उनकी सहायता से अपनी गैरकानूनी गतिविधियों को अंजाम दिया जाता है चुनाव के वक्त इसी रूपये और ताकत का इस्तेमाल राजनेताओं द्वारा किया जाता है'' रिपोर्ट में आगे कहा गया कि इस प्रकार का गठजोड़ देश के अन्य शहरों में भी उभर रहा है। ब्ठप् के डायरेक्टर ने भी इसकी पुष्टि की एवं क्प्ठ द्वारा भी यह कहा गया कि हाल के वर्षों में देश के विभिन्न हिस्सों में अपराधिक संघों, सशस्त्र सेनाओं (निजी), ड्रग माफियाओं, तस्कर संघों, एवं गैरकानूनी आर्थिक गतिविधियों का तेजी से विस्तार हुआ है एवं उन्होंने अपने क्षेत्र के नौकरशाहों एवं सरकारी विभागों में अच्छी पैठ विकसित कर ली है एवं राजनेताओं और मीडिया के लोगों से राष्ट्रीय स्तर पर भी सम्बन्ध विकसित कर रखे हैं।

उपरोक्त के मद्देनगर एक ऐसी नोडल एजेंसी विकसित करने की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत खुफिया एवं अन्य सभी विभागों का समन्वय हो जो छोटी से उस छोटी जानकारी को एकत्र करने में सहायक हो सकेगा जो इस प्रकार की क्रियाविधियों से जुड़ी होगी।

1.72 उच्चतम न्यायालय द्वारा फैसला

2 मई 2002 को उच्चतम न्यायालय ने एक आदेश जारी करके सभी उम्मीदवारों के लिये उनकी आर्थिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि के साथ अपराधिक पृष्ठभूमि को भी उजागर करना आवश्यक कर दिया। निर्वाचन आयोग ने इस फैसले के परिप्रेक्ष्य में अपने नामांकन पत्रों में आवश्यक सुधार भी कर दिये एक जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय सुनाया गया, जो कि एक स्वागत योग्य कदम है।

1.7.3 सूचना का अधिकार अधिनियम

उच्चतम न्यायालय द्वारा कहा गया कि मतदाताओं द्वारा चुनाव लड़ने के लिये मैदान में उतरे समस्त उम्मीदवारों की आर्थिक, शैक्षिक एवं अपराधिक पृष्ठभूमि जानने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1) (9) के अन्तर्गत मूल अधिकार है।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत कोई भी आमजन किसी भी सरकार अधिकारी की आर्थिक स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकता है। आर0 टी0आई0 के माध्यम से जहाँ आम नागरिक लोकतान्त्रिक प्रणाली में हिस्सेदारी करता है वहीं वहीं सरकार की कार्यप्रणाली पर नजर भी रख सकता है। इसके माध्यम से सरकार की कार्यप्रणाली में व्याप्त अनियमितताओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस तरह राजनीति में व्याप्त अपराधीकरण एवं राजनीति के जरिये अपने मंसूबे साधने वाले व्यापारिक घरानों के बारे में जानकारी इस अधिनियम के जरिये प्राप्त की जा सकती है जिससे इस नापाक गठजोड़ की तह में आम नागरिक पहुँचकर उसे उजागर कर सकता है। किस सरकारी कर्मचारी ने एवं सांसद, विधायक या मंत्री ने अपने दायित्वों का निर्वाह किया है या नहीं या कितना किया है इन सबकी जानकारी इस अधिनियम के माध्यम से आम जन प्राप्त कर सकता है।

1.7.4 जन लोकपाल बिल

इसे भ्रष्टाचार विरोधी बिल भी कहा जाता है। यदि अपने प्रभावी रूप में यह संसद द्वारा अधिनियम में बदल दिया जाता है तो राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने में कारगर हथियार सिद्ध होगा। इसे सबसे पहले 1968 में संसद के पटल पर रखा गया था, तब से अब तक इसे कई बार संसद में पेश किया जा चुका है परन्तु यह अब तक विधि में तब्दील नहीं हो पाया है क्योंकि भ्रष्टाचार के गर्त में डूबे हुए राजनीतिज्ञ अपना नैतिक साहस कहीं पीछे छोड़ आये हैं। व्यापार, राजनीति एवं अपराध का गठजोड़ भस्मासुर बन बैठा है जो अपने वरदानकर्ता को ही भस्म करने पर तुला हुआ है।

1.8 वर्तमान लोकसभा (15वीं) के आंकड़े

14वीं लोकसभा में जहाँ कुल 128 सांसद अपराधिक इतिहास रखते थे वहीं 15वीं लोकसभा में इनकी संख्या बढ़कर 150 हो गयी। इनमें से सबसे अधिक सांसद उत्तर प्रदेश के हैं, जहाँ के कुल 30 सांसद अपराधिक पृष्ठ भूमि के हैं, उसके बाद अपराधिक पृष्ठभूमि वाले सांसदों में क्रमवार राज्यों का नंबर महाराष्ट्र (23 सांसद), बिहार (17 सांसद), आन्ध्र प्रदेश (11) सांसद एवं गुजरात (11 सांसद) आदि है, का आता है। भारत के कुल 28 राज्यों एवं सात केन्द्रशासित प्रदेशों में 25 राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेश ऐसे हैं जहाँ का कम से कम 1 सांसद अपराधिक

पृष्ठभूमि का है। कहने का तात्पर्य यह है कि राजनीति के अपराधीकरण की समस्या विकराल रूप लेकर अब देश व्यापी हो गयी है। अपराधियों के अलावा कई ऐसे करोडपति भी इस संसद में हैं जिनके पास करोड़ों रूपये मेहनत से नही बल्कि आम आदमी को चूसने से आये हैं. आज विजय माल्या जैसे लोग सांसद हैं जिनका मकसद जनता कि सेवा करना नहीं बल्कि अपनी डूबती एयरलाइन्स को बचाना हैं। ऐसे लोगों से हम कैसे अपेक्षा करें कि ये जनता के हित कि बात करेंगे या अपनी सम्पति बढ़ने के लिए काम करेंगे. ऐसे सब लोग मिलकर संसद का जमकर दुरूपयोग कर रहे हैं. ऐसा नही है कि संसद में अच्छे सदस्य नही हैं लेकिन अच्छे सदस्यों कि संख्या कम है. वे सब बेवश हैं क्योंकि संसद भ्रष्टाचारियों, मुनाफाखोरों और अपराधियों के गिरफ्त में फंस गई है।

<u>अभ्यास प्रश्नः–</u>

1.राजनीति के अपराधीकरण के प्रमुख कारण हैंः–

क.धन बल

ख.बाहुबल

ग.वोट की राजनीति

घ.उपरोक्त सभी

2.संसदीय प्रणाली में वही राजनीतिक दल सरकार बनाने में सक्षम होता है–

क.जिसके सबसे अधिक संख्या में सांसद चुनकर आये हों,

ख.जिसके पक्ष में कुल मतों का सबसे अधिक मत प्रतिशत रहा हो,

ग.उपरोक्त दोनों

घ.उपरोक्त में कोई नहीं

3.व्यापार–राजनीति गठजोड़ की निम्न परिणिती होती है–

क.देश को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

ख.देश की साख को धक्का लगता है।

ग.विदेशी निवेशकों का विश्वास टूटता है।

घ.उपरोक्त सभी

4.सरकार में दागी सांसदों की संख्या में–

क.कमी आ रही है।

ख.बढ़ोत्तरी हो रही है।

ग.उतनी ही है।

घ.उपरोक्त में कोई नहीं।

5.दागी मंत्रि उन्हें कहा जाता है–

क.जिनके शरीर पर कोई दाग होता है।

ख.जो अपराधिक गतिविधियों में लिप्त पाये जाते हैं।

ग.उपरोक्त दोनों

घ.उपरोक्त में कोई नहीं।

<u>सत्य/असत्य कथन</u>

6.वर्तमान 15वीं लोकसभा में कुल 150 सांसद अपराधिक पृष्ठभूमि के हैं।सत्य/असत्य

7.जनलोकपाल बिल अब पारित हो चुका है।सत्य/असत्य

8.व्यापार–राजनीति के गठजोड़ के कारण देश में आर्थिक घोटालों की बाढ़ सी आ गयी है। सत्य/असत्य

9.वोहरा समिति राजनेताओं, नौकरशाह एवं अपराधियों की सांठ–गांठ का पता लगाने हेतु नियुक्ति की गयी थी। सत्य/असत्य

10.राजनीति की अपराधियों एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों से सांठ–गांठ से देश के लोकतान्त्रिक स्वरूप को गम्भीर नुकसान पहुँच रहा है। सत्य/असत्य

1.9 सारांश

भारत में राजनीति और भ्रष्टाचार एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। राजनेताओं का नैतिक एवं चारित्रिक बल इतना धराशायी हो चुका है कि आमजन के मध्य उनकी कोई साख एवं इज्जत बची नहीं रह गयी है। भ्रष्टाचार ने राजनीति को आकंठ तक डुबा दिया है। रोज नये घोटालों के चलते आम भारतीय इनका आदी होता जा रहा है अब उसे इन सब समाचारों पर कोई ताज्जुब नहीं होता है। स्वयं प्रधानमंत्री का पद भी अब इन सब बुराईयों से अछूता नहीं रह गया है क्योंकि सरकार का प्रमुख होने के नाते प्रथम जवाबदेही उसी की बनती है। सरकार में हों या विपक्ष में 'हमाम में सभी नंगे' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। इसीलिये इन मुद्दों को लेकर सही मायनों में लड़ाई लड़ना भूल चुके हैं। कोई नया घोटाला या अपराध सामने आने पर विपक्ष सदन में हो–हल्ला या कार्यवारी ठप्प करने जैसे बातों को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेता है। एवं वही दल सत्ता में आने के पश्चात कमोवेश उसी प्रकार का आचरण करने लगता है जैसा कि पूर्व सरकार ने किया होता है। सन् 1992 में मुम्बई बम काण्ड के बाद सरकार की नींद जागी तो उसने वोहरा समिति को इस नापाक सांठ–गांठ का पता लगाने के लिए नियुक्त किया, वोहरा कमेटी के साथ–साथ, सीबीआई (सेन्ट्रल इन्वेस्टीगेशन ब्यूरो), आई0बी0 (इंटेलीजैंस ब्यूरो) आदि ने भी राजनीति–अपराधी एवं व्यापार की सांठ–गांठ सम्बन्धी कई चौकाने वाले खुलासे किए परन्तु समस्या कम होने के बजय बढ़ती चली गयी।

संसदीय प्रणाली में सरकार बनाने के लिए संख्याबल के महत्व को देखते हुए प्रत्येक राजनीतिक दल की यही कोशिश रहती है। येन–केन प्रकारेण चुनाव को जीता जाए। इसी

अंधी मुहिम ने चुनावों में धन–बल एवं बाहुबल को बढ़ावा दिया। धन–बल व्यापारिक हस्तियों से प्राप्त हुआ जो चुनाव जीतने के पश्चात अपने व्यापारिक हित सरकार के माध्यम से साधते हैं, एवं बाहुबल अपराधियों से प्राप्त हुआ जिनके जरिये विपक्षी उम्मीदवार को धमकाता, मतदाताओं को पैसे या बाहुबल के जोर पर प्रभावित करना एवं मतदान केन्द्रों पर कब्जा करके एक उम्मीदवार के पक्ष में मतदान कराना सुलभ हुआ। इस तरह व्यापार एवं अपराध जगत की पैठ राजनीति में गहरी होती गयी और फिर हौंसले बुलन्द होने पर उन्होंने खुलकर मैदान में आकर चुनाव लड़ना प्रारम्भ कर दिया, जिससे प्रशासन भी उनके हाथ का मोहरा बन गया। इस नापाक गठजोड़ से भारत देश के लोकतन्त्र की जड़े कमजोर होती जा रही हैं, ऐसे में जनहित याचिका के माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने नई राह दिखायी है। सूचना का अधिकार अधिनियम भी मतदाताओं को जागरूक करने में कारगर हथियार साबित हुआ है क्योंकि सरकार की कार्यप्रणाली उसी नीतियों एवं सांसदों के बारे में जानना अब प्रत्येक नागरिक का अधिकार बन गया है। भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम ने जनलोकपाल बिल के माध्यम से देश में एक नई जागरूकता का माहौल कायम किया है एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रति लोगों में फिर विश्वास कायम करने की पहल की है।

1.10 शब्दावली

दागी सांसद/मंत्री– यह एक नई शब्दावली है जिसका प्रयोग उन सांसद/मंत्रियों के लिये किया जाता है जो अपराधिक/भ्रष्टाचार संबंध में लिप्त पाये जाते हैं।

जनलोकपाल बिल– यह प्रस्तावित भ्रष्टाचार निरोधी बिल है, इसके माध्यम से सशक्त जनलोकपाल की स्थापना का प्रावधान है जो चुनाव आयुक्त की तरह स्वतंत्र संस्था होगी। लोकपाल के पास भ्रष्ट राजनेताओं एवं नौकरशाहों पर बिना किसी की अनुमति के अभियोग चलाने की शक्ति होगी।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.घ 2. क 3. घ 4. ख 5.ख 6. सत्य 7. असत्य 8. सत्य 9.सत्य 10. सत्य

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1-http://cn.wikipedia.org/wiki vohra-report

2-articles.econowictimes.indiatimes.com

3-www.scribd.com, Research, Law

4-www.legal seniceindia.com

1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.जन लोकपाल बिल

2.वोहरा समिति की रिपोर्ट

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.अपराध एवं व्यापार जगत के साथ राजनीति के गठबंधन पर एक निबन्ध लिखिए।

2.राजनीति के अपराधीकरण प्रकाश डालते हुए उसके कारणों को बताइए।

3.जन लोकपाल पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। भ्रष्टाचार को समाप्त करने में यह किस प्रकार कारगर सिद्ध होगा?

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–4. लोकतान्त्रिक प्रक्रिया

इकाई–2.निर्वाचन; निर्वाचन आयोगः स्थिति; चुनाव सुधार

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 राष्ट्रपति एवं उपराश्ट्रपति का निर्वाचन

2.4 निर्वाचन

2.4.1 व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन

2.4.2 एक साधारण निर्वाचक नामावली

2.4.3 निर्वाचन के संबंध में उपबंध करने की संसद की षक्ति

2.4.4 विधान मंडल की षक्ति

2.4.5 निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

2.5 निर्वाचन का अधिकार मूल अधिकार नही है

2.6 निर्वाचन आयोग

2.6.1 निर्वाचन आयोग का गठन

2.6.2 बहुसदस्यीय निर्वाचन आयोग

2.6.3 निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की पूर्ति और पदावधि

2.6.4 निर्वाचन आयोग के कार्य

2.7 निर्वाचन की तारीख तय करना

2.8 निर्वाचन आयोग. स्थिति

2.9 अनुच्छेद 174 एवं अनुच्छेद 324 का संबंध

2.10 चुनाव सुधार

2.10.1 निर्वाचन आयोग द्वारा बनाये गये नियम

2.10.2 राजनीतिक दलों का नामांकन

2.10.3 राजनीति के अपराधीकरण पर रोक

2.10.4 चुनाव खर्चों को सीमित करना

2.10.5 इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मषीन का प्रयोग

2.10.6 मतदाता पहचान पत्र–

2.11 सारांश

2.12 शब्दावली

2.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.14 संदर्भ ग्रन्थ

2.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.16 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत में व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था है। प्रत्येक व्यस्क (18 वर्श की आयु के) नागरिकं को संविधान द्वारा निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से अपना प्रतिनिधि चुनने हेतु एकल मत देने का विधिक अधिकार प्राप्त है। संविधान की उद्देषिका में हमने यह घोषणा की है कि भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत और आत्मार्पित करते हैं। इसके पीछे यह संकल्पना है कि जनता प्रभुत्वसम्पन्न है। यह संकल्पना खोखली हो जायेगी यदि उन समस्त लोगों को जो अधिकार का प्रयोग करने में समर्थ हैं मताधिकार न दिया जाए। मताधिकार के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए स्वतंत्र निर्वाचन तंत्र की (निर्वाचन आयोग के नियन्त्रण के अधीन) स्थापना की गई है। आधुनिक लोकतन्त्र में मताधिकार ही ऐसा प्रभावी माध्यम है जिससे यह प्रकट होता है कि प्रभुता जनता के हाथ में है।[1]

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पष्चात आप समझ सकेंगें.

- निर्वाचन संबधित संवैधानिक उपबंध
- भारत में निर्वाचन की प्रणाली
- निर्वाचन आयोग का गठन एवं कार्य
- चुनाव सुधार

2.3 राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का निर्वाचन

---

[1]वसु आचार्य डा0 दुर्गादास, भारत का संविधान एक परिचय नौवा संस्करण पुर्नमुद्रण 2009, पृष्ठ 43

भारत के राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का निर्वाचन अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से होता है। दोनों की निर्वाचन पद्धति भिन्न है, हालांकि यह प्रणाली सार्वजनिक निर्वाचन प्रणाली के लोकतान्त्रिक आदर्षों के अनुरूप नहीं है लेकिन, चूंकि संविधान द्वारा भारत के लिये संसदीय प्रणाली की सरकार की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसमें वास्तविक षक्ति मंत्रिमंडल में निहित होती है एवं राश्ट्रपति का पद हालांकि सर्वोच्च स्थिति पर होता है लेकिन उसके हाथ में वास्तविक शक्तियां निहित नहीं होती इसलिये ऐसे पद हेतु भारत की विषाल जनसंख्या जो अब 100 करोड़ पार कर गयी है द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन समय, शक्ति और धन का दुरूपयोग ही साबित होता। इसीलिये संविधान के रचनाकारों ने राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति पद हेतु अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली को ही समीचीन पाया।

इस ईकाई को चूंकि हम लोकतान्त्रिक पद्धति विशय के अन्दर समावेषित कर रहे हैं अतः राश्ट्रपति एवं उपराश्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति का विस्तार रूप में विवरण देना यहां समीचीन नहीं होगा। इसका उल्लेख मात्र ही पर्याप्त है।

2.4 निर्वाचन.

2.4.1 व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचनः

लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिये निर्वाचन व्यस्क मताधिकार के आधार पर होंगे अर्थात प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है और ऐसी तारीख को जो समुचित विधान मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त नियत की जाए, कम से कम अठारह वर्श की आयु का है[2] और इस संविधान या समुचित विधान मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्तविकृति, अपराध या भ्रश्ट या अवैध आचरण के आधार पर अन्यथा निरर्हित नहीं कर दिया जाता है, ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में रजिस्ट्रीकृत होने का हकदार होगा।[3] दूसरे अर्थों में प्रत्येक भारत का नागरिक जो स्वस्थ चित्त

2. संविधान के 21 वें संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 326 में संशोधन करके मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गयी। राष्ट्रपति की अनुमति (28. 03.1989) के पश्चात 28.03.1989 से पभावी हुआ। जम्मू कश्मीर के संविधान में उस संविधान के 1989 में किये गये 21 वें संशोधन द्वारा तत्समान उपबंध किया गया है।

3. अनुच्छेद 326

है या जिसे उपरोक्त वर्णित आधारों पर अन्यथा निरर्हित नहीं किया गया है वह मतदाता रजिस्टर में अपने नाम का रजिस्ट्रीकरण करवा सकेगा और उसे इस अधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा।

2.4.2 एक साधारण निर्वाचक नामावलीः

अनुच्छेद 325 यह प्रावधानित करता है, श्संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन के लिए प्रत्येक प्रादेषिक निर्वाचन–क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी और केवल धर्म, मूलवंष, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यकित ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र नहीं होगा या ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिए किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र नहीं होगा या ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिए किसी विषेश निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावेदार नहीं होगा।

2.4.3. निर्वाचन के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति–

पूर्वोक्त सिद्धान्तों के और संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए संघ की संसद और राज्य के विधान मंडलों के सदनों के लिए निर्वाचन के संबंध में सभी विशयों से संबंधित विधि बनाने की शक्ति संसद को है।[4]

2.4.4 विधान मंडल की शक्ति

राज्य विधान मंडल से संबंधित निर्वाचन के विशयों पर राज्य–विधान मंडल को उपवंध करने की अनुशंगी षक्ति प्राप्त है। राज्य विधान मंडल द्वारा बनाई गयी विधियां तभी मान्य होंगी जब तक वे संसद द्वारा बनाई गई विधि के विरोध में न हों।[5]

संसद ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 और 1951 बनाए हैं तथा परिसीमन आयोग अधिनियम, 1962, 1972 बनाए हैं और इनमें निर्वाचन का ढंग विहित किया है तथा निर्वाचन से संबंधित निर्वाचन क्षेत्रों की रचना और उनका परिसीमन किया है।[6]

---

[4] **अनुच्छेद 327, सातवीं अनुसूची 1 की प्रविष्टि 72**

[5] **अनुच्छेद 328**

[6] **वसु आचार्य डा0 दुर्गादास, भारत का संविधान एक परिचय नौवा संस्करण पुर्नमुद्रण 2009 –पृष्ठ 395**

2.4.5. निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी[7]–

(क) अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन बनाई गयी या बनाई जाने के लिए तात्पर्यित किसी ऐसी विधि की विधिमान्यता, जो निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के आबंटन से संबंधित हैं, किसी न्यायालय में प्रष्नगत नहीं की जाएगी;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान–मण्डल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए कोई निर्वाचन ऐसी निर्वाचन अर्जी पर प्रष्नगत किया जायेगा, जो ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत की गई है जिसका समुचित विधान मंडल द्वारा बनाई गयी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंध किया जाए, अन्यथा नहीं।

निर्वाचन से संबंधित विशयों पर विवाद उत्पन्न होने पर सामान्य न्यायालयों को अनुच्देद 329 के माध्यम से किसी भी अधिकारिता से वंचित किया गया है अर्थात् ऐसे प्रष्नों, उदाहरण के तौर पर निर्वाचन की प्रक्रिया का उचित रूप से अनुसरण नहीं किया जाना या किसी निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन विधि के विरूद्ध है या अन्य कोई प्रष्न विवादग्रस्त है तो ऐसे बातों के विनिष्चय के लिये सामान्य न्यायालयों की कोई आधिकारिता नहीं होगी और निर्वाचन से संबंधित प्रष्न केवल निर्वाचन अर्जी के माध्यम से ही विधि में उपबंधित रीति से प्रस्तुत किया जाएगा। 1996 के अंत तक यथाविद्यमान लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुसार निर्वाचन अर्जी का विनिष्य करने की षक्ति उच्च न्यायालय में है और इससे अपील उच्चतम न्यायालय को हो सकती है। अनुच्छेद 329 (ख) के अनुसार चुनाव प्रक्रिया के प्रारम्भ होने तथा उसके समाप्त होने तक चुनाव सम्बन्धी मामलों पर न्यायालय की अधिकारिता वर्जित रहेगी। चुनाव सम्पन्न होने के बाद ही उसे चुनौती दी जा सकेगी।[8] इस निर्णय का उद्देष्य चुनाव प्रक्रिया को निर्विघ्न बिना किसी प्रतिरोध के सम्पन्न कराना है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा के वैंकटाचलम बनाम ए0 स्वामीथन[9] के मामले में यह निर्धारित किया गया कि अनुच्देद 329 (ख) का प्रावधान (न्यायालय की हस्तक्षेप अधिकारिता का वर्जन) उन मामलों पर लागू नही होगा जहां एक अर्ह व्यक्ति निर्वाचित होकर सदन में बैठकर मतदान करता है। अनुच्छेद 226 के तहत ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग

[7] अनुच्छेद 329

[8] वसु आचार्य डा0 दुर्गादास, भारत का संविधान एक परिचय नौवा संस्करण पुर्नमुद्रण 2009 –पृष्ठ 396

[9] ए0आई0आर0 1962 एस0सी0 64

कर सकताहै। अनुच्देद 191 एवं 193 के प्रावधानों के अर्न्तगत एक अनर्ह सदस्य को सदन में बैठना तथा मतदान करने के लिए दण्डित करने का उपबन्ध है।

प्रतिनिधियों को चुनने, चुने जाने का अधिकार मूल अधिकार नहीं है।[10] किसी व्यक्ति का नामांकन तब तक अस्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसमें कोई सारवान प्रवृति की त्रुटि न हो।[11]

2.5 निर्वाचन का अधिकार मूल अधिकार नही है–

जावेद बनाम हरियाणा राज्य[12] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि चुनाव का अधिकार न तो मूल अधिकार है न ही कामन ला के अधीन अधिकार है। यह अधिनियम प्रदत्त अधिकार है अतः विधि द्वारा इस प्रयोग पर निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं। इसके लिए अर्हता और निरर्हता विहित की जा सकती है।[13]

अनुकूल चन्द्र प्रधान बनाम भारत संघ[14] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मतदान का अधिकार अधिनियम द्वारा प्रदान अधिकार है, अतः इस पर विधि द्वारा निर्बधन लगाए जा सकते हैं।

2.6 निर्वाचन आयोग.

अनुच्छेद 324 द्वारा निर्वाचन के अधीक्षण, निदेषन एवं नियंन्नण हेतु निर्वाचन आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया है।

2.6.1 निर्वाचन आयोग का गठन

अनुच्छेद 324 (2) के अनुसार, निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन आयुक्तों से, यदि कोई हो, जितने राश्ट्रपति समय समय पर नियत करें, मिलकर बनेगा तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इस निमित्त बनाई

10 ज्योति बाई बनाम देवी घोंसाल (1982 आईएस0सी0 691) विवेकानन्द गिरी बनाम नन्द किशोर

11 विवेकानन्द गिरी बनाम नन्द किशोर (1984) 2 Sec 10

12 A.I.R. 2003 SC 3059

13 पाण्डे, डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 44 वां संस्करण, पृष्ठ 659

14 A.I.R. 1997 SC 2814.

गई विधि के आबंधों के अधीन रहते हुए राश्ट्रपति द्वारा की जाएगी। जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया जाता है तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा।[15]

लोकसभा के और प्रत्येक राज्य की विधान सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पहले तथा विधान परिशद वाले प्रत्येक राज्य की विधान परिशद के लिए प्रथम साधारण निर्वाचन से पहले और उसके बाद प्रत्येक द्विवार्शिक निर्वाचन से पहले, राश्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्ष करने के पष्चात खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को सौंपे गये कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिए उतने प्रादेषिक आयुक्तों की भी नियुक्ति कर सकेगा जितने वह आवष्यक समझे।[16]

2.6.2 बहुसदस्यीय निर्वाचन आयोग

2 अक्टूबर, 1993 को राश्ट्रपति ने एक अध्यादेष जारी करके निर्वाचन आयोग को बहुसदस्यीय बना दिया और दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति कर दी। यह अध्यादेष अब अधिनियम बन गया है।[17] उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार, 'जब ऐसी व्यापक षक्तियां दी जाती हैं तो उन्हें एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित नहीं होना चाहिए यह लोकतान्त्रिक प्रणाली के विरूद्ध हैं, (जैसा कि एकसदस्यीय निर्वाचन आयोग के माले में प्रतीत हुआ था) न्यायालय ने कहा कि निर्वाचन आयोग की षक्तियां 'अनियन्त्रित' नहीं है। न्यायपालिका को उस पर न्यायिक पुनर्विलोकन की षक्ति प्राप्त है।[18]

टी0एन0 षेशन बनाम भारत संघ[19] के मामले में अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायधिषों की संविधान पीठ (मुख्य न्यायमूर्ति अहमदी, जे0एस0वर्मा, एनर0 पी0 सिंह, एस0पी0 भरूचा, एवं एस0के0 मुखर्जी) ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि संसद द्वारा पारित जिस अधिनियम के तहत निर्वाचन आयुक्तों को मुख्य निर्वाचन आयुक्त के समान पद एवं षक्ति प्रदान की गयी है वह पूर्णतः संवैधानिक है। इस अधिनियम के तहत एक प्रावधान यह था कि निर्वाचन आयोग अपने निर्णय सर्वसम्मति से लेगा परन्तु अगर सब सदस्य एकमत न हो तो निर्णय बहुमत के आधार पर किया जायेगा, तत्कालीन मुख्य निर्वाचन आयुक्त टी0एन0 षेशन द्वारा इस अधिनियम की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी थी।

---

[15] **अनुच्छेद 324 (3)**
[16] **अनुच्छेद 324 (4)**
[17] **पाण्डे, डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 44 वां संस्करण, पृष्ठ 654**
[18] Ibid
[19] (1995) 4 SCC 612

2.6.3. निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि

अनुच्छेद 324 (5) के अनुसार संसद द्वारा बनाई गयी किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेषिक आयुक्तों की सेवा की षर्ते और पदावधि ऐसी होगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करें।

परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जाएगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीष को हटाया जाता है अन्यथा नहीं और मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की षर्तों में उसकी नियुक्ति के पष्चात उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

परन्तु यह और कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेषिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जाएगा, अन्यथा नहीं।[20] उच्चतम न्यायालय के न्यायधीष को महाअभियोग की प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकता है, जो कि एक कठिन प्रक्रिया है। इस प्रकार संविधान निर्वाचन आयोग के पदाधिकारियों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करता है एवं एक स्वतंत्र निकाय के रूप में स्थापित करता है ताकि आयोग अपने कार्यों को बिना किसी राजनीतिक एवं अन्य हस्तक्षेप के निडरता एवं निशपक्षता के सम्पन्न कर सके। राज्यों के चुनाव भी भारत का निर्वाचन आयोग ही सम्पन्न कराता है। राज्यों के लिये अलग से किसी निर्वाचन आयोग की व्यवस्था संविधान द्वारा नहीं की गयी है। यह निर्वाचन आयोग की स्वतन्त्रता और निर्वाचन में एकरूपता बनाए रखने के उद्देष्य से किया गया है जिससे राज्य सरकारें निर्वाचन आयोग के ऊपर अनुचित प्रभाव न डाल सकें।[21] किसी राज्य में चुनाव सम्पन्न कराने हेतु निर्वाचन आयोग के अनुरोध पर राश्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग या प्रादेषिक आयुक्त को उतने कर्मचारिवृंद उपलब्ध कराएगा जितने निर्वाचन आयोग को अपने कार्यों के लिये आवष्यकता होगी।[22]

एस0एस0 धनोवा बनाम भारत संघ[23] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 324 (2) के अधीन निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति एवं पदच्युति की षक्ति राष्ट्रपति में निहित है। राश्ट्रपति जितने चाहे उतने आयुक्त की नियुक्ति एवं कार्य समाप्ति पर पद समाप्त भी कर सकता है। इस आदेष को चुनौती नहीं दी जा सकती।

20 **अनुच्छेद 324**

21 **पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान, 44 वां संस्करण, पृष्ठ 653**

22 **अनुच्छेद 324 (6)**

23 AIR 1991 SCC 1745

2.6.4 निर्वाचन आयोग के कार्य

अनुच्छेद 324 के अनुसार निर्वाचन आयोग के निम्नलिखित कार्य होंगे–

1. संसद के सदनों के लिये चुनाव सम्पन्न कराना।
2. प्रत्येक राज्य के विधान मंडलों के लिये चुनाव सम्पन्न कराना।
3. उपराश्ट्रपति एवं राश्ट्रपति के पदों के लिये चुनाव सम्पन्न कराना।
4. उक्त निर्वाचनों के लिये निर्वाचक नामावली तैयार कराना।
5. उक्त निर्वाचनों का अधीक्षण।
6. उक्त निर्वाचनों का निदेशन।
7. उक्त निर्वाचनों का नियन्त्रण।
8. संसद तथा राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचन संबंधी संदेहों और विवादों के निर्णय के लिए निर्वाचन अधिकरण की नियुक्ति करना।
9. ससंद तथा राज्य विधानमण्डलों के सदस्यों की अनर्हताओं के प्रष्न पर राश्ट्रपति और राज्यपालों को परामर्ष देना।
10. चुनाव रद्द कराने की शक्ति– मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयोग, AIR 1978 SC 851 के निर्णय के अनुसार चुनाव आयोग को किसी स्थान के चुनाव रद्द कराने की षक्ति भी है।

2.7 निर्वाचन की तारीख तय करना

निर्वाचन की तारीख नियत करना सरकार का कार्य है। तारीख तय होने के पष्चात निर्वाचन आयोग का कार्य प्रारम्भ होता है। वह निर्वाचन की तारीख तय नहीं करता।

2.8 निर्वाचन आयोग–स्थिति

निर्वाचन आयोग एक संवैधानिक एवं स्वतन्त्र निकाय है। उसे चुनाव कराने के लिए संबंधित निर्णय लेने की पूर्ण षक्ति एवं स्वतन्त्रता प्राप्त है, परन्तु उसकी यह षक्ति आत्यान्तिक नहीं है। अनुच्देद 192 (2) के अधीन किसी सदस्य (विधान सभा) के निरर्हता के प्रष्न पर निर्णय लेने से पूर्व राज्यपाल को चुनाव आयोग का मत लेना आवष्यक है। लेकिन चुनाव आयोग का निर्णय अंतिम नहीं है। उसके निर्णय पुनर्विलोकन के अधीन है अर्थात् देष की सर्वोच्च न्यायपालिका उसके निर्णयों पर पुनर्विचार कर अपना फैसला दे सकती है एवं उसके निर्णयों पर रोक भी

लगा सकती है। लोकतन्त्र में किसी एक व्यक्ति या निकाय के हाथों षक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं हो सकता।

भारत का चुनाव आयोग बनाम डा0 सुब्रहमण्यम स्वामी[24] के वाद में तमिलनाडु की मुख्यमन्त्री जयललिता ने मुख्य चुनाव आयुक्त पर पक्षपात के आरोप लगाए थे। वाद के तथ्य इस प्रकार थे कि. डा0 सुब्रहमण्यम स्वामी ने श्रीमती जय ललिता की विधानसभा की सदस्यता की वैधता पर प्रष्न चिन्ह खड़े किये थे। अनुच्छेद 192 (2) के तहत राज्यपाल ने इस मुद्दे पर चुनाव आयोग से उसका मत मांगा था। सुश्री जयललिता ने आरोप लगाया कि डा0 स्वामी की मुख्य चुनाव आयुक्त से घनिश्ठता के चलते उन्हें न्याय की अपेक्षा नहीं है। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि बहुसदस्यीय चुनाव आयोग में निर्णय लेते वक्त यह जरूरी नहीं है कि सभी सदस्य बैठक में अनिवार्य रूप से भाग लें। अतः मुख्य चुनाव आयुक्त उक्त निर्णय को अन्य सदस्यों पर छोड़ दें और स्वयं हट जाये। किन्तु दोनों सदस्यों में असहमति की दषा में राज्यपाल को बहुमत का मत देने के लिये मुख्य आयुक्त को भाग लेना होगा और अपना मत देना होगा।

2.9 अनुच्छेद 174 एवं अनुच्छेद 324 का संबंध

इन री प्रेसीडेन्सियल रिफरेन्स, 2002 ।प्ऋ 203, ेब 87 के वाद में राश्ट्रपति ने अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय से अनुच्छेद 324 के सही निर्वचन एवं दोनों के मध्य संबंध के विशय में प्रश्न पूछा था। अनुच्छेद 174 के अनुसार

(1) राज्यपाल समय समय पर राज्य के विधानमंडल के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेषन के लिये आहूत करेगा, किन्तु एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिये नियत तारीख के बीच छह मास का अंतर नहीं होगा।

(2) राज्यपाल समय–समय पर–

(क) सदन का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा;

(ख) विधान सभा का विघटन कर सकेगा।

अनुच्छेद 174 के तहत राज्यपाल को किसी विधान सभा के विघटन की षक्ति प्राप्त है। इस षक्ति का प्रयोग राज्यपाल सरकार की सलाह पर करता है। वस्तुतः इसकी वास्तविक षक्ति सरकार के ही पास है, चूंकि अनुच्छेद 174 के तहत यह भी प्रावधान है, किसी विधान सभा की एक सत्र की अंतिम बैठक एवं आगामी सत्र की प्रथम बैठक के मध्य छः माह से अधिक की अवधि नहीं होनी चाहिए। अतः यदि किसी कारणवष विधान सभा विघटित हो जाती है तो छरू

[24] 1996, 4 SCC 104

माह के अन्दर चुनाव करवा कर विधान सभा का गठन हो जाना चाहिए ताकि बैठक नियत अवधि के अन्दर बुलाई जा सके।

अनुच्छेद 324 के अन्तर्गत चुनाव कराने हेतु निर्वाचक नामावली तैयार करना, सभी निर्वाचनों का संचालन, अधीक्षण और नियन्त्रण का कार्य निर्वाचन आयोग में निहित है।

प्रस्तुत वाद में तथ्य ये थे – 27 फरवरी 2002 में गुजरात राज्य के गोधरा में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना में 58 कारसेवकों को रेलगाड़ी में आग लगाकर जिन्दा जला दिया गया। प्रतिक्रिया स्वरूप राज्य में बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगा एवं हिंसा भड़क उठी। हालांकि राज्य सरकार द्वारा हिंसा पर काबू पा लिया गया एवं राज्य में षांति बहाल कर दी गयी, परन्तु 28 जुलाई 2002 को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोदी द्वारा राजनीतिक कदम उठाते हुए राज्यपाल से विधानसभा भंग करके राज्य में चुनाव कराने की सिफारिष की गयी। निर्वाचन आयोग द्वारा राज्य में चुनाव करने हेतु स्थितियों का जायजा लिया गया एवं निर्णय लिया गया कि राज्य में स्थितियां चुनाव के अनुकूल नहीं है। यह भी सुझाव दिया गया कि छः मास के पष्चात राज्य में राष्ट्रपति षासन लागू कर दिया जाये। राश्ट्रपति ने तत्पष्चात निम्न बिन्दुओं पर उच्चतम न्यायालय से सलाह[25] मांगी–

1. क्या अनुच्छेद 174 अनुच्छेद 324 के अधीन है जिसके अनुसार चुनाव कराना सम्भव नहीं है।
2. क्या निर्वाचन आयोग ऐसा कोई निर्णय ले सकता है जो अनुच्छेद 174 का उल्लंघन करती है अर्थात् चुनाव की तारीखे छह मास के पष्चात की निष्चित करता है जिसके कारणे राज्य में राश्ट्रपति चुनाव की आवष्यकता पड़ जाती है।
3. क्या चुनाव आयोग अनुच्छेद 174 के आदेष का पालन करने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं और राज्य एवं केन्द्र सरकार के सहयोग से चुनाव कराना अनिवार्य है।

मुख्य न्यायमूर्ति श्री बी0एन0 किरपाल की अध्यक्षता में गठित उच्चतम न्यायालय की 5 न्यायमूर्तियों की संविधान पीठ ने (न्यायमूर्ति बी0एन0 खरे, के0जी0 बालकृश्णन, अषोक भान और श्री पसायत) ने गुजरात सरकार का तर्क मानने से इन्कार कर किया एवं यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 174 ''जीवित विधानसभा'' में लागू होता है न कि एक विघटित विधानसभा (dissolve assembly) में। अनुच्छेद 174 का संबंध चुनाव कराने से नहीं है एवं न ही यह चुनाव कराने के लिये कोई अधिकतम समय सीमा का निर्धारण करता है। चुनाव कराने की शक्ति अनुच्छेद 324 के तहत चुनाव आयोग में निहित है। न्यायालय ने आगे कहा कि लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 14 और 15 से स्पश्ट है जिसके अनुसार राष्ट्रपति या राज्यपाल निर्वाचन आयोग की सिफारिश पर चुनाव की तारीख निष्चित करेंगे।

[25] अनुच्छेद 143

इस प्रश्न पर कि क्या अनुच्छेद 174 अनुच्छेद 324 के अधीन है, न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि ये दोनों अनुच्छेद एक दूसरे के अधीन नहीं हैं एवं अलग–अलग क्षेत्रों में लागू होते हैं। निर्वाचन आयोग का यह मत कि अनुच्छेद 174 की षर्तें पूरी न हो सकने की स्थिति में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है, न्यायालय ने कहा कि यह यहां लागू नहीं होता है एवं अमान्य है।

तीसरे प्रश्न के संबंध में न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 324 के तहत निर्वाचन आयोग का यह कर्तव्य है कि वह चुनाव यथाषीघ्र कराये। निर्वाचन आयोग का यह तर्क की राज्य में कानून व्यवस्था की स्थिति चुनाव कराने के अनुकूल नहीं है, न्यायालय ने कहा कि ''सामान्यतः'' राज्य की कानून या लोक व्यवस्था चुनाव स्थगित करने का आधार नहीं होना चाहिए। यह सभी अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे निर्वाचन आयेग को स्वतन्त्र एवं निश्पक्ष चुनाव कराने में सभी प्रकार की सहायता एवं सहयोग उपलब्ध करायें।

न्यायालय के निर्णय के अनुसार निर्वाचन आयोग को चुनाव कराने की पूर्ण षक्ति प्राप्त है परन्तु उसकी यह षक्ति मनमानी नहीं है एवं न्यायिक पूनर्विलोकन के अधीन है। निर्वाचन आयोग को छः महिनों के भीतर चुनाव अवष्य पूर्ण करा लेने चाहिए जब तक कोई गम्भीर परिस्थिति न उत्पन्न हो गयी हो।

2.10 चुनाव सुधारतन्त्र

चुनाव लोकतन्त्र का मुख्य आधार है एवं जन साधारण की प्रभुता को दर्षाता है जैसे–जैसे भ्रष्टाचार, रिष्वतखोरी आदि बुराइयों ने सामाजिक एवं सरकारी प्रतिशठानों में पैर पसारने आरम्भ किये तो चुनाव भी इससे अछूते न रहे। धन बल एवं बाहुबल पर चुनाव जीते जाने की कोशिशें होने लगीं। पैसा बांटकर मतदाता को लुभाना एवं मतदान केन्द्रों पर कब्जा आम होने लगा। चुनाव के दिनों में प्रत्याषियों के प्रचार के लिये लाउडस्पीकरों का षोर आदि से आम जन जीवन भी अस्त व्यस्त हो जाना आम बात हो गयी। इन परिस्थितियों में चुनाव में सुधारों की जरूरत महसूस की जाने लगी।

तारकुंडे समिति (1975), गोस्वामी समिति (1990) निर्वाचन आयोग की सिफारिशें (1998) एवं इन्द्रजीत गुप्ता समिति (1998) की रिपोर्टों में चुनाव सुधारों से संबंधित सुझावों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया। स्वयं चुनाव आयोग द्वारा भी चुनावों को स्वच्छ बनाने के लिये कई सराहनीय प्रयास किये गये।

2.10.1 निर्वाचन आयोग द्वारा बनाये गये नियम

पांचवे आम चुनाव (1971) के समय चुनाव आयोग द्वारा कुछ नियमों का निर्धारण किया गया –

- चुनावों की तिथियों की घोशणा के पश्चात मंत्रियों एवं अन्य आथोरिटी द्वारा किसी आर्थिक पैकेज की घोषणा पर रोक।
- किसी भी प्रकार की योजना के षिलान्यास पर रोक।
- निर्माण सम्बन्धी वायदों जैसे सड़क आदि पर रोक।
- सरकारी एवं जन संस्थानों में नवीन नियुक्तियों पर रोक।
- ऐसी किसी भी घोषणा पर रोक जिससे मतदाता को रूलिंग पार्टी के पक्ष में वोट देने के लिये लुभाया गया प्रतीत हो।

जून, 2002 में उच्चतम न्यायालय के निर्देष पर निर्वाचन आयोग ने अनुच्देद 324 के तहत आदेष जारी किया कि प्रत्येक प्रत्याषी को अपने अपराधिक रिकार्ड एवं आर्थिक विवरण (स्वयं एवं जीवनसाथी) षपथपत्र के साथ नामांकन फार्म से साथ संलग्न करना अनिवार्य होगा।

2.10.2. राजनीतिक दलों का नामांकन

किसी भी राजनीतिक दल को निर्वाचन आयोग में अपना नाम दर्ज कराना अनिवार्य होता है। इससे संबंधित कानून 1989 में बनाये गये जो कि बहुत लचीले थे, इस कारण नामांकन कराने वाले दलों की संख्या बहुत बढ़ गयी हालांकि ये पाटियां चुनाव लड़ने की इच्छुक नहीं थी इससे मतदाताओं में बहुत दुविधा उत्पन्न हो जाती थी। इसे रोकने के उद्देष्य से निर्वाचन आयोग ने दलों के नामांकन के सम्बन्ध में निम्न नियम बनाये–

1. नामांकन के इच्छुक दलों के पास कम से कम 100 चुने हुए सदस्य होने चाहिए।
2. नामांकन की फीस के तौर पर दस हजार रुपये भी जमा करना प्रत्येक दल के लिये अनिवार्य कर दिया गया।
3. प्रत्येक दल को अपने क्रियाकलापों में भी लोकतंत्रात्मक प्रक्रिया को अपनाना होगा ताकि दल के अन्दर भी लोकतंत्र बना रहे।

2.10.3 राजनीति के अपराधीकरण पर रोक

राजनीति का अपराधीकरण एक गम्भीर समस्या है जो बिहार से आरम्भ होकर देष के प्रत्येक कोने में फैल गयी। इसे रोकने के लिए अपराधी के चुनाव लड़ने पर रोक लगाने संबंधी कानून भी बना, परंतु निश्प्रभावी रहा। हालांकि इतना असर जरूर हुआ है कि चुनाव लड़ने के लिए

नामांकन पत्र भरते समय प्रत्येक उम्मीदवार के लिए अपना अपराधिक विवरण देना अब अनिवार्य हो गया है।

2.10.4 चुनाव खर्चों को सीमित करना

2004 के चुनावों में चुनाव आयोग ने प्रति उम्मीदवार चुनाव खर्चे को निम्न दर पर निर्धारित किया:–

- लोकसभा सीट के चुनाव हेतु खर्च रू0 10,00,000 से रू0 25,00,000 के मध्य।
- विधानसभा सीट के चुनाव हेतु खर्च रू0 5,00,000 से 10,00,000 के मध्य।

2.10.5 इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग

चुनाव की प्रक्रिया को बेहतर बनाने के उद्देष्य से मतदान हेतु इलैक्ट्रॉनिक वोटिंग मषीन का प्रयोग करने का निर्णय चुनाव आयोग द्वारा लिया गया। जिससे समय एवं कागज दोनों की बचत सम्भव हुई है। परन्तु पिछले विधान सभा एवं आम चुनावों में (2009) में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से छेड़छाड़ कर चुनाव को प्रभावित करने सम्बन्धित खबरें भी आयी थीं। यह स्वीकार किया गया कि इलैक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग पूरी तरह से सुरक्षित नहीं माना जा सकता एवं इसमें छेड़छाड़ की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता।

2.10.6 मतदाता पहचान पत्र–

निर्वाचक नामावली में सटीकता एवं सुधार लाने हेतु 1993 में विस्तृत योजना के तहत प्रत्येक मतदाता को मतदाता पहचान पत्र निर्गत किया गया।

<u>अभ्यास प्रश्न–</u>

1.मत देने का अधिकार है एक–

(क) मूल अधिकार

(ख) विधिक अधिकार

(ग) संवैधानिक अधिकार

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

2.राष्ट्रपति एवं उपराश्ट्रपति का निर्वाचन होता है–

(क) प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा

(ख) अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा

(ग) सार्वजनिक निर्वाचन प्रणाली द्वारा

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

3.संविधान के ....संशोधन अधिनियम द्वारा मतदान की आयु 21 वर्श से घटाकर 18 वर्श कर दी गयी।

(क) इकसठवें

(ख) बासठवें

(ग) तिरेसठवें

(घ) चौसठवें

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो–

1.भारत में वर्तमान निर्वाचन आयोग ....सदस्यीय है।

2.निर्वाचन आयोग की स्थापना का प्रावधान अनुच्छेद ....में किया गया है।

3.निर्वाचन आयोग का गठन ....द्वारा किया जाता है।

सत्य/असत्य कथन–

1.निर्वाचन आयोग निर्वाचन की तिथि तय करता है। **सत्य/असत्य**

2.निर्वाचन आयोग किसी स्थान के चुनाव रद्द करने की शक्ति रखता है। **सत्य/असत्य**

3.संसद को राज्य के विधान मंडलों के सदनों के लिये निर्वाचन के संबंध में विधि बनाने की शक्ति नहीं है। **सत्य/असत्य**

4.नामांकन भरते समय प्रत्येक प्रत्याषी को अपने अपराधिक रिकार्ड एवं आर्थिक विवरण शपथपत्र के साथ देना अनिवार्य है। **सत्य/असत्य**

2.11 सारांश

भारत में प्रत्येक व्यस्क (18 वर्श की आयु) नागरिक को संविधान द्वारा निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से अपना प्रतिनिधि चुनने हेतु एकल मत देने का अधिकार प्राप्त है। आधुनिक लोकतन्त्र में जनता को प्रभुता मताधिकार से ही प्राप्त होती है।

संविधान के इकसठवें संषोधन अधिनियम 1989 द्वारा अनुच्छेद 326 में संषोधन करके मतदान की आयु 21 वर्श से घटाकर 18 वर्श कर दी गई। तत्पष्चात् प्रत्येक भारत का नागरिक जो स्वस्थ चित्त है एवं उसे अपरोध या भ्रश्ट या अवैध आचरण के आधार पर अन्यथा निरर्हित नहीं कर दिया गया है तथा जो अठारह वर्ष की आयु का है वह अपना नाम मतदाता रजिस्टर में रजिस्टर्ड करवा सकता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी। उसमें धर्म, मूलवंष, जाति, लिंग या इनमें से किसी एक आधार पर कोई विभेद नहीं होगा। संसद को केन्द्र एवं राज्य के विधान मंडलों के सदनों के लिए निर्वाचन के सम्बन्ध में सभी विशयों पर विधि बनाने की षक्ति प्राप्त है। राज्य विधान मंडल को इस सम्बन्ध में

अनुशेंगी शक्ति प्राप्त है, परन्तु ऐसी विधियां तभी मान्य होगी जब तक वे संसद द्वारा बनाई गई विधि के विरोध में न हो। निर्वाचन संबधित विशयों पर विवाद उत्पन्न होने पर सामान्य न्यायालयों को अनुच्छेद 329 के माध्यम से किसी भी अधिकारिता से वंचित किया गया है। जावेद बनाम हरियाणा राज्य[1] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि चुनाव का अधिकार मात्र अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार है।

निर्वाचन आयोग का गठन संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के अबंधों के अधीन रहते हुए राश्ट्रपति द्वारा किया जाता है। 1 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश जारी करके निर्वाचन आयोग को बहुसदस्यीय बना दिया गया। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से महाअभियोग की प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकता है। निर्वाचन आयोग एक संवैधानिक संस्था है जिसमें निर्वाचन सम्बन्धी सभी क्रिया कलापों से सम्बन्धित कार्य करने की षक्ति निहित है। केन्द्र सरकार द्वारा निर्वाचन की तारीख तय किये जाने के पष्चात् निर्वाचन आयोग के कार्य प्रारम्भ हो जाते है। निर्वाचन आयोग को चुनाव कराने सम्बन्धित निर्णय लेने की पूर्ण षक्ति एवं स्वतन्त्रता प्राप्त है। लेकिन उसके निर्णय न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है। किसी भी राजनीतिक दल को निर्वाचन आयोग में अपना नाम दर्ज कराना अनिवार्य होता है। चुनावों को निश्पक्ष एवं पारदर्षी बनाने हेतु पाँचवे आम चुनावों के समय निर्वाचन आयोग द्वारा कुछ नियमों का निर्धारण किया गया, जिसमें एक नियम के तहत प्रत्येक प्रत्याषी द्वारा नामांकन के समय ही अपने आर्थिक विवरण एवं अपराधिक रिकार्ड को देना अनिवार्य बना दिया गया। अन्य नियमों में चुनाव खर्च सीमित करना भी षामिल है। इलैक्ट्रॉनिक वोटिंग मषीन के प्रयोग से समय एवं कागज दोनों की बचत संभव हुई वहीं निर्वाचक नामावली में सटीकता एवं सुधार लाने हेतु प्रत्येक मतदाता को चित्रयुक्त मतदाता पहचान पत्र निर्गत किये गये। जो भारत की विषाल जनसंख्या को देखते हुए एक दुरूह कार्य था।

2.12 शब्दावली–

<u>**मताधिकारः–**</u> एक ऐसा अधिकार जिसके अन्तर्गत किसी लोकतान्त्रिक प्रणाली में जनता अपने ऊपर षासन करने हेंतु प्रतिनिधि स्वंय चुनती है। यह किसी भी लोकतान्त्रिक प्रणाली की रीढ़ होता है।

<u>**निर्वाचनः–**</u> एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोग अपने मत देने के अधिकार को सुनिष्चित करते हैं।

<u>**निर्वाचन नामावलीः–**</u> अनुच्छेद 325 के प्रावधानों के अन्तर्गत प्रत्येक मतदाता जो संविधान द्वारा बनायी गई षर्ते पूरा करता है अपना नाम मताधिकार के प्रयोग हेतु इस नामावली में बिना धर्म, मूलवंश, जाति अथवा लिंग के विभेद के सम्मिलित कराने का अधिकारी होता है।

2.13. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (ख), 3 (क) 4 बहुसदस्यीय 5, 324 6. राष्ट्रपति 7, असत्य 8,सत्य9, असत्य 10, सत्य

2.14. संदर्भ ग्रन्थ

1. बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2009, लेक्सिस नेक्सिस बटरबर्थ वाधवा नागपुर

2. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी

3. सीरबाई, एच0एम0 कान्स्टीट्यूषनल लॉ ऑफ इंडिया, 4वॉ संस्करण वोल्यूम–1 युनीवर्सल बुक ट्रेडर्स

4. भारत का संविधान, (बेयर एक्ट) द्विभासी संस्करण कानून प्रकाशक, संस्करण 2008

2.15. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. दुर्गा दास बसु, चार्टर कंस्टिट्यूषन ऑफ इंडिया

2. डा0 जे0 जे0 आर0 उपाध्याय, भारत का संविधान

2.16. निबंधात्मक प्रश्न

1.निर्वाचन आयोग एक स्वतन्त्र एचं संवैधानिक निकाय है। संम्बन्धित वादों से स्पष्ट करें।
2.निर्वाचन आयोग के कार्यो का विस्तार से वर्णन करें।
3.चुनाव सुधारों पर एक टिप्पणी लिखिये।

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–4. लोकतान्त्रिक प्रकिया

इकाई–3. गठबंधन सरकार, स्थिरता, अवधि, भ्रष्टाचार; संसदीय प्रणाली की सरकार एवं राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 गठबंधन सरकार

3.4 गठबंधन सरकार के प्रकार

3.5 गठबंधन के प्रकार

3.6 भारत में गठबंधन की सरकारों का दौर– स्थायित्व की ओर

3.7 गठबंधन सरकार – आलोचनात्मक परीक्षण

3.8 गठबंधन सरकार के लाभ

3.9 गठबंधन सरकार की समस्याए

3.10 संसदीय प्रणाली की सरकार बनाम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

3.10.1 संसदीय प्रणाली की सरकार

3.10.1.1 संसदीय प्रणाली की सरकार की विशेषताएं

3.10.1.2 संसदीय प्रणाली की सरकार के सकारात्मक पहलू

3.10.1.3 संसदीय प्रणाली की सरकार की कमियाँ

3.10.2 राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

3.10.2.1 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

3.10.2.2 राष्ट्रपति प्रणाली की उपयोगिता

3.10.2.3 राष्ट्रपति प्रणाली की कमियाँ

3.11 संसदीय प्रणाली बनाम राष्ट्रपति प्रणाली – तुलनात्मक अध्ययन

3.12 सारांश

3.13 महत्वपूर्ण शब्दावली

3.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.15 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

3.17 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संसदीय चुनावों में जब किसी एक दल को सरकार का निर्माण करने लायक संख्याबल या बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो संसद में कई राजनैतिक दल मिलकर एक साझा मंच तैयार करके मंत्रिमण्डल चुन लेते हैं एवं साझे मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते हैं। इस प्रकार जब कई राजनीतिक दल मिलकर एक सर्वमान्य नेता चुनकर मिलजुल कर सरकार बनाते है तो उसे गठबंधन की सरकार कहा जाता है। हालांकि राष्ट्रीय आपात काल में भी इस तरह की सरकार का निर्माण होता है जब देश की समस्या को सुलझाने के लिए सभी राजनीतिक दल वैचारिक मतभेद भुलाकर एक हो जाते हैं।

पिछले लगभग दो दशकों में भारत में केन्द्र एवं राज्यों में विभिन्न दलों की मिली जुली सरकारें शासन कर रहीं हैं। गठबंधन की सरकारों के स्थायित्व के लिए यह बेहद आवश्यक है कि वे अपने विचारों एवं सिद्धान्तों में नरमी लायें एवं एक साझा वैचारिक मंच तैयार करके उस पर अमल करें। आमतौर पर गठबंधन सरकारों का अनुभव बेहद कड़वा ही रहा है, परन्तु कुछ उदाहरण जैसे केरल, पश्चिम बंगाल एवं केन्द्र राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबंधन (**NDA**) की गठबंधन सरकारों ने सफलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूर्ण किया एवं नया उदाहरण सामने रखा है। गठबंधन सरकारों के दौर की शुरूआत के साथ ही संसदीय सरकार बनाम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार पर बहस भी आरम्भ हो गई है। राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार, जिसका सफलतम उदाहरण यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका है, वहां सरकार बनाने के लिए संख्या बल नहीं बल्कि दल के पक्ष में पड़े कुल मतों की संख्या को महत्व दिया जाता है एवं वहीं राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करता है, जिसके पक्ष में अधिकतम मत प्रतिशत रहा होता है।

इससे पूर्व की ईकाई में आपने भारत की निर्वाचन प्रणाली के बारे में पढा। इस इकाई में उपरोक्त दोनों बिन्दुओं गठबंधन की सरकार एवं प्रधानमन्त्री बनाम राष्ट्रपति प्रणाली के शासन के बारे में चर्चा करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे:–

- गठबंधन सरकार
- भारत में गठबंधन की सरकारों का दौर
- गठबंधन सरकार के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू

- संसदीय बनाम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

3.3 गठबंधन सरकार

गठबंधन की सरकार वह सरकार होती है जिससे संसदीय प्रणाली की सरकार में मन्त्रिमण्डल का एक से अधिक राजनीतिक दल मिलकर निर्माण करते हैं, इसका सबसे मुख्य कारण किसी भी एक राजनीतिक दल को चुनाव में पर्याप्त बहुमत न मिलना होता है इसलिए इसे अल्पमत की सरकार भी कहा जाता है।

गठबंधन की सरकार का निर्माण राष्ट्रीय आपात के समय भी होता है। जब किसी राष्ट्रीय समस्या से निपटने के लिए सभी राजनीतिक दल देश के हित के लिए आपसी वैचारिक मतभेद भुलाकर एक ही मंच पर आप जाते है, अर्थात् विपक्ष, सत्तापक्ष के साथ मिलकर राष्ट्रीय आपात स्थिति का सामना करता है। अतः हम कह सकते हैं कि गठबंधन की सरकार बनने के दो मुख्य कारण हैं–

1. जब चुनाव में किसी भी राजनीतिक पार्टी को सरकार बना लायक जरूरी संख्याबल अर्थात् बहुमत की प्राप्ति नहीं होती है। उस बहुमत के आंकड़े की छूने के लिए कई राजनीतिक दल मिलकर सरकार बनाने के लिए एक सर्वमान्य (जो सरकार बनाने में शामिल दलों को मान्य हो) नेता का चुनाव करते हैं एवं सरकार बनाने में सक्षम होते हैं।

2. राष्ट्रीय आपात की स्थिति में जब देश में अन्दरूनी या बाहरी किसी शक्ति के कारण संकट आ जाये तो उससे निपटने के लिए सभी राजनीतिक दल उसका सामना करने के लिए एक हो जाते हैं, उस समय सत्ता पक्ष एवं विपक्ष जैसा कोई भेद नहीं रह जाता है।

3.4 गठबंधन सरकार के प्रकार

गठबंधन की सरकार में एक से अधिक राजनीतिक दल सम्मिलित होते हैं, यह सम्मिलन दो प्रकार का होता है

1. सभी दल मिलकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते हैं अर्थात् प्रत्येक दल को मंत्रिपद प्राप्त होता है। जो दल जितने सांसदों/विधायकों का यागेदान देता है अर्थात् जो दल संख्याबल में जितना बड़ा होता है वोउतनी ही अनुपात में महत्वपूर्ण पदों को

प्राप्त करता है, दूसरे अर्थों में संसद के प्रति उसकी जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी होती है।

2. सभी दल सरकार बनाने में सहयोग तो करते हैं परन्तु सरकार में शामिल नहीं होते अर्थात् वह केवल बहुमत साबित करने में सरकार का साथ देते हैं। वे सब मन्त्रिमण्डल में शामिल नहीं होते हैं, बल्कि बाहर से ही समर्थन प्रदान करते हैं। ऐसी सरकारें अधिक अस्थिर होती है।

3.5 गठबंधन के प्रकार

1. **चुनाव पूर्व गठबंधन–** इस प्रकार का गठबंधन चुनाव से पहले ही अस्तित्व में आ जाता है। अलग अलग दल एक संयुक्त मोर्चा बनाकर चुनाव से पहले ही चुनाव सम्बन्धित सीटों का बंटवारा कर लेतें है एवं मिल जुलकर चुनाव लड़तें है। इस प्रकार का गठबंधन अधिक स्थायी होता है क्योंकि आपसी मतभेदें को चुनाव पूर्व ही दूर कर लिया जाता हैं, इसलिए सत्ता में आने के बाद उनमें मनमुटाव की गुंजाइश कम हो जाती है। इसके उदाहरण हैं– भारतीय जनता पार्टी का गठबंधन–राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन एवं वर्तमान में सत्तासीन कांग्रेस का गठबंधन– संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.)

2. **चुनाव पश्चात् गठबंधन–** चुनाव सम्पन्न होने के पश्चात् जब कोई भी दल बहुमत के आंकड़े को नहीं छू पाता है। तब इस प्रकार का गठबंधन प्रकाश में आता है। इसमें स्थायित्व चुनाव पूर्व गठबंधन से कम होता है एवं आपसी मतभेद भी उभरने की संभावनायें अधिक रहती हैं।

3.6 भारत में गठबंधन की सरकारों का दौर–स्थायित्व की ओर

भारत में गठबंधन की सरकारों का इतिहास लगभग ढाई दशक पुराना है। 1977 में आपातकाल के पश्चात 1977 में श्री मारारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल की सरकारबनी, परन्तु दल बदल के कारण ढाई वर्ष तक ही चल पाई। 1989 में लोकसभा चुनाव में किसी भी पार्टी को अकेले बहुमत नहीं मिला एवं कोई भी दल अकेले सरकार बनाने में सक्षम नहीं था । भारतीय

जनता पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टियों ने श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह के नेतृत्व में राष्टीय मोर्चे की सरकार को बाहर से समर्थन दिया। सदन में एक सबसे बड़े दल के रूप में कांग्रेस ने पहले ही सरकार बनाने में अपनी असमर्थता जाहिर कर दी थी । राष्ट्रीय मोर्चा सरकार केवल 11 माह तक चली और भा० ज० पा० के समर्थन वापस लेने पर गिर गई । इसके पश्चात् 54 सदस्यों के दल के नेता श्री चन्द्रशेखर को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया क्योंकि कांग्रेस पार्टी ने उनको समर्थन देने का वादा किया था । श्री चन्द्रशेखर की सरकार राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की ही भांति एक अल्पमत वाली सरकार थी जो कांग्रेस पार्टी के समर्थन पर निर्भर थी । जैसे कि आशंका थी 4 माह बाद मार्च 1991 को जनता दल (स) की सरकार कांग्रेस पार्टी द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण गिर गई ंऔर राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री की सलाह पर लोक सभा भंग को कर दिया और मई 1991 में चुनाव का आदेश दिया। मई 1991 के चुनाव में भी लोकसभा में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला और पुनः त्रिशंकु संसद बनी ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ने सबसे बड़े दल कांग्रेस पार्टी के नेता श्री नरसिंहराव को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया और उन्हें एक माह के भीतर अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा । आगे चलकर श्री राव ने लोकसभा में अन्य राजनैतिक दलों के कई सदस्यों को कांग्रेस में सम्मिलित करके अपना बहुमत बना लियां। दलबदल कांग्रेस के लिए वरदान साबित हुआ और 20 सदस्यों को लेकर श्री अजीत सिंह, श्री चन्द्रशेखर के जनता दल से अलग होकर कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये । कांग्रेस पार्टी के पाँच वर्ष के कार्यकाल के पूरा होने पर 1996 में आम चुनाव कराया गया । इस चुनाव में किसी भी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला । लगभग 32 राजनीतिक दलों ने इस चुनाव में भाग लिया। इस संसदीय चुनाव की एक और विशेषता यह रही है कि इसमें क्षेत्रीय दलों की संख्या में अपार वृद्धि हुई जो क्षेत्रीय भावनाओं को उभार कर चुनाव में विजयी हुए। ऐसा राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के कमजोर होने के कारण हुआ है । भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। भाजपा ने सरकार बनाने का अपना दावा राष्ट्रपति के समक्ष पेश किया । संयुक्त मोर्चा ने भी सरकार बनाने का अपना दावा पेश किया । उनका गठबन्यन चुनाव के पश्चात बना था।राष्ट्रपति ने पूर्व परम्परा का अनुसरण करते हुए लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया और उन्हें 13 दिनों के भीतर लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा ।

इस संबंध में सरकारिया समिति ने निम्नलिखित विकल्प अपनाने की सिफारिश की है–

1. सर्वप्रथम चुनाव के पूर्व बने गठबंधन के नेता को बुलाना चाहिये ।
2. सबसे बड़े दल के नेता को जो निर्दलीय सदस्यों या अन्य सदस्यों के समर्थन का दावा करता है बुलाना चाहिए ।
3. अविश्वास का प्रस्ताव आने पर विरोधी पक्ष के नेता को बुलाना चाहिए ।
4. दलबदल या चुनाव के पश्चात् बने गठबंधन के नेता को बुलाना चाहिए ।

लोकसभा में विश्वास संकल्प पर बहस के दौरान जब श्री वाजपेयी को यह प्रतीत हुआ कि जिस समर्थन की वे आशा करते थे वह उन्हें प्राप्त नहीं होने वाला है तो उन्होंने अपना त्याग–पत्र दे दिया । इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने संयुक्त मोर्चा के श्री देवगौड़ा को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया और उनको भी लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए 15 दिन का समय दिया । श्री देवगौड़ा ने लोकसभा में कांग्रेस और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से अपना बहुमत सिद्ध कर दिया ।

साझा या गठबंधन की सरकारों की सफलता के बारे में बहुत कटु अनुभव रहा है । ऐसी सरकारें प्रायः बहुत कमजोर और अस्थिर होती हैं । साझा सरकारों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि गठबंधन चुनाव पूर्व बनाया गया हो। गठबंधन राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के बीच हो, राष्ट्रीय मुद्दों पर सभी एकमत हों और सभी घटक सरकार में शामिल हों । इन तत्वों की अनुपस्थिति में साझा सरकारों का बहुत दिनों तक चलना सम्भव नहीं होता है। जैसी कि आशंका थी 11 माह बाद कांग्रेस पार्टी द्वारा समर्थन वापस ले लेने के कारण श्री देवगौड़ा के नेतृत्व वाली संयुक्त मोर्चा सरकार का पतन हो गया । किंतु इस बार कांग्रेस पार्टी ने मोर्चा सरकार को गिराने के उद्देश्य से समर्थन वापस नहीं लिया था बल्कि नेता बदलने के लिए मोर्चा सरकार को मजबूर करने के उद्देश्य से ऐसा किया था क्योंकि श्री देवगौड़ा कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष श्री सीताराम केसरी के आदेशों का पालन नहीं कर रहे थे । तत्पश्चात् श्री गुजराल को मोर्चा का नया नेता चुना गया और राष्ट्रपति ने उन्हें प्रधानमंत्री नियुक्त किया । किंतु यह सरकार भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाई। राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग करके मध्यावधि चुनाव कराने की घोषणा की ।

1998 के संसदीय चुनावों के पश्चात श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा एवं उसके सहयोगी दलों की सरकार तो पदारूढ़ हो गयी किंतु साझा सरकारों के स्थायित्व से उत्पन्न समस्या बनी रही । श्री वाजपेयी की सरकार 13 माह बाद अपने एक घटक अन्नाद्रुमुक के गठबधन से अलग हो जाने के कारण अप्रैल 1999 को गिर गई और राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग करके मध्यावधि चुनाव कराने का आदेश दिया ।

भाजपा ने निर्वाचन से पहले ही कई राजनीतिक दलों के साथ मिलकर एक गठबन्धन बना लिया था और एक राष्ट्रीय सामान्य एजेन्डा के आधार पर चुनाव जीता । भाजपा गठबन्यन को संसद में बहुमत प्राप्त हो गया । राष्ट्रपति ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया । इस गठबंधन की सरकार ने अपना कार्यकाल सफलता पूर्वक पूर्ण किया। 2004एवं 2009 के संसदीय चुनाव में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन को आवश्यक बहुमत मिला। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबधन एक चुनाव पूर्व का गठबन्धन था जबकि संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन एक चुनाव के पश्चात् बनाया गया गठबन्धन था । श्री वाजपेयी एन० डी० ए० के सर्वमान्य नेता थे किन्तु श्री मनमोहन सिंह कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा द्वारा मनोनीत प्रधानमंत्री हैं

जिसके पास सभी शक्तियाँ हैं और कामन मिनिमम प्रोग्राम के कार्यान्ययन समिति के अध्यक्ष होने के कारण वे इसके कार्यान्वयन के लिए प्रधानमंत्री को भी निर्देश दे सकती हैं । इससे निःसन्देह रूप से प्रधानमंत्री की शक्ति कमजोर होती है । वह अपना स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकता है । यह देखना है कि यह प्रणाली संसदीय प्रणाली को कहाँ तक सफल बनाती है । भले ही देश ने गठबंधन सरकारों के अस्थिर दौर के कारण कई मध्यावधि चुनावों का दंश झेला हो लेकिन पिछली दो गठबंधन सरकारों द्वारा अपना कार्यकाल सफलता पूर्वक पूरा कर लेने के पश्चात यह उम्मीद जगती है कि आने वाले समय में भी गठबंधन की सरकारें परिपक्वता का परिचय देते हुए संसदीय प्रणाली कर परम्पराओं का पालन करते हुए भारतीय लोकतन्त्र को और मजबूती प्रदान करेंगी।

3.7 गठबंधन सरकार – आलोचनात्मक परीक्षण

भारत विविधताओं का देश है। यहां भाषायी, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विविधित पग–पग पर बिखरी हुई है। ऐसी स्थिति में कोई एक राजनीतिक दल सभी का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ नहीं हो पाता है। ऐसे में एक दल की सरकार बनने पर वह सभी की उपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पाती है परन्तु गठबंधन की सरकार में क्षेत्रीय दल भी शामिल होते हैं। अतः उसमें अधिक वैचारिक विभिन्नता पायी जाती है। चूंकि क्षेत्रीय दलों का जन्म ही क्षेत्रीय अपेक्षाओं पर होता है। अतः वे उन्हीं उपेक्षाओं को पूरा करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सरकार में शामिल होती है। इस दृष्टि से देंखे तो गठबंधन की सरकार में एकदलीय सरकार की अपेक्षा अधिक विविधता को समेटे हुए प्रतिनिधित्व पाया जाता है। वह एक छोटे क्षेत्र की ओर भी ध्यान दे पाती हैं या दूसरे शब्दों में कहें तो देश के छोटे – छोटे उपेक्षित क्षेत्र भी गठबंधन की सरकार के जरिये अपनी और राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करने में समक्ष हो पाते हैं। क्षेत्रीय पार्टियों के आलोचक गठबंधन की सरकारों के नकारात्मक पहलू अधिक गिनाते हैं। उनके अनुसार क्षेत्रीय पार्टियों के राष्ट्रीय राजनीति के पटल पर प्रभावी हो जाने से राष्ट्रीय हित पीछे छूट जाते हैं एवं क्षेत्रीय हित प्राथमिकता पर जाते हैं। जिसके कारण क्षेत्रीयता को बढ़ावा मिलता है एवं असंतुलन कम होने के बदले और बढ़ जाता है। जिससे लोकतन्त्र को खतरा उत्पन्न होता है। क्षेत्रीय पार्टियों का आधार क्षेत्र अपने क्षेत्र तक ही सीमित होता है। वे क्षेत्रीय हितों के नाम से ही चुनाव लड़ती है एवं जीतने के प्श्चात् अपने उन्हीं क्षेत्रीय हितों को साधना चाहती हैं। उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा उनके क्षेत्र से ही उपजी होती हैं। अतः अपना आधार मजबूत रखने के लिए वे राश्ट्रीय हितों की अनदेखी करते हैं। संसदीय प्रणाली में चूंकि संख्या बल महत्वपूर्ण होता है एवं सरकार बनाने के लिए राष्ट्रीय दलों को छोटे दलों के साथ गठबंधन पर मजबूर होता पड़ता है तो ऐसे में क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इस स्थिति

का फायदा उठाने के लिए वे बड़े दलों को ब्लैकमेल करने से भी नहीं चूकते हैं। इसका कटु अनुभव भारतीय राजनीति को श्री नरसिंह राव की अल्पमत की सरकार में हुआ था। झारखण्ड मुक्तिमोर्चा के सांसदों से सम्बन्धित सांसद खरीद फरोक्त भारतीय लोकतन्त्र पर एक कलंक है। कमोवेश इसी तरह के अभियोग से वर्तमान मनमोहन सिंह की सरकार को भी दो चार होना पड़ रहा है। समाजवादी पार्टी के पूर्व नेता अमर सिंह पर इससे सम्बन्धित कार्यवाही चल रही है। इस प्रकार के परिदृश्य में जब राष्ट्रीय दल बहुमत प्राप्त नहीं कर पाते हैं तो क्षेत्रीय दल बहुत कम मत प्रतिशत पाकर भी सरकार में किंगमेकर की भूमिका में आ जाते हैं। जो लोकतन्त्र के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। कामोवेश इसी प्रकार का ओलिगोक्रेटिक (oligocratic) व्यवहार हाल ही में पेश रेलवे बजट के बाद देखने को मिला जब सत्तारूढ़ कांग्रेस की सहयोगी तृणमूल कांग्रेस की नेता ममता बनर्जी ने अपना प्रभाव दिखाते हुए रेलवे बजट पसंद न आने पर दूसरे ही दिन रेल मन्त्री को सरकार से बाहर का रास्ता दिखाकर अपने राजनीतिक हित साधे। इस सबके बीच अनिश्चितता एवं भ्रम की स्थिति कई दिनों तक बनी रही एवं विकास की नीतियों बनने में देर ही नहीं हुई बल्कि ससंद का बहूमूल्य समय भी खराब हुआ। उसकी चिंता सुश्री ममता बनर्जी को नहीं थी। आखिर प्रश्न वही है कि इस सबका जिम्मेदार कौन है? क्या वे राष्ट्रीय दल जो सत्ता के लालच में इस प्रकार की बलैकमेलिंग स्वीकार कर लेते हैं? या वे छोटी पार्टियां जा मोकापरस्ती की राजनीति करती हैं या मतदाता (आमजन) जिसके मत किसी एक दल के पक्ष में न जाकर कई जगह बंट जाते हैं जिसके कारण त्रिशंकु सरकार का गठन अपरिहार्य हो जाता है। इन सबके पीछे कहीं न कहीं कारण के रूप में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव दृष्टिगोचर होता है। सत्ता के लालच में राष्ट्रीय हितों से समझौता ही क्षेत्रीय दलों के होंसले का बढ़ाता है एवं उनकी ब्लैकमेलिंग को सफल बनाता है।

3.8 गठबंधन सरकार के लाभ

गठबंधन सरकार के निम्न लाभ हैं–

1. एकल दल के शासन की अपेक्षा गठबंधन की सरकार जनता के व्यापक वर्ग की प्रतिनिधित्व करती है। अतः यह सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व एवं क्षेत्रों के विकास में सहायक होती हैं।

2. गठबंधन की सरकार अधिक लोकतान्त्रिक एवं न्यायपूर्ण होती है क्योंकि वह एकल दल की सरकार की अपेक्षा आम जन के मतों के बड़े स्पेक्ट्रम का प्रतिनिधित्व करती है। लगभग प्रत्येक वर्ग के लोगों के मतों का

योगदान सरकार बनाने में होता है, अतः उनके विचार एवं हित राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में दृष्टिगोचर होते हैं।

3. गठबंधन की सरकार एक अधिक ईमानदार एवं गतिशील राजनीतिक प्रणाली का निर्माण करती है। जिसके द्वारा मतदाताओं के चुनाव के समय एक स्पष्ट विकल्प मिलता है। यूनाइटेड स्टेट्स ;न्झ्द्ध एवं ॅ। जैसे कई देशों में जहां कि गठबंधन की सरकारों का होना दुर्लभ बात है वहां चुनाव के वक्त मुख्य राजनीतिक दल ऐसा दिखाते हैं कि वहीं देश के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि सरकार बनाने के पश्चात् उनके दल के अंदरूनी मतभेद राष्ट्रीय निर्णयों को प्रभावित करते हैं। जिन देशों का नेतृत्व गठबंधन की सरकारों द्वारा किया जाता है वहां विभिन्न दलों द्वारा मतदाताओं को अधिक ईमानदार विकल्प प्रदान किया जाता है एवं मतभेदों पर खुली बहस सम्भव हो पाती है। फिर विचार का मिलन न हो पाने पर दलों के लिए अलग होना भी आसान होता है, क्योंकि कई दल होने के कारण उनके पास नया गठबंधन बनाने का विकल्प सदा मौजूद रहता है।

4. गठबंधन की सरकार बेहतर प्रशासन प्रदान करती है क्योंकि उनके निर्णय सदा बहुमत के पक्ष में होते हैं कोई भी निर्णय एक व्यापक सहमति का ही परिणाम होता है एवं निर्णय की प्रक्रिया में सदा आम राय कायम करने की कोशिश की जाती है। इससे उलट एकल पार्टी की सरकार की दशा में वह पार्टी सदा निजी विचारधारा एवं राय को लोगों पर थोपती है (जैसा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा देश पर आपातकाल थोपकर किया गया था)।

5. गठबंधन की सरकार प्रशासन में अधिक निरंतरता प्रदान करती है। जिन देशों में गठबंधन की सरकार की परंपरा नहीं होती है वहां कोई एक पार्टी लम्बे समय तक सत्तासीन रहती है। एक लम्बे अन्तराल के बाद जब विपक्ष में रही पार्टी को सत्ता मिलती है तो वह प्रशासनिक अनुभवहीनता के चलते कभी कभी पिछले शासन की नीतियों में एक साथ फेरबदल कर देती है। जिससे कई तरह की समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। गठबंधन की सरकार में कुछ मंत्री तो अवश्य ही ऐसे होते हैं जिन्हें प्रशासन का

पूर्व अनुभव होता है तो ऐसी सरकार ज्यादा राजनीतिक परिवक्वता का परिचय देती है।

6. गठबंधन की सरकारें आम सहमति के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। इससे संघवाद की धारणा को मजबूती मिलती है।

7. गठबंधन की सरकार में दूसरे दलों के साथ समायोजन बैठाने के लिए अपने सिद्धान्तों के साथ लगभग प्रत्येक दल को समझौता करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर कभी कांग्रेस के धुर विरोधी रहे कम्यूनिष्ट उसके साथ सन 2004 में सत्ता में शामिल हो गये। इससे वैचारिक कट्टरवाद को विराम प्रदान होता है।

8. गठबंधन सरकार के निर्णय अधिकतर सहमति पर आधारित होने के कारण देश के लिए फायदेमंद साबित होते हैं।

9. गठबंधन की सरकार में मतदाताओं की इच्छाओं का बेहतर प्रतिनिधित्व देखने को मिलता है।

10. प्रत्येक नीति पर अधिक ध्यान दिया जाता है एवं सूक्ष्मता से जांचा परखा जाता है। जिसे अच्छी गुणवत्ता वाली नीतियां सामने आती हैं।

11. प्रशासन में निरंतरता दिखायी पड़ती है। एकल पार्टी की तरह नाटकीय चुनाव नहीं होते एवं खंडित सरकार प्रदान नहीं की जा सकती।

12. हालांकि गठबंधन की सरकारों में स्थायित्व का आभाव होता है। परन्तु यह लोकतन्त्र को बढ़ावा देती है। जनता के बेहतर प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय एकता में भी सहायक होती है इससे विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा मिलता है। सभी बड़ेराष्ट्रीय दल जो शुरूआत से गठबंधन के विचार को नकारते आये हैं अब इसे यथार्थ को स्वीकार ही नहीं करने लगे बल्कि इसमें पांरगत भी होने लगे हैं। उदाहरण के तौर पर भाजपा नीत गठबंधन छक। एंव कांग्रेस नीति गठबंधन न्च। ।

3.9 गठबंधन सरकार की समस्यायें

1. अगर दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो गठबंधन की सरकार वास्तव में कम लोकतान्त्रिक होती है क्योंकि शक्ति संतुलन छोटे दलों की तरफ होता है। मतदाताओं के एक छोटे वर्ग के सहारे से जीतकर आये दल अपनी नीतियों को बहुमत पर थोपने का प्रयास करते हैं। जिसे राजनीतिक ब्लैकमेलिंग का नाम दिया जाता है।

2. गठबंधन की सरकार कम पारदर्शिता को दर्शाती है क्योंकि किसी भी एक दल के पास अकेले दम पर सरकार बनाने लायक बहुमत नहीं होता है, तब चुनाव के समय उनके द्वारा किये गये वायदे एवं नीतियां बेमानी हो जाती है। राजनीतिक कार्यक्रमों के विषय में यथार्थ धरातल पर निर्णय चुनाव के बाद बन्द कमरे में लिये जाते हैं जिसमें आमजन का कोई सरोकार नहीं रह जाता है।

3. गठबंधन की सरकार एक अच्छी सरकार के रूप में स्थापित नहीं हो पाती है क्योंकि उनके पास लम्बे समय की नीतियों का सर्वथा आभाव रहता है। लम्बे समय की नीति निर्माण में कभी कभी ऐसे निर्णय लेने पड़ते हैं जो तत्काल में विवाद का विषय बन जाते हैं एवं जिन पर आम राय बनाना बेहद मुश्किल साबित होता है।

4. गठबंधन की सरकारें एकल पार्टी की सरकारों, जिनके पास निश्चित वैचारिक धारा एवं सिद्धान्त होते हैं से कम प्रभावी एवं भरोसे लायक सिद्ध होती हैं।

5. गठबंधन की सरकार में बिना किसी नियम को अपनाये मंत्रिमण्डल के पद गठबंधन में शामिल दलों को उनके पास संख्या बल के हिसाब से दिये जाते हैं जो इस कहावत को पूरी तरह से चरितार्थ करते हैं– ''कहीं का ईंट और कहीं का रोड़ा भानुमति से कुनवा जोड़ा।

6. गठबंधन की सरकारें अस्थिर होती हैं और बहुत कम ही अपना कार्यकाल पूरा कर पाती हैं बार बार सरकारों में बदलाव के कारण देश के विकास के पहिए को विराम लग जाता है।

7. बार बार चुनाव की स्थिति में जहां विकास हो रूकता है वहीं सरकारी खजाने पर बेवजह बोझ बढ़ जाता है क्योंकि भारत जैसे विशाल

जनसंख्या वाले देश में चुनाव बेहद खर्चीला साबित होता है। पूरा प्रशासनिक अमला चुनाव में जुट जाता है जिससे सभी विभागों के काम–काज पर विपरीत असर पड़ता है।

8. स्थिर सरकार न दे पाने की स्थिति में राजनीतिक दलों पर से मतदाओं का विश्वास डगमगाने लगता है एवं उनमें मतदान के प्रति अरूचि की भावना विकसित होने का खतरा रहता है।

9. गठबंधन की सरकार मे ंकभी कभी इतनी अधिक संख्या में दल सम्मिलित होते हैं कि सभी को मत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व दे पाना लगभग असम्भव होता है, ऐसे में कुछ को संतुष्ट करने के लिए ऐसे पदों का सृजन किया जाता है जिसकी वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे में सरकारी खजाने पर अनावश्यक बोझ पड़ता है एवं जनता का पैसा देश के विकास कार्यों में न लगकर सभी दलों को सन्तुष्ट करने के काम पर लगने लगता है।

10. देश के हित के लिए कड़े निर्णय लेने का आभाव गठबन्धन सरकार की सबसे बड़ी कमजोरी होती है, जिसका नुकसान समग्र देश को उठाना पड़ता है।

3.10 संसदीय प्रणाली की सरकार बनाम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार :–

केन्द्र में लगातार अस्थिर सरकारों का दौर और देश पर बार–बार चुनावी खर्चे का बोझ एवं समय की बर्बादी को देखते हुए यह बहस अब उठने लगी है कि क्या भारत की संसदीय प्रणाली को राष्ट्रपति प्रणाली में बदल देना चाहिए। इससे कम से कम देश को एक तय समय तक स्थिर सरकार तो मिल पायेगी एवं विकास के कार्यक्रम बनकर तय सीमा में शुरू हो पायेंगे एवं विकास का पहिया बार–बार बदलती सरकारों के कारण ठप नहीं पड़ सकेगा।

3.11. संसदीय प्रणाली की सरकार

संसदीय प्रणाली में राज्य के प्रमुख एवं सरकार के प्रमुखों के मध्य एक स्पष्ट विभाजन होता है। राज्य के प्रमुख को संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ एवं विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं परन्तु

व्यवहार में उसके हाथ बंधे होते हैं, व्यवहारिक रूप में सरकार की शक्तियाँ प्रधानमंत्री एवं उसके मंत्रिमण्डल में निहित होती हैं जिनका निर्णय राज्य के प्रमुख (भारत में राष्ट्रपति) पर बाध्यकारी होता है।

सरकार का गठन बहुमत प्राप्त एकल दल या गठबंधन दलों द्वारा किया जाता है। साधारण प्रक्रिया के अनुरूप राज्य का प्रमुख बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित करता है। जिसका नेता प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है। वह अपने मंत्रिमण्डल का गठन करता है एवं वे अपने कृत्यों के लिये संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कैबिनेट एवं प्रधानमंत्री ही संसदीय प्रणाली में वह धुरी होते हैं जिसके चारों ओर समस्त सरकारी मशीनरी घूमती है। कैबिनेट द्वारा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में नीतियों का निर्माण किया जाता है। प्रधानमंत्री द्वारा निम्न कार्यों को अंजाम दिया जाता है –

(1)वह मंत्रिपरिषद का प्रमुख अर्थात सरकार का प्रमुख होता है।

(2)वह देश के विधान मण्डल का नेता होता है।

(3)प्रधानमंत्री के माध्यम से ही राज्य का प्रमुख या राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद एवं विधान मण्डल से सम्पर्क बनाता है।

(4)वह विधानमण्डल का प्रमुख होता है एवं सरकार की अन्य संस्थाओं के साथ संतुलन कायम रखना उसकी जिम्मेदारी होती है।

3.10.1. संसदीय प्रणाली की सरकार की विशेषताएं

1.**सरकार के कार्य का संचालन राष्ट्र प्रमुख के नाम से–** भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से हुई कही जायेगी। (अनुच्छेद 77)

2.**राष्ट्र प्रमुख –** भारत का एक राष्ट्रपति होगा। (अनुच्छेद 52) संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

3.**मंत्रिपरिषद, लोकसभा के प्रति उत्तरदायीः–** प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा। (अनुच्छेद 75(1)) मंत्रि परिषद लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। (अनुच्छेद 75 (3))

4.**लोक सभा का विघटन :–** संसदीय प्रणाली की सरकार की प्रमुख विशेषता उसका विघटन है। किसी भी गतिहीनता एवं विराम की स्थिति में राष्ट्रपति लोकसभा का विघटन कर पुनः चुनाव की घोषणा कर सकता है। ताकि जो सरकार अपना विश्वास खो चुकी हो। वह पुनः जनता के बीच जाकर अपना पक्ष रखें एवं पुनः लोकप्रिय सरकार का गठन हो सके।

3.10.1.1 संसदीय प्रणाली की सरकार के सकारात्मक पहलू

1.संसदीय प्रणाली की सरकार प्रतिनिधिक लोकतन्त्र का सबसे उत्तम उदाहरण है।
2.वर्तमान सरकार के क्रियाकलापों का सीधा असर उसके भविष्य पर पड़ता है अर्थात जनता के लिए यह निर्णय आसान होता है जिसे उन्होंने इस वक्त चुना है उसे भविष्य में चुनें या नहीं।
3.संसदीय प्रणाली की सरकार प्रतिनिधिक लोकतन्त्र में कार्यपालिका एवं विधायिका के मध्य एक बेहतर संतुलन स्थापित करने में कामयाब होती है।
4.संसदीय प्रणाली की सरकार सही मायनों में आलोचनात्मक सरकार होती है। बहुमत प्राप्त दल जहाँ सरकार का गठन करता है वहीं अल्पमत प्राप्त दल विपक्ष का निर्माण करते हैं, जो अधिकारपूर्वक सरकार की आलोचना करते हैं।
5.संसदीय प्रणाली की सरकार एक उत्तरदायी सरकार का गठन करती है, इसका लचीलापन इसकी एक प्रमुख अच्छाइयों में एक है।

3.10.1.3 संसदीय प्रणाली की सरकार की कमियाँ

1.संसदीय प्रणाली की सरकार में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त पूर्ण तरीके से लागू नहीं होता है। कार्यपालिका एवं विधायिका के घालमेल से तानाशाही की प्रवृत्ति पनपने की आशंका प्रबल रहती है।
2.संसदीय प्रणाली की सरकार की प्रमुख कमियों में एक है– अस्थिरता, सरकार का कार्यकाल बहुमत पर आधारित होता है, जैसे ही सरकार विधानमण्डल में अपना बहुमत खो देती है उसके पास सत्ता छोड़ देने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाता।
3.प्रधानमंत्री द्वारा मंत्रिपरिषद का गठन चुने हुए प्रतिनिधियों में से किया जाता है। अतः यह आवश्यक नहीं है जिनको जो विभाग आवंटित किये जाते हैं वे उस क्षेत्र के माहिर व्यक्ति हों। अतः नीतियों का निर्माण विशेषज्ञों द्वारा नहीं बल्कि नेताओं द्वारा किया जाता है।
4.संसदीय प्रणाली में बहुदलीय प्रणाली होती है। किसी एक दल को बहुमत न मिलने पर क्षेत्रीय दलों के राष्ट्रीय राजनीति पर हावी होने का खतरा रहता है।

3.10.2 राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार में वास्तविक शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित होती है, उसके द्वारा निर्मित मंत्रिपरिषद के सदस्य बहुमत प्राप्त दल के चुने हुए प्रतिनिधियों में से नहीं होते हैं और न ही वे लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

3.10.2.1 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार

राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार का सबसे सफल उदाहरण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का है। पाकिस्तान द्वारा भी जनरल अयूब खान के नेतृत्व में राष्ट्रपति प्रणाली को अपनाने की असफल कोशिश की गयी है। संयुक्त राष्ट्रपति अमेरिका द्वारा राष्ट्रपति प्रणाली को अपनाने का मुख्य कारण मांटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त था जिसके अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों– न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका के अलग–अलग होने की वकालत की गयी थी एवं अमेरिकियों को इस सिद्धान्त ने बहुत प्रभावित किया। अतः वहाँ के संविधान निर्माताओं ने संसदीय प्रणाली के संभावित खतरे तानाशाही एवं अस्थिरता से बचने के लिये राष्ट्रपति प्रणाली को अपनाया। संसदीय प्रणाली में बहुदलीय प्रथा होती है एवं प्रत्येक दल का अपना अलग एजेंडा होता है जो किसी राष्ट्र की एकता के लिये खतरा बन सकता है। ऐसा अमेरिकी संविधान निर्माताओं का सोचना था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निर्माण कई राज्यों के मिलने से हुआ एवं वहाँ पर प्रत्येक राज्य अपने आप में एक स्वतन्त्र ईकाई की तरह है। अतः कार्यपालिका को विधायिका से बिल्कुल अलग किया गया ताकि कार्यपालिका राष्ट्रीय विधियों को सख्ती से लागू कर सके।

अमेरिका का राष्ट्रपति दुनिया की शक्तिशाली राजनीतिक हस्तियों में से एक है। उसका कार्यकाल तय होता है। वह अपनी टीम में प्रत्येक क्षेत्र से चुने हुए विशेषज्ञों को शामिल करता है एवं वे (सेक्रेटरीज) उसके प्रति ही उत्तरदायी होते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैंः–

1.राष्ट्रपति अमेरिका का सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति होता है जो सीधे जनता द्वारा चुना जाता है।

2.वह प्रमुख राजनीतिक हस्ती भी होता है अर्थात एक एक्जीक्यूटिव से अधिक होता है।

3.वह कांग्रेस (जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों की सभा) से अलग होता है।

4.वह राष्ट्र एवं कार्यपालिका का इकलौता प्रमुख होता है।

3.10.2.2 राष्ट्रपति प्रणाली की उपयोगिता

1.राष्ट्रपति प्रणाली का प्रमुख सकारात्मक पहलू यह है कि उत्तरदायी न होते हुए भी यह प्रतिनिधिक चरित्र रखता है।

2.राष्ट्रपति का चुनाव हालांकि जनता द्वारा किया जाता है परन्तु उसका कार्यकाल तय होता है। अतः वह नीतियों को सख्ती से बिना किसी भय के लागू कर सकता है। उसका प्रशासन भी सुदृढ़ रहता है।

3.राष्ट्रपति प्रणाली में नियन्त्रण केन्द्रित होता है तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता होती है जो आपात के समय बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

4.राष्ट्र का प्रमुख विदेशी नीति निर्माता होने के साथ साथ सैन्य प्रमुख भी होता है। अतः विदेशी मामलों एवं सैन्य मामलों का बहुत संतुलित एवं सटीकता से निर्धारण होता है।

5.राष्ट्रपति प्रणाली में विभिन्न विभागों में प्रमुख के तौर पर विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है। इसके लिये दल से अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है, अर्थात राष्ट्रपति अपनी टीम चुनने के लिए स्वतन्त्र होता है।

6.चूँकि कैबिनेट के मंत्री किसी निर्वाचन क्षेत्र से नहीं होते हैं अतः उनके ऊपर निर्वाचन क्षेत्र के लोगों से सम्बन्धित कोई जिम्मेदारी नहीं होती। विधायिका से सम्बन्धित कार्यभार भी उन पर नहीं होता, अतः वह अपने कार्य को बखूबी अंजाम दे पाते हैं।

7.राष्ट्रपति प्रणाली के पक्षधर इस बात पर जोर देते हैं कि विविधताओं से भरे राष्ट्र के लिए राष्ट्रपति प्रणाली का शासन ही सबसे सही होता है।

3.10.2.3 राष्ट्रपति प्रणाली की कमियाँ

1.राष्ट्रपति प्रणाली के आलोचकों का कहना है कि चूँकि यह प्रणाली शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। इसलिये इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार ऐसे अकाट्य एवं सशक्त विभागों में बंट जाती है जिसके कारण टकराव की संभावनाएं बनी रहती हैं जो एक अच्छी और प्रभावी सरकार के लिये सही नहीं है।

2.राष्ट्रपति प्रणाली में विधायिका एवं कार्यकारिणी अलग अलग होते हैं। विधान कार्यकारिणी का प्रमुख कार्य होता है लेकिन इस प्रणाली में विधान, कार्यकारिणी के निर्देशन में नहीं होता।

3.राष्ट्रपति प्रणाली का चरित्र स्वेच्छाचारी, जिम्मेदारीरहित एवं खतरनाक होता है। एक बार चुने जाने के पश्चात देश को उसकी नीतियों के साथ चलना ही पड़ता है चाहे उसकी नीतियां पसन्द आयें या नहीं। इस प्रणाली के अन्तर्गत तानाशाही की प्रवृत्ति पनपने का खतरा बना रहता है।

3.11 संसदीय प्रणाली बनाम राष्ट्रपति– तुलनात्मक अध्ययन

अगर हम वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करें तो संसदीय प्रणाली में दो विपरीत चलन देखने को मिलते हैं पहला संसदीय प्रणाली में गिरावट एवं दूसरा प्रधानमंत्री प्रणाली की सरकार का उभरना। कई ऐशियाई देशों जैसे– पाकिस्तान, श्रीलंका, वर्मा, धाना, मिश्रा आदि में संसदीय लोकतन्त्र असफल रहा है। इसके कई कारण है– पहला लोकतन्त्रीय संस्थाओं एवं परम्परा का

अभाव, दूसरा राष्ट्रीय अखण्डता एवं पहचान का अभाव, अत्यधिक गरीबी, आर्थिक असमानता, जनसंख्या का बेतहाशा बढना, रूढ़िवादी समाज का हावी होना, अशिक्षा, किसी एक दल को लगातार शासन करना, व्यक्तिवादी राजनीति का हावी होना, आदि। संसदीय प्रणाली के असफल होने पर अधिकांश देशों द्वारा राष्ट्रपति प्रणाली को अपना लिया गया है।

दूसरा चलन जो संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत उभरा है वह प्रधानमंत्री प्रणाली की सरकार का है जिसका उदाहरण भारत है। इसके कई कारण है जिनमें से एक है पूरे देश में क्षेत्रीय पार्टियों का उभरना एवं मीडिया का विकास। जिसने आम चुनावों का चरित्र ही बदलकर रख दिया है। दूसरा कारण है– दल की नीति, जिसका अनुसरण दल के दूसरे सदस्य एवं संसद के सदस्यों द्वारा किया जाता है। वह आमतौर पर प्रधानमंत्री की नीति ही होती है बजाय मंत्रिमण्डल की सम्मिलित नीति के, इसके अलावा प्रधानमंत्री के हाथों में मंत्री नियुक्त करने की शक्ति का होना भी उसे शक्तिशाली बनाता है। वह जिसे चाहता है मंत्री बनाता है और जिसे वह पसन्द नहीं करता उसे हटा देता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री ही वह शख्स होता है जिसके हाथों में वास्तविक शक्तियां होती हैं, जिसके द्वारा वह पार्टी, संसद, मंत्री परिषद एवं लोक सेवकों को नियन्त्रण में रखता है।

अतः अगर हम देखें तो चाहे भारत में संसदीय प्रणाली की सरकार है परन्तु प्रधानमंत्री को वही ओहदा प्राप्त हो गया है जो कि अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त है। जिस प्रकार नीति निर्धारण में प्रधानमंत्री का मत निर्णायक होता है उसी प्रकार नीति की सफलता या असफलता का श्रेय भी सम्मिलित रूप से मंत्रि परिषद को न मिलकर प्रधानमंत्री को ही दिया जाता है, कहने का तात्पर्य है कि संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका एवं विधायिका के बीच समुचित संतुलन होना आवश्यक है, नहीं तो किसी एक के पक्ष में शक्ति का संतुलन होने पर उसका अधिक शक्तिशाली होना दूसरे को कमजोर कर देता है जो लोकतन्त्र के लिये हानिकारक साबित होता है। मंत्रि परिषद जिसका प्रधानमंत्री प्रमुख होता है, की तानाशाही को रोकने के लिये संसदीय प्रणाली में मजबूत विपक्ष का होना आवश्यक है, क्षेत्रीय पार्टियों का उभार विपक्ष को बिखेर देता है। अतः दो या तीन दलीय प्रणाली ही श्रेयस्कर होती हैं। इस प्रकार संसदीय प्रणाली एवं राष्ट्रपति प्रणाली दोनों ही प्रणालियों की अपनी उपयोगिता है एवं साथ ही साथ कमजोरियां भी हैं। जहाँ राष्ट्रपति प्रणाली में स्थिरता है वहीं संसदीय प्रणाली में मंत्रीपरिषद का लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होना महत्व रखता है। प्रत्येक देश की अपनी परिस्थितियां होती हैं एवं उसी के अनुरूप उपरोक्त दानों प्रणालियों को बदलाव के साथ अपनाना ही समझदारी है।

अभ्यास प्रश्नः–

सत्य/असत्य कथन

1.भारत में संसदीय प्रणाली की सरकार है। **सत्य/असत्य।**

2.भारत में प्रधानमंत्री का चुनाव सीधे जनता के द्वारा होता है। **सत्य/असत्य।**

3.अमेरिका का राष्ट्रपति सीधे जनता द्वारा चुना जाता है। **सत्य/असत्य।**

4.भारत में वर्तमान में केन्द्र में एक दल का शासन है। **सत्य/असत्य।**

5.एक बार चुने जाने के पश्चात भारत के प्रधानमंत्री अपना तय कार्यकाल पूरा करके ही हटाया जा सकता है। **सत्य/असत्य।**

6.भारत में पिछले दो दशकों से केन्द्र में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ है। **सत्य/असत्य।**

7.संसदीय प्रणाली की सरकार में वास्तविक शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में होती है। **सत्य/असत्य।**

8.संसदीय प्रणाली में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का पूरी तरह से पालन किया जाता है। **सत्य/असत्य।**

9.चुनाव के पश्चात राष्ट्रपति किसी भी दल को सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित कर सकता है। **सत्य/असत्य।**

3.12 सारांश

भारत में पिछले दो दशकों से गठबंधन की सरकारों का दौर शुरू हो गया है। गठबंधन की सरकारों में जहाँ क्षेत्रीय पार्टियों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है वहीं राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न कभी–कभी गौड़ हो जाते हैं। गठबंधन की सरकार की सबसे बड़ी कमी है उसकी अस्थिरता, ऐसे में दल बदल, सांसदों की खरीद फरोख्त, ब्लेकमेलिंग आदि बुराइयों में सिर उठाने लगती हैं, वहीं बड़े दलों का एक छत्र साम्राज्य टूटने से प्रत्येक वर्ग को राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेने का मौका मिल जाता है ऐसे में क्षेत्रीय असंतुलन दूर होता है। गठबंधन की सरकार में लम्बे समय के लिये नीति का निर्माण एक कठिन कार्य हो जाता है ऐसे में देश की विदेशी नीति एवं उसकी अन्तर्राष्ट्रीय साख पर बुरा असर पड़ता है। बहुमत के अभाव में गठबन्धन सरकारें अपना कार्यकाल बमुश्किल पूरा कर पाती हैं जिससे देश को बार–बार मध्याविध चुनावों का सामना करना पड़ता है जिस कारण देश के विकास की गति के तो विराम लगता ही है बल्कि बार–बार चुनावों से समय की बर्बादी होती है एवं जनता पर अनावश्यक खर्चे का बोझ भी पड़ जाता है क्योंकि सरकारी खजाने में जमा धन आम जनता को गाढ़ी कमाई में से ही आता है जो देश के विकास कार्यों में न लगकर चुनाव की भेंट चढ़ जाता है। पिछली दो गठबंधन की सरकारों द्वारा अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद अब यह उम्मीद बंधने लगी है कि भले ही भारत में गठबंधन की सरकारों का दौर शुरू हो गया है लेकिन गठबंधन का लोकतन्त्र अब परिपक्व हो चला है। आशा है कि आने वाले समय में अगर

एक दल को बहुमत नहीं भी मिलेगा तो देश को मध्यावधि चुनावों का मुँह नहीं देखना पड़ेगा अर्थात सरकार में शामिल सभी दल समझदारी से सरकार चलाते हुए अपना कार्यकाल तो अवश्य पूरा करेंगे।

गठबंधन की सरकारों की अस्थिरता के दौर में संसदीय प्रणाली बनाम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार भी एक बहस का मुद्दा बन गया है। राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार के पैरोकार इसकी स्थिरता को देखते हुए भारत में इसे लागू करने की वकालत करने लगे हैं।

ग्रेट ब्रिटेन की भांति ही भारत में भी संसदीय प्रणाली की सरकार को अपनाया गया। जिसमें राष्ट्रपति राष्ट्र प्रमुख होता है एवं वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति मंत्रिपरिषद एवं उसके प्रमुख प्रधानमंत्री के हाथों में निहित होती है।

राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार में वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति राष्ट्रपति में ही निहित होती है। संसदीय प्रणाली में मंत्री परिषद के सदस्य सरकार में शामिल दलों से आते हैं वहीं राष्ट्रपति प्रणाली में राष्ट्रपति विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की नियुक्ति अपनी कैविनेट में करता है। संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री एवं कैबिनेट के सदस्य की जवाबदेही लोकसभा की तरफ होती है परन्तु राष्ट्रपति प्रणाली में ऐसा नहीं होता। कैबिनेट केवल राष्ट्रपति के प्रति जवाबदेह होती है। संसदीय प्रणाली में सरकार में शामिल दल तभी तक बने रहते हैं जब तक उनके पास बहुमत लायक संख्याबल मौजूद रहता है अर्थात संसदीय प्रणाली की सरकार अपने तय कार्यकाल से पहले भी हटायी जा सकती है परन्तु राष्ट्रपति प्रणाली में राष्ट्रपति एवं उसकी टीम (कैबिनेट) अपना तय कार्यकाल तक बनी रहती है अर्थात वह एक स्थित सरकार होती है।

3.13 महत्वपूर्ण शब्दावली

गठबंधन सरकार – जहाँ दो या अधिक दल मिल सरकार बनाने लायक बहुमत जुटाते हैं। संसदीय प्रणाली इस प्रणाली में राष्ट्र का प्रमुख एवं सरकार का प्रमुख दो अलग व्यक्ति होते हैं। भारत एवं ब्रिटेन इसके उदाहरण हैं, ब्रिटेन में राष्ट्र प्रमुख वहां की रानी एवं राजा (राजपरिवार) होते हैं। भारत में यह स्थान राष्ट्रपति को दिया गया है जिसका चुनाव चुने हुए विधायकों/सांसदों द्वारा किया जाता है।

राष्ट्रपति प्रणाली – इस प्रकार की प्रणाली में राष्ट्र प्रमुख एवं सरकार का प्रमुख एक ही व्यक्ति होता है। इस प्रमुख उदाहरण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका है। राष्ट्रपति को सीधे चुनाव द्वारा जनता चुनती है।

3.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य 6. सत्य 7. असत्य 8. असत्य 9. असत्य

3.15 संदर्भ ग्रन्थ

1.डा0पी0एस0, वेरीड पैटर्नस ऑफ पार्लियामेन्टरी एण्ड प्रेसीडेन्सियल गवर्नमेन्ट्स, 1989

2.जेनिंग्स, कैबिनेट गवर्नमेन्ट

3.बल राम झाखड़, पिपुल, पार्लियामेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन

4.पाण्डे, डा0 जय नरायण, भारत का संविधान, 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल ला एजेन्सी

5-http://en.wikipedia.org/wiki/coalition-government

6.http://www.ssmrae/com/admin/image/7dc4b27aaee9e21c05dd93 16b7bebdac.pdf

3.16 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री :–

1.ए0सी0 कपूर, प्रिसीपिल्स ऑफ पालिटिकल साईंस, 1997

2.ए0आर0बर्च, दि ब्रिटिश सिस्टम ऑफ गवर्नमेन्ट

3.17 अभ्यास प्रश्न

1.''भारत में गठबंधन सरकारों का दौर–स्थिरता की ओर'' पर एक निबन्ध लिखिए।

2.संसदीय एवं राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये। भारतीय संदर्भ में कौन सी प्रणाली उपयुक्त है।

3.संसदीय प्रणाली की सरकार किसे कहते हैं? इसकी उपयोगिता एवं कमियाँ क्या–क्या हैं?

एल–एल.एम. प्रथम वर्ष

भारतीय संवैधानिक विधि

खण्ड–4 लोकतान्त्रिक प्रक्रिया

इकाई–4. मूल स्पर्शी लोकतन्त्र

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम एवं स्थापित नई प्रणाली के प्रमुख लक्षण

4.4 पंचायतों का गठन एवं संरचना

4.5 पंचायतों में स्थानों का आरक्षण

4.6 पंचायतों की अवधि

4.7 सदस्यता के लिए अर्हताएं

4.8 पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व

4.9 पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्ति और उनकी निधियाँ

4.10 वित्त आयोग

4.11 पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा

4.12 निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

4.13 पंचयत संबंधी प्रावधानों का संघ राज्य क्षेत्रों में प्रवृत्त होना

4.14 पंचायत सम्बन्धी प्रावधानों का कतिपय क्षेत्रों में प्रवृत्त न होना

4.15 वर्तमान विधियों और पंचायतों का बना रहना

4.16 नगर पालिकाएं

4.17 नगर पालिकाओं की संरचना

4.18 वार्ड समितियों का गठन एवं संरचना

4.19 नगर पालिकाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं महिलाओं के लिए स्थानों का आरक्षण

4.20 नगरपालिकाओं का कार्यकाल

4.21 सदस्यता के लिए अर्हताएं

4.22 नगर पालिकाओं, आदि की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व

4.23 नगर पालिकाओं द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्ति और उनके वित्तीय साधन

4.24 वित्त आयोग

4.25 नगर पालिकाओं के लिए निर्वाचन

4.26 योजना समितियाँ

4.26.1 जिला योजना के लिये समिति

4.26.2 महानगर योजना के लिए समिति

4.27 केन्द्रीय वित्त आयोग के कर्तव्यों में वृद्धि

4.28 सारांश

4.29 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.30 शब्दावली

4.31 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.32 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.33 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में प्राचीन काल से ही ग्राम पंचायतों की परिकल्पना रही है। पंचों को परमेश्वर का रूप देते हुए पंच परमेश्वर की संकल्पना नयी नहीं है। उन्हें न्याय के साथ दण्ड देने का अधिकार भी प्रदान किया गया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी सदा स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में ग्राम पंचायतों की स्थापना पर विशेष बल दिया। संविधान के अनुच्छेद 40 में इस विषय पर स्पष्ट निर्देशित किया गया– ''राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।'' संविधान के 73वें और 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायतों और नगर पालिकाओं के स्तर पर लोकतन्त्र को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गयी। इससे पूर्व सर्वप्रथम आन्ध्रप्रदेश में प्रयोग के तौर पर अगस्त 1958 में कुछ भागों में प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ किया गया। 2 अक्टूबर 1959 को गाँधी जयन्ती के अवसर पर राजस्थान के नागौर जिले में प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना का शुभारम्भ किया गया एवं उसे सम्पूर्ण राजस्थान में लागू किया गया। इस तरह राजस्थान सबसे प्रथम राज्य बना जिसमें पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना हुई।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप परिचित हो सकेंगे।

- मूल स्पर्शी लोकतन्त्र के रूप में पंचायतों एवं नगर पालिकाओं की नई प्रणाली।

- पंचायतों का गठन एवं अवधि।
- पंचायतों की शक्तियाँ प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व।
- पंचायत वित्त आयोग।
- नगर पालिकाओं का गठन एवं अवधि।
- नगर पालिकाओं की शक्तियाँ, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व।

4.3 – 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम एवं स्थापित नई प्रणाली के प्रमुख लक्षण

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के गठन का उपबंध करते हुए संविधान में भाग 9 और भाग 9क जोड़े गये। भाग 9 में पंचायतों के विषय में उपबंध हैं इसमें अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243 क से 243ण तक के अनुच्छेद हैं। भाग 9 क में नगर पालिकाओं के बारे में उपबन्ध किये गये हैं। इसके अन्तर्गत अनु0 243 त से अनुच्छेद 243 यछ तक के अनुच्छेद हैं। 73वाँ संशोधन अधिनियम 24–4–1993 से प्रवृत्त हुआ एवं 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1–6–1993 से प्रवृत्त हुआ, पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के लिये जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा प्रतिनिध चुने जाते हैं। वित्त की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए इसके लिये पंचायत वित्त आयोग की स्थापना का प्रबंध किया गया है।

<u>अनन्य रूप से राज्य के विषयः–</u>

यह इस नई प्रणाली का विशेष लक्षण है कि स्थानीय शासन के अन्तर्गत नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र दोनों ही अनन्य रूप से राज्य का विषय है। यह साँतवी अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 5 के अधीन है। अतएव संघ इन विषयों के सम्बन्ध में अधिकारों और दायित्वों का सृजन करने के लिए विधि नहीं बना सकता। राज्य नई विधियाँ बनाकर या अपनी विद्यमान विधियों का संशोधन करके उन्हें 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप बनाकर उसे लागू करेंगे।[1] ये संशोधन जम्मू–कश्मीर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड राज्यों और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्रों पर लागू नहीं होते हैं।

4.4 पंचायतों का गठन एवं संरचना

प्रत्येक राज्य में ग्राम, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर संविधान के भाग 9 के उपबंधों के अनुसार पंचायतों का गठन किया जायेगा।[2] इन मुख्य तीन स्तरों पर पंचायतों का गठन उसी राज्य में किया जायेगा जिनकी जनसंख्या बीस लाख से अधिक है।[3] किसी पंचायत के सभी स्थान,

पंचायत क्षेत्र में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुए व्यक्तियों से भरे जायेंगे।[4] एक ग्राम स्तर पर पंचायत के क्षेत्र के भीतर आने वाले किसी ग्राम से संबंधित निर्वाचक नामावली में रजिस्ट्रीकृत व्यक्तियों से मिलकर बना निकाय 'ग्राम सभा' कहलायेगा।[5] इस तरह 'ग्राम सभा' प्रतिनिधिक लोकतन्त्र के सबसे पहले पायदान पर स्थापित होगी। ग्राम स्तर पर किसी पंचायत का अध्यक्ष राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाई गयी विधि के अनुसार निर्वाचित किया जायेगा। इस विधि में यह बताया जायेगा कि ग्रामपंचायत और अंतवर्ती पंचायत के अध्यक्षों का जिला पंचायत में प्रतिनिधित्व किस प्रकार होगा। इसी विधि में संघ और राज्य के विधान मंडलों के सदस्यों के सम्मिलित होने के बार में उपबंध होगा, किन्तु यह ग्राम स्तर से ऊपर के लिये ही होगा।[6] मध्यवर्ती स्तर या जिला स्तर पर किसी पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन, उसके निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से किया जायेगा। 73वें संविधान संशोधन द्वारा भाग 9 में तीन चरणों में पंचायतें बनाने की परिकल्पना की गयी है। पहला ग्राम स्तर, दूसरा जिला स्तर पर जिला पंचायत एवं तीसरा अंतर्वर्ती पंचायत जो ग्राम और जिला पंचायतों के बीच होगी।

4.5 पंचायतों में स्थानों का आरक्षण[7]

प्रत्येक पंचायत में—

क.अनुसूचित जातियोंय और

ख.अनुसूचित जनजातियों

के लिये स्थान आरक्षित रहेंगे और इस प्रकार आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, उस पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या से यथाशाक्य वही होगा जो उस पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जाति की अथवा जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या से है। अर्थात यदि अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 26 प्रतिशत है और अनुसूचित जनजातियों की 16 प्रतिशत है तो उनके लिये क्रमशः 26ः और 16ः स्थान आरक्षित होंगे,

(2) इस प्रकार आरक्षित स्थानों की कुल संख्या के कम से कम 1/3 स्थान अनुसूचित जातियों या जनजातियों की महिलाओं के लिये आरक्षित रहेंगे।

(3)प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्थान (अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महिलाओं के लिये आरक्षित स्थानों सहित) महिलाओं के लिये आरक्षित रहेंगे। ऐसे सभी आरक्षित स्थान किसी पंचायत में भिन्न—भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आवंटित किये जा सकेंगे।

अध्यक्ष पद के लिये आरक्षणः—

ग्राम या किसी अन्य स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के पद अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिये स्थान ऐसी रीति से आरक्षित रहेंगे, जो राज्य का विधान–मंडल, विधि द्वारा उपबंधित करेगा। प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में इस प्रकार आरक्षित अध्यक्ष पदों की संख्या का अनुपात ऐसे पदों की कुल संख्या से यथाशाक्य वही होगा, जो उस राज्य की जनसंख्या में अनुपात होगा। प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अध्यक्ष पदों की कुल संख्या में से 1/3 पद महिलाओं के लिये आरक्षित रहेंगे। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिये किये गये आरक्षण तब तक प्रवृत्त रहेंगे जब तक अनुच्छेद 334 में विनिर्दिष्ट अवधि समाप्त नहीं हो जाती।[8] राज्य विधि द्वारा किसी भी स्तर की पंचायत में नागरिकों के पिछड़े वर्गों के पक्ष में स्थानों या पदों का आरक्षण कर सकेगा। 83वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 243ड़ में 3क जोड़कर यह उपबंध किया गया कि अनुसूचित जातियों के लिये स्थानों के आरक्षण से सम्बन्धित अनुच्छेद 243ध की कोई बात अरूणाचल प्रदेश राज्य पर लागू नहीं होगी।

4.6 पंचायतों की अवधि

अनुच्छेद 243ड़ में पंचायतों की अवधि आदि के उपबंध किये गये हैं। इसके अनुसार प्रत्येक पंचायत अपने प्रथम अधिवेशन के लिये नियत तारीख से पाँच वर्ष की अवधि तक कार्य करेगी। विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार उसे इस अवधि से पहले विघटित किया जा सकेगा। यदि किसी पंचायत का विघटन उसका कार्यकाल पूर्ण होने से पहले ही कर दिया गया है तो विघटन की तारीख से छः माह के भीतर ही निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार जब समय पूर्व विघटित पंचायत का पुनर्गठन किया जाता है तो वह अवशिष्ट अवधि के लिये ही कार्य करेगी परन्तु बची हुई अवधि यदि छः माह से कम है तो निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा।

4.7 सदस्यता के लिये अर्हताएं

अनुच्छेद 243च के अनुसार प्रत्येक वह व्यक्ति जो राज्य विधान मंडल के लिये निर्वाचित होने की अर्हता रखते हैं पंचायत का सदस्य होने के लिये अर्ह होगा। केवल एक अंतर है जहाँ राज्य विधान मंडल के लिए विहित आयु 25 वर्ष है[9], पंचायत के लिये निर्वाचन की आयु 21 वर्ष है, इस प्रकार प्रत्येक वह व्यक्ति जो 21 वर्ष का है और राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गयी किसी विधि के अधीन उसे निरर्हित नहीं किया गया है। वह पंचायत की सदसयता हेतु अर्ह है। यदि किसी सदस्य की निरर्हता संबंधी कोई प्रश्न उठता है तो यह प्रश्न ऐसे प्राधिकारी को विनिर्दिष्ट किया जायेगा जो राज्य विधान मंडल, विधि द्वारा, उपबंधित करे।

4.8 पंचायतों की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व

राज्य विधान मंडल को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वह विधि बनाकर पंचायतों को वे शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करें जिससे वे स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ हो सकें, (अनुच्छेद 243छ)। उन्हें जो उत्तरदायित्व प्रदान किये जा सकते हैं उनमें है–

क.आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना।

ख.आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की स्कीमों का क्रियान्वनयन।

ग.11वीं अनुसूची में दिये गये विषयों के बारे में[10], इस अनुसूची में 29मदें है, उदाहरणार्थ– भूमि सुधार, लघु सिंचाई, पशुपालन, मास्त्यिकी, शिक्षा, महिला और बाल विकास आदि, 11वीं अनुसूची के द्वारा राज्य विधान मंडल और पंचायतों के बीच शक्ति का विभाजन किया गया है।

4.9 पंचायतों द्वारा कर अधिरोपित करने की शक्तियाँ और उनकी निधियाँ[11]

राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा किसी पंचायत को कर, शुल्क, पथकर और फीसें उद्ग्रहीत, संग्रहीत और विनियोजित करने के लिये प्राधिकृत कर सकता है। राज्य सरकार द्वारा संग्रहीत कर, शुल्क आदि भी पंचायतों को दिये जा सकते हैं, राज्य की संचित निधि में से पंचायतों को सहायता अनुदान भी दिया जा सकता है।

4.10 वित्त आयोग–

राज्य का राज्यपाल, संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम के प्रारम्भ से एक वर्ष के अन्दर और तत्पश्चात, प्रत्येक पांचवें वर्ष की समाप्ति पर, पंचायतों की वित्त स्थिति का पुनर्विलोकन करने और निम्नलिखित के बारे में सिफारिश करने के लिये एक वित्त आयोग की स्थापना करेंगे[12] –

क.राज्य और पंचायतों के बीच, राज्य द्वारा उद्ग्रहणीय और उनके बीच विभाज्य कर, शुल्क, पथकार और फीस के शुद्ध आगमों का वितरण और पंचायतों के विभिन्न स्तरों में उसका आवंटन,

ख.कौन से कर, शुल्क, पथकर और फीस पंचायतों को दिए जा सकते हैं,

ग.पंचायतों को सहायता अनुदान,

वित्त आयोग का प्रतिवेदन और उस पर की गयी कार्यवाही का ज्ञापन राज्य विधान मंडल के समक्ष रखा जायेगा। इन उपबंधों की रचना अनुच्छेद 280 के नमूने पर की गयी है। अनुच्छेद

280 के अन्तर्गत संघ और राज्यों के मध्य वित्त के वितरण हेतु वित्त आयोग की नियुक्ति का उपबंध किया गया है।

4.11 पंचायतों के लेखाओं की संपरीक्षा[13]

किसी राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, पंचायतों द्वारा लेखे रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा कराने के बारे में उपबंध कर सकेगा।

4.12 निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन

अनुच्छेद 243ट में पंचायतों के लिये राज्य निर्वाचन आयोग के गठन का उपबंध किया गया है, जिसमें एक राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। इस आयोग का कार्य पंचायतों के निर्वाचन संबंधी सभी क्रियाकलापों जैसे निर्वाचक नामावली तैयार कराने, निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशक और नियंत्रण करना होगा, आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिये राज्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने की प्रक्रिया को दुरूह बनाया गया है, राज्य निर्वाचन आयुक्त को उन्हीं आधारों पर और उसी प्रक्रिया से अपदस्थ किया जा सकता है, जिस प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है।

अनुच्छेद 329[14] की भांति ही अनुच्छेद 243ट के अधीन न्यायालयों को इस बात की अधिकारिता नहीं होगी कि वे पंचायत के निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या स्थानों के आवंटन से संबंधित किसी विधि की विधिमान्यता की परीक्षा करें। पंचायत का निर्वाचन, निर्वाचन अर्जी पर ही प्रश्नगत किया जा सकेगा जो ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत की जायेगी जो राज्य विधान मंडल द्वारा बनाई गयी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित किया जाये।

4.13 पंचायत संबंधी प्रावधानों का संघ राज्य क्षेत्रों में प्रवृत्त होना

अनुच्छेद 243ठ उपबंधित करता है कि भाग 9 के उपबंध सभी संघ क्षेत्रों में किसी राज्य की भांति ही लागू होंगे, परन्तु राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह लोग अधिसूचना द्वारा भाग 9 के उपबंध किसी संघ राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग में कतिपय अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए लागू करने का निर्देश दे सकता है।

4.14 पंचायत संबंधी प्रावधानों का कतिपय क्षेत्रों में प्रवृत्त न होना

अनुच्छेद 243ड. के अनुसार–

(1)इस भाग (9) की कोई बात अनुच्छेद 244 के खंड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और उसके खण्ड (2) में निर्दिष्ट जनजाति क्षेत्रों को लागू नहीं होगी। अर्थात भाग 9 का प्रवर्तन असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों से भिन्न किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों[15] और असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों को नहीं होगा।

भाग 9 की कोई भी बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी, अर्थात–

क.नागालैण्ड, मेघालय और मिजोरम राज्य,

ख.मणिपुर राज्य में ऐसे पर्वतीय क्षेत्र जिनके लिये तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन जिला परिषद विद्यमान है।

ग.पश्चिम बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्र जिनके लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद विद्यमान है।

अनुच्छेद 243ड का खण्ड (4) (क) में यह उपबंध किया गया है कि नागालैण्ड, मेघालय और मिजोरम राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, इस भाग का विस्तार, खण्ड (1) में निर्दिष्ट क्षेत्रों के सिवाय, यदि कोई हो, उस राज्य पर इस दशा में कर सकेगा जब उस राज्य की विधानसभा इस आशय का एक संकल्प उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम 2/3 बहुमत द्वारा पारित कर दे।

(ख) संसद विधि द्वारा इस भाग के उपबंधों का विस्तार खण्ड (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों पर ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, कर सकेगी, जो ऐसे विधि में विर्निदिष्ट किए जाएं और ऐसी विधि को अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिये इस संविधान में संशोधन नहीं माना जाएगा।

4.15 विद्यमान विधियों और पंचायतों का बना रहना

अनुच्छेद 243ढ के अनुसार–

''इस भाग में किसी बात के हाते हुए भी, संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम 1992 के प्रारम्भ के ठीक पूर्व किसी राज्य में प्रवृत्त पंचायतों से सम्बन्धित किसी विधि का कोई उपबंध, जो इस भाग के उपबंधों से असंगत है, जब तक सक्षम विधान मंडल द्वारा या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे संशोधित या निरसित नहीं कर दिया जाता है या जब तक ऐसे प्रारंभ से एक वर्ष समाप्त नहीं हो जाता है, इनमें से जो भी पहले हो, तब तक प्रवृत्त बना रहेगा, परन्तु ऐसे प्रारंभ से ठीक पूर्व विद्यमान सभी पंचायतें, यदि उस राज्य की विधान सभा द्वारा या ऐसे राज्य की दशा में, जिसमें विधान परिषद है, उस राज्य के विधान मंडल के प्रत्येक सदन द्वारा पारित

इस आशय के संकल्प द्वारा पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो अपनी अवधि की समाप्ति तक बनी रहेगी।

4.16 नगरपालिकाएं

भाग 9क द्वारा नगरीय क्षेत्र में स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयों को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया, यह भाग 1–6–1993 को प्रवृत्त हुआ। इस भाग द्वारा दो प्रकार के निकाय बनाये गये–

1.स्वायत्त शासन की संस्थाएं (अनुच्छेद 243थ),

2.योजना संस्थाएं (अनुच्छेद य भ और अनुच्छेद य ड़)

अनुच्छेद 243थ के अन्तर्गत गठित स्वायत्त शासन की किसी संस्था को 'नगरपालिका' की संज्ञा दी गयी है। नगर पालिकाएं तीन प्रकार की है:–

1–नगर पंचायत, ऐसे क्षेत्र के लिए जो ग्रामीण क्षेत्र से नगर क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है।

2–नगर परिषद, छोटे नगर क्षेत्र के लिए,

3–नगर निगम, बड़े नगर क्षेत्र के लिए।

यदि कोई नगर क्षेत्र ऐसा है जहाँ कोई औद्योगिक स्थापन द्वारा नगरपालिका सेवाएं दी जा रही हैं या इस प्रकार प्रदान किये जाने का प्रस्ताव है तो राज्यपाल क्षेत्र का विस्तार और अन्य तथ्यों पर विचार करने के पश्चात उसे औद्योगिक नगर घोषित कर सकेगा और ऐसे क्षेत्र के लिए नगर पालिका गठित करना आज्ञापक नहीं होगा।

4.17 नगरपालिकाओं की संरचना (अनुच्छेद 243द)

प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों जिन्हें वार्ड कहा गया है, में विभाजित होंगे। नगर पालिका के सभी स्थान इन वार्डो से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुए व्यक्तियों द्वारा भरे जायेंगे। नगर पालिका के अध्यक्ष का निर्वाचन राज्य के विधान मंडल द्वारा उपबंधित रीति से किया जायेगा। राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा, नगर पालिका में निम्नलिखित के प्रतिनिधित्व के लिए उपबंध कर सकेगा, अर्थात–

(1)नगर पालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्ति

(2)लोकसभा, राज्यों की विधानसभा, राज्यसभा और विधान परिषद के सदस्य

(3)अनुच्छेद 243ध के खण्ड (5) के अधीन गठित वार्ड समितियों के अध्यक्ष

4.18 वार्ड समितियों का गठन एवं संरचना (अनुच्छेद 243ध)

जिन नगरपालिकाओं की जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक होगी उनमें एक या अधिक वार्ड से मिलकर वार्ड समितियों का गठन किया जायेगा। जिनके गठन, क्षेत्र और स्थानों के भरे जाने के बारे में राज्य विधान मंडल उपबंध करेगा। राज्य विधान मंडल वार्ड समितियों के अलावा अन्य समितियाँ भी गठित कर सकेगा।

4.19 नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं महिलाओं के लिये स्थानों का आरक्षण

संविधान के भाग 9 में पंचायतों में आरक्षण के प्रावधानों के समान ही नगर पालिकाओं में अनुसूचित जाति, जनजातियों एवं महिलाओं के विषय में आरक्षण के उपबंध किये गये हैं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए किये गये आरक्षण अनुच्छेद 334 में विर्निदिष्ट अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो जायेंगे। नगर पालिकाओं के अध्यक्ष पद के लिये आरक्षण की रीति राज्य के विधान मंडल द्वारा विहित की जायेगी। राज्य विधान मंडल पिछड़े वर्गों के लिये स्थानों का या अध्यक्ष के पदों का आरक्षण अगर चाहे तो कर सकता है।

4.20 नगरपालिकाओं का कार्यकाल (अनुच्छेद 243प)

प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल 5 वर्ष तक का होगा। उसका विघटन विधि के अनुसार कार्यकाल समाप्ति से पूर्व भी किया जा सकता है। परन्तु अनुच्छेद 243प में उपबंधित है कि विघटन से पहले उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किया जायेगा।

किसी नगरपालिका का गठन करने के लिए निर्वाचन,–

क.पाँच वर्ष की अवधि की समाप्ति से पूर्व

ख.विघटन की तारीख से छः मास की अवधि की समाप्ति से पूर्व, पूरा किया जायेगा।

विघटन के पश्चात गठित नगरपालिका अवशिष्ट अवधि के लिए होगी, किन्तु यदि शेष अवधि 6 मास से कम है तो निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा। यह भी उपबंधित किया गया है कि प्रवृत्त विधि में संशोधन करके 5 वर्ष के पूर्व नगर पालिका का विघटन नहीं किया जा सकेगा।

4.20 सदस्यता के लिये अर्हताएं (अनुच्छेद 243फ)

किसी नगर पालिका का सदस्य होने के लिए वही अर्हताएं चाहिए जो कि भाग 9 के अनुसार किसी पंचायत का सदस्य चुने जाने के लिए विहित की गयी हैं।

4.22 नगरपालिकाओं, आदि की शक्तियाँ, प्राधिकार और उत्तरदायित्व (अनुच्छेद 243ब)

राज्य विधान मंडल विधि द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों, उन्हें निम्नलिखित उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए उपबंध किए जा सकेंगे, अर्थात–

1.आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएं तैयार करना,

2.उन्हें सौंपी गई स्कीमों का क्रियान्वयन

3.12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के बारे में, 12 अनुसूची में 18 मदें हैं, जैसे– नगर योजना, भूमि के उपयोग का विनियमन, मार्ग और पुल, जनप्रदाय, लोक स्वास्थ्य, अग्निशमन सेवाएं, नगर वानिकी, मलिन बस्ती, आदि।

4.23 नगरपालिकाओं द्वारा कर आधिरोपित करने की शक्ति और उनके वित्तीय साधन (अनुच्छेद 243भ)

राज्य का विधान मंडल नगरपालिकाओं को, विधि द्वारा कर, शुल्क, पथकर और फीसें उद्गृहीत, संगृहीत और विनियोजित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। राज्य सरकार द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत कर शुल्क आदि भी नगरपालिकाओं को शर्तों एवं निर्बधनों के अधीन रहते हुए समनुदिष्ट किए जा सकेंगे। राज्य की संचित निधि में से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान भी प्रदान किया जा सकता है।

4.24 वित्त आयोग (अनुच्छेद 243म)

अनुच्छेद 243झ के अधीन गठित वित्त आयोग पंचायतों के साथ नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और पंचायतों के लिये उपबंधित उपबंधों के समान ही नगरपालिकाओं के लिये भी राज्यपाल से सिफारिश करेगा।

अनुच्छेद 243य के अनुसार राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा नगरपालिकाओं द्वारा लेखे रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा करने के बारे में उपबंध कर सकेगा।

4.25 नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन (अनुच्छेद 243यक)

नगरपालिकाओं के लिये कराये जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशक और नियंत्रण, अनुच्छेद 243 ट (पंचायत) में निर्दिष्ट राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा। भाग 9 (पंचायत) के उपबंधों की भांति ही नगरपालिका के निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन किया गया है (अनुच्छेद 243यछ)

4.26 योजना समितियाँ

74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगरपालिकाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गयी। इसके साथ ही इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक राज्य में दो तरह की समितियां भी गठित की गयीं–

1.जिला स्तर पर जिला योजना समिति (अनुच्छेद यघ)

2.प्रत्येक महानगर क्षेत्र में महानगर योजना समिति (अनुच्छेद य ड़)

4.26.1 जिला योजना के लिए समिति

प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर, जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करने और सम्पूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए एक जिला समिति का गठन किया जायेगा। जिसके गठन एवं स्थानों को भरे जाने के विषय में राज्य विधान मंडल उपबंध करेगा, राज्य विधान मंडल समितियों का अध्यक्ष चुने जाने की रीति एवं जिला योजना से संबंधित कौन से कृत्य समितियों को समनुदिष्ट किये जायेंगे, के बारे में विधि बना सकेगी। समिति विकास योजना बनाकर सरकार को भेजेगी।

4.26.2 महानगर योजना के लिए समिति

प्रत्येक महानगर क्षेत्र में, सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र के लिए विकास योजना प्रारूप तैयार करने के लिए, एक महानगर योजना समिति का गठन किया जायेगा, जिसकी संरचना और स्थानों को भरे जाने के विषय में विधि राज्य विधान मंडल द्वारा बनाई जा सकेगी। समिति विकास की योजना तैयार करेगी। राज्य विधान मंडल समिति के बारे में विधि बनाकर निम्न उपबंध करेगा, अर्थात–

(1)केन्द्र और राज्य सरकारों के और ऐसे संगठनों और संस्थाओं के जिनका प्रतिनिधित्व आवश्यक समझा जाये प्रतिनिधित्व के बारे में,

(2)महानगर क्षेत्र के लिए योजना और सहकारिता से सम्बन्धित कृत्य

(3)इन समिति के अध्यक्षों के चुने जाने की रीति जिला योजना समिति की दशा में कम से कम 4/5 सदस्य जिला स्तर की पंचायत और जिले की नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित किए जायेंगे। उनका अनुपात नगर और गांव की जनसंख्या के अनुपात में होगा। महानगर योजना समिति की दशा में समिति में कम से कम 2/3 सदस्य, महानगर क्षेत्र की नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों और पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा अपने में से, उस क्षेत्र की नगरपालिकाओं की और पंचायत की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार निर्वाचित किये जायेंगे।

4.27 केन्द्रीय वित्त आयोग के कर्तव्यों में वृद्धि

अनुच्छेद 280 के तहत राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति वित्त आयोग के कर्तव्यों में इस भाग द्वारा एक और कर्तव्य जोड़ा गया, राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राज्य की नगरपालिकाओं के साधन स्रोतों की अनुपूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि में वृद्धि करने के लिए क्या उपाय किए जाने चाजिए, इस पर भी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग अपनी सिफारिश देगा।

निर्देश

1. वसु, आचार्य डा0 दुर्गा दास, भारत का संविधान– एक परिचय नौवां संस्करण पु बटरबर्थ वाधवा, नागपुर पृष्ठ 282
2.अनुच्छेद 243 ख (1)
3. अनुच्छेद 243 ख (2)
4. अनुच्छेद 243 ग (1)
5.अनुच्छेद 243 (ख)
6.अनुच्छेद 243 ग (3)
7.अनुच्छेद 243 घ
8.वर्तमान में यह 60 वर्ष है।
9.अनुच्छेद 173
10.11वीं अनुसूची 73वें संशोधन अधिनियम द्वारा अन्तःस्थापित की गई।
11.अनुच्छेद 243 ज
12.अनुच्छेद 243 झ
13.अनुच्छेद 243 ञ

14.निर्वाचन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पश्चात न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

15.अनुच्छेद 244 खंड (1)

अभ्यास प्रश्नः–

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1.73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संविधान में कौन से नये भाग जोड़े गये?

2.भाग 9 में कितने सोपानों में पंचायतें बनाने की परिकल्पना है?

3.74वें संशोधन के तहत प्रत्येक राज्य में कितने तरह की योजना समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है?

4.पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में कुल कितने स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित किये गये हैं?

5.क्या केन्द्र स्थानीय शासन के संबंध में अधिकारों और दायित्वों का सृजन करने के लिए विधि बना सकता है?

सत्य/असत्य कथन

6.पंचायतों और नगरपालिकाओं के सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुने जाते हैं। **सत्य/असत्य**

7.नगर पालिका क्षेत्र के अन्तर्गत बार्डों से सदस्य चुने जाते हैं। **सत्य/असत्य**

8.पंचायतों ने महिलाओं को उनके अधिकारों के लिये पहले से अधिक सशक्त किया है। **सत्य/असत्य**

4.28 सारांश

संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 में ग्राम पंचायतों के गठन और उन्हें स्वायत्तशासी संस्था बनाने वाली शक्तियाँ और प्राधिकार राज्य द्वारा प्रदान करने के लिये स्पष्ट रूप से निर्देशित किया गया है। लम्बे अन्तराल के बाद अंततः 73वें और 74वें संशोधन अधिनियमों द्वारा पंचायतों और नगरपालिकाओं के गठन, शक्तियों, प्राधिकार आदि को संविधानिक मान्यता प्रदान की गयी जो कि समूचे देश में (कतिपय क्षेत्रों को छोड़कर) दिनांक 01.06.1993 से लागू हुआ। 'स्थानीय शासन' सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि–5 के अधीन होने के कारण अनन्य रूप से राज्य का विषय है। अधिकांश राज्यों में पंचायतों और नगरपालिकाओं ने नई विधियों के अधीन कार्य आरम्भ कर दिया है। ये संशोधन जम्मू– कश्मीर, मेघालय, मिजोरम और नागालैण्ड राज्यों को और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र

में प्रवृत्त नहीं हैं। भाग 9 (पंचायत) के अन्तर्गत 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में ग्राम स्तर, जिला पंचायत एवं अतवर्ती पंचायत जो ग्राम और जिला पंचायत के बीच है, के निर्माण द्वारा तीन स्तर पर पंचायतों की स्थापना की गयी है। जिनमें सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुने जाते हैं। इसमें महिलाओं के लिये 1/3 स्थान आरक्षित किये गये हैं। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को भी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण देकर समुचित संतुलन बनाये रखने का सार्थक प्रयास इसमें किया गया है। जिनके सुखद परिणाम भी अब विभिन्न समाचारों द्वारा दृष्टिगोचर होने लगे हैं। अनुच्छेद 243छ में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा, पंचायत को ऐसी शक्तियॉ और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों, इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गयी जिसमें उन विषयों का वर्णन है जिन पर पंचायतों को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। पंचायतों एवं नगर पालिकाओं की वित्तीय स्थिति पुनर्विलोन करने हेतु वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। इन संशोधनों को संघ राज्य क्षेत्रों में भी लागू किया गया है।

संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा भाग 9 क (अनुच्छेद 243 त से अनुच्छेद 243 य छ) जोड़ा गया। जिसके द्वारा नगरों में लोकतांत्रिक प्रणाली को सफल बनाने का प्रयास किया गया है। एक नई अनुसूची–12वीं अनुसूची भी जोड़ी गयी जिसमें उन विषयों का उल्लेख किया गया है जिन पर नगरपालिकाएं कानून बनाकर अपने नागरिकों के जीवन का सुखमय बना सकती हैं। पूरे जिले के विकास में एकरूपता लाने के उद्देश्य से अनुच्छेद 243 य घ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति के गठन का प्रावधान किया गया है जो पंचायत एवं नगरपालिकाओं द्वारा बनाई गयी योजनाओं को समेकित करके पूरे जिले के लिये एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करके राज्य सरकार को भेजेगी। इसी तरह का प्रावधान महानगरों में करने के लिये अनुच्छेद 243 य ड़ के अन्तर्गत महानगर योजना के लिये महानगर योजना समिति के गठन का उपबंध किया गया है।

4.29 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भाग 9 एवं 9 क 2. तीन 3. दो, जिला स्तर एवं महानगर 4. 1/3 प्रतिशत 5. नहीं 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य

4.30 शब्दावली

महागनर – दस लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाला ऐसा क्षेत्र जिसमें एक या अधिक जिले समाविष्ट हैं और जो दो या अधिक नगरपालिकाओं या पंचायत या अन्य संलग्न क्षेत्रों से मिलकर बनता है तथा जिसे राज्यपाल इस भाग (9क) के प्रयोजनों के लिए, लोक अधिसूचना द्वारा, महानगर क्षेत्र के रूप में विनिर्दिष्ट करें।

स्वायत्त – एक ऐसा निकाय जो स्वयं की जरूरतों के लिए दूसरे पर निर्भर न हो एवं जिसे अपने निर्णय लेने का स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त हो।

4.31 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गा दास, भारत का संविधान – एक परिचय, नौवा संस्करण पुनर्मुद्रण 2009, लेक्सिस नेक्सिस बटरबर्थ वाधवा नागपुर

2. पाण्डे डा0 जय नारायण, भारत का संविधान 44वॉ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी

3. सीरबाई, एच0एम0 कान्स्टीट्यूषनल लॉ ऑफ इंडिया, 4वॉ संस्करण वोल्यूम–1 युनीवर्सल बुक ट्रेडर्स

4. भारत का संविधान, (बेयर एक्ट) द्विभासी संस्करण कानून प्रकाषक, संस्करण 2008

4.32 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. दुर्गा दास बसु, षार्टर कंस्टिट्यूषन ऑफ इंडिया

2. डा0 जे0 जे0 आर0 उपाध्याय, भारत का संविधान

4.33 निबन्धात्मक प्रश्न

1.'स्थानीय शासन' से आप क्या समझते हैं? यह अनन्य रूप से राज्य सरकार का विषय है, विवेचना कीजिए।

2.पंचायतों का गठन किस प्रकार किया जाता है? इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं महिलाओं के आरक्षण संबंधी क्या प्रावधान रखे गये हैं?

3.नगरपालिकाओं की शक्तियाँ, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्वों का वर्णन करें।

4.74वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत किन समितियों की स्थापना की गयी है? उनके कार्यों का वर्णन कीजिए।